श्री हिन्दी जैनागम प्रकाशक सुमति कार्यालय जैनप्रेस कोटा (राजपूताना) में मिलने वाली पुस्तकों की सूची—

६.	बृहत्पर्युषणा निर्णयः	भेट
७.	षट् कल्याणक निर्णयः	,,
८,	आत्म भ्रमोच्छेदन भानुः	,,
६,	साधु साध्वी योग्य प्रतिक्रमण सूत्राणि	,,
१०,	देव द्रव्य निर्णयः प्रथम भाग	,,
११,	आगमानुसार मुहपति का निर्णयः जाहिर उद्घोषणा नं० १-२-३	,,
१४,	कल्प सूत्र हिन्दी भावार्थ	३)
१५,	दशवैकालिक मूल–मूलार्थ	१)
१७,	विपाक सूत्र मूल–मूलार्थ–टीकार्थ	३)
१८,	अनुत्तरोववाई सूत्र मूल–मूलार्थ	भेट
१६.	अंतगड दशाङ्ग सूत्र ,, ,,	भेट
२०.	साधु साध्वी अंतक्रिया विधि	,,
२१	आवश्यक विधि सग्रह	भेट
२२.	पर्वकथा सग्रह सस्कृत	२)
२३	द्वादश पर्व व्याख्यान हिन्दी	२)
२४.	उपासक दशाङ्ग सूत्र–मूल–मूलार्थ टीका टीकार्थ	२)
२५	साध्वी व्याख्यान निर्णयः	भेट
२६	गौतम पृच्छा–सार	भेट
२७.	खरतरगच्छीय राइदेवसी प्रतिक्रमण सविधि	भेट
२८.	देवचन्दजी की चौवीशी वीसी	भेट
२६.	सस्कृत व अनेकरागमय चतुर्विंशति-जिनेन्द्रस्तवनानि	भेट
३०.	सामायिक जिन दर्शन विधि	भेट
३१.	चतुर्विंशति–जिनस्तुति	भेट

* णमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स *

श्रीसुधर्मस्वामिगणधरप्रणीतं श्रीखरतरगच्छाधिराजनवाङ्गीवृत्तिकारकश्रीमदभयदेवसूरीश्वरविहितवृत्तियुक्तं च

श्रीउपासकदशाङ्गसूत्रम् ।

(हिन्दीभाषानुवादसहितम्)

अनुवाद लेखिका श्रीमती—साध्वीजी विनयश्रीजी.



शास्त्र ही मंगलरूप है, परंतु शिष्टपुरुषों के नियमों का परिपालन करने के लिये व्याख्या करनेवाले नवांगीवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरीश्वरजी महाराज व्याख्या के आरंभ में मंगलाचरण करते हैं—

मंगलाचरण

श्रीवर्द्धमानमानम्य, व्याख्या काचिद्विधीयते । उपासकदशादीनां, प्रायो ग्रन्थान्तरेक्षिता ॥ १ ॥

अर्थः—चरमतीर्थंकर श्रीवर्द्धमान (महावीर) स्वामी को नमस्कार करके, तथा दूसरे ग्रन्थों का प्रायः अवलोकन करके उपासकदशा आदि सूत्रों की व्याख्या किंचिन्मात्र की जाती है ।

टीकाः—तत्रोपासकदशाः सप्तममङ्गं, इह चायमभिधानार्थः—उपासकानां—श्रमणोपासकानां सम्बान्धिनोऽनुष्ठानस्य प्रतिपादिका

दशाः—दशाध्ययनरूपा उपासकदशाः, बहुवचनान्तमेतद् ग्रन्थनाम। आसां च सम्बन्धाभिधेयप्रयोजनानि नामान्वर्थसामर्थ्येनैव प्रतिपादितान्यवगन्तव्यानि, तथाहि—उपासकानुष्ठानमिहाभिधेयं, तदवगमश्च श्रोतॄणामनन्तरप्रयोजनं, शास्त्रकृतां तु तत्प्रतिबोधनमेव तत्, परम्परप्रयोजनं तूभयेषामप्यपवर्गप्राप्तिरिति। सम्बन्धस्तु द्विविधः शास्त्रेष्वभिधीयते—उपायोपेयभावलक्षणो गुरुपर्वक्रमलक्षणश्च, तत्रोपायोपेयभावलक्षणः शास्त्रनामान्वर्थसामर्थ्येनैवासामभिहितः, तथाहि—इदं शास्त्रमुपाय एतत्साध्योपासकानुष्ठानावगमश्चोपेयमित्युपायोपेयभावलक्षणः सम्बन्धः, गुरुपर्वक्रमलक्षणं तु सम्बन्धं साक्षाद्दर्शयितुमाह—

अर्थः— यह उपासकदशा नामक सातवाँ अंग है। उसके प्रथम अभिधान, अभिधेय, संबंध और प्रयोजन आदि का वर्णन करते हैं—उपासकों के अर्थात् श्रावकों के आचरणों का प्रतिपादन करने वाला दश अध्ययनरूप जो शास्त्र है, वह उपासकदशासूत्र है, यही उसका अभिधान हुआ। दश श्रावकों के दश अध्ययनरूप शास्त्र होने से शास्त्र का नाम बहुवचनांत दिया गया है। इस सूत्र का संबंध, अभिधेय और प्रयोजन ये अपने नामरूप अर्थ से ही स्पष्ट समझ सकते हैं। जैसे—इस सूत्र में आनंद आदि दश श्रावकों के आचरणों का वर्णन किया जायगा, यही इसका अभिधेय है। सुनने वालों को जो ज्ञान होना, यही इसका प्रयोजन है। प्रयोजन दो प्रकार के हैं—एक अनन्तर और दूसरा परम्पर। सुनने वालों को शास्त्र का ज्ञान होना और शास्त्रकारों का प्रतिबोध देना, यही अनन्तर प्रयोजन है। तथा सुनने वालों को और शास्त्रकारों को उन दोनों को परम्परा से जो मोक्षपद की प्राप्ति होना, यही परम्पर प्रयोजन है। सम्बन्ध भी दो प्रकार के कहे गये हैं—उपायोपेयभावलक्षण और गुरुपर्वक्रमलक्षण। उपायोपेयभावलक्षण तो शास्त्र और उसका ज्ञान ही है, अर्थात् शास्त्र ही उपाय (साधन) है और उसके द्वारा श्रावकों के आचरण आदि का जो ज्ञान होना यही उपेय (साध्य) है। गुरु परम्परा जो क्रमशः शास्त्र का सम्बन्ध यही गुरुपर्वक्रम सम्बन्ध है।

सूत्रम्—॥ ऍं ॥ ते णं काले णं ते णं समए णं चंपा नामं नयरी होत्था, वण्णओ, पुण्णभद्दे चेइए, वण्णओ * ॥ सू० ॥ १ ॥ ते णं काले णं तेणं समए णं अज्जसुहम्मे समोसरिए जाव जंबू पज्जुवासमाणे एवं वयासी—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं छट्ठस्स अंगस्स नायाधम्मकहाणं अयमट्ठे पण्णत्ते, सत्तमस्स णं भंते ! अंगस्स उवासगदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तंजहा—आणंदे १ कामदेवे २ य, गाहावइ चुलणीपिया ३। सुरादेवे ४ चुल्लसयए ५, गाहावइ कुंडकोलिए ६ ॥ १ ॥ सद्दालपुत्ते ७ महासयए ८, नंदिणीपिया ९ सालिहीपिया १०। जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता पढमस्स णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?॥ सू० ॥ २ ॥

अर्थः—उस काल उस समय में अर्थात्–चतुर्थ आरेके अंतमें अंगदेश की राजधानी चंपा नामकी नगरी थी। वहां कोणिक नामका राजा राज कर रहा था। उस समयमें श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामी के मुख्य शिष्य पांचवें गणधर श्रीसुधर्मास्वामी अपने जम्बू आदि पांचसौ शिष्योंके साथ ग्रामानुग्राम (एक गांवसे दूसरे गांव) विहार करते हुए,

* जहांपर नगरी और चैत्य का अधिकार आवे वहांपर उववाई सूत्रानुसार नगरी का, उद्यान का और चैत्य आदि का वर्णन समझ लेना चाहिये.

चम्पा नगरी के बाहर उद्यानमें पूर्णभद्र नामक यक्ष के चैत्य में पधारे। श्रीसुधर्मास्वामी के पधारने के समाचार सुनकर राजा कौणिक और चम्पानगरी के लोग गणधर महाराज को वंदना करने के लिये और उनका धर्मोपदेश सुननेके लिये आये। धर्मदेशना समाप्त होने बाद आर्य सुधर्मास्वामी के मुख्यशिष्य जम्बूस्वामीने श्रद्धा और विनय पूर्वक पूछा– 'हे भगवन्! निर्वाणपदको प्राप्त हुए श्रमण भगवान् श्री महावीरस्वामीने ज्ञाताधर्मकथा नामक छट्टे अंगका जो अर्थ कहा, वह मैंने सुनालिया। अब सातवें अंग उपासकदशा का श्रमण भगवान् श्रीमहावीरस्वामीने क्या अर्थ फरमाया है?।' तब आर्य सुधर्मास्वामी ने उत्तर दिया कि – 'हे जम्बू! निर्वाणपद को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामी ने इस उपासकदशा नामक सातवें अंगके दस अध्ययन कहे हैं। ये इस प्रकार हैं:— आनन्द १, कामदेव २, गृहपति चूलनीपिता ३, सुरादेव ४, चुल्लशतक ५, गृहपति कुंडकोलिक ६, सद्दालपुत्र ७, महाशतक ८, नन्दिनीपिता ९ और सालिहीपिता १०। इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने सातवें अंग श्रीउपासकदशा के दस अध्ययन कहे हैं। जम्बू स्वामी ने पूछा कि हे भगवन्! इन दश अध्ययनों में से प्रथम अध्ययन का अर्थ श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामी ने किस प्रकार कहा है?॥ २॥

टीका:— 'ते णं काले णं ते णं समए णं' इत्यादि सर्वं चेदं ज्ञाताधर्मकथाप्रथमाध्ययनविवरणानुसारेणानुगमनीयं, नवरं 'आनन्दे' इत्यादि रूपकं, तत्रानन्दाभिधानोपासकवक्तव्यताप्रतिबद्धमध्ययनमानन्द एवाभिधीयते, एवं सर्वत्र, 'गाहावइ' त्ति गृहपतिः ऋद्धिमद्विशेषः 'कुण्डकोलिए' त्ति रूपकान्तः।

टीकार्थ— 'ते णं काले णं ते णं समए णं' इत्यादि पदों में 'णं' शब्द वाक्यालंकार है। बाकी इस उपासकदशांगसूत्र का उपोद्घात ज्ञाताधर्मकथांगसूत्र के प्रथम अध्ययन का जो विवरण है, उसके अनुसार जानना। इस सूत्र की संक्षिप्त वाचनामें राजा कोणिक आदि के नामका उल्लेख नहीं किया, परन्तु 'वण्णओ' और 'जाव' शब्द से सब अध्याहार समझना चाहिये। आनंद नामक श्रावक का वर्णन होने से प्रथम अध्ययन का नाम भी आनंद अध्ययन रखा गया है। 'गाहावइ' माने गृहपति अर्थात् बडी ऋद्धिवाला है। जैसे गृहपति कुंडकोलिक ऐसा कहने से बडी समृद्धिवाला कुंडकोलिक समझना।

सूत्रम्— एवं खलु जंबू ! ते णं काले णं ते णं समए णं वाणियगामे नामं नयरे होत्था, वण्णओ, तस्स णं वाणियगामस्स नयरस्स बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए दूइपलासए नामं चेइए, तत्थ णं वाणियगामे नयरे जियसत्तू राया होत्था वण्णओ, तत्थ णं वाणियगामे आणंदे नामं गाहावई परिवसइ, अड्ढे जाव अपरिभूए। तस्स णं आणंदस्स गाहावइस्स चत्तारि हिरण्णकोडीओ निहाणपउत्ताओ चत्तारि हिरण्णकोडीओ वुड्ढिपउत्ताओ चत्तारि हिरणकोडीओ पवित्थरपउत्ताओ चत्तारि वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं होत्था। से णं आणंदे गाहावई बहूणं राईसर जाव सत्थवाहाणं बहूसु कज्जेसु य कारणेसु य मंतेसु य कुडुंबेसु य गुज्झेसु य रहस्सेसु य निच्छएसु य ववहारेसु य आपुच्छणिज्जे पडिपुच्छणिज्जे, सयस्सवि य णं कुडुंबस्स मेढी पमाणं आहारे आलंबणं चक्खू, मेढीभूए जाव सव्वकज्जवट्टावए यावि होत्था। तस्स णं

आणंदस्स गाहावइस्स सिवानंदा नामं भारिया होत्था, अहीण जाव सुरूवा आनंदस्स गाहावइस्स इट्ठा आणंदेणं गाहावइणा सद्धिं अणुरत्ता अविरत्ता इट्ठा सद्द जाव पंचविहे माणुस्सए कामभोए पच्च (क्ख) णुभवमाणी विहरइ ।

अर्थ—आर्य सुधर्मास्वामी बोले–हे जम्बू ! उसी काल और उसी समयमें वाणिज्यग्राम नामका नगर था । उस नगर के बाहर उद्यान में उत्तर पूर्वदिशा (ईशान कोण) में दुतिपलाश नामका चैत्य था । उस वाणिज्य ग्राम में जितशत्रु राजा राज कर रहा था । वहां आनंद नामका अपारिमित ऋद्धिवाला गृहपति रहता था, उसके पास चार कोटि हिरण्य (तत्कालीन मुद्राविशेष) धन भंडार में, चार कोटि हिरण्य धन व्याज में और चार कोटि हिरण्य धन घर खर्च के लिये था । तथा इस धन के उपरांत दश हजार गौ का एक व्रज, ऐसे चार व्रज भी थे, यह आनंद गृहपति सब सार्थवाहोंका समस्त कार्यों में सलाहकार, कुटुंबी जनों को गुप्त और एकान्त बात के लिये पूछने योग्य, सबका आधारभूत और सब कार्यों को बढाने वाला था । उसको अत्यंत स्वरूपवती प्रेमरागवाली और इष्ट ऐसी शिवानंदा नामकी स्त्री थी, उसके साथ शब्द रूप रस गन्ध और स्पर्श ये पांच प्रकार के सांसारिक विषयभोगों को भोगता हुआ सुखसे रहता था ।

आनंद की ऋद्धि

टीका:— 'प्रविस्तरो' धनधान्यादिद्विपदचतुष्पदादिविभूतिविस्तरः, 'व्रजा' गोकुलानि, दशगोसाहस्रिकेण—गोसहस्रदशकपरिमाणेनेत्यर्थः ।

टीकार्थः— 'प्रविस्तर' माने धन धान्य सेवक जन और पशु आदि संपतियों का अधिक विस्तार। 'व्रज' माने गोकुल, दश हजार गौओं के समूह का एक गोकुल कहा जाता है।

सूत्र—तस्स णं वाणियगामस्स बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए एत्थ णं कोल्लाए नामं सन्निवेसे होत्था, रिद्धत्थिमिय जाव पासादीए ४। तत्थ णं कोल्लाए सन्निवेसे आणंदस्स गाहावइस्स बहुए मित्तनाइ-नियगसयणसंबंधिपरिजणे परिवसइ, अड्ढे जाव अपरिभूए। ते णं काले णं ते णं समए णं समणे भगवं महा-वीरे जाव समोसरिए, परिसा निग्गया, कोणिए राया जहा तहा जियसत्तू निग्गच्छइ २ त्ता जाव पज्जुवासइ। तए णं से आणंदे गाहावई इमी से कहाए लद्धट्ठे समाणे एवं खलु समणे जाव विहरइ, तं महाफलं जाव गच्छामि णं जाव पज्जुवासामि, एवं संपेहेइ २ त्ता ण्हाए सुद्धप्पावेसाइं जाव अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं मणुस्स वग्गुरापरिक्खित्ते पायविहारचारेणं वाणियगामं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ २ त्ता जेणामेव दूइपलासे चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ २ त्ता वंदइ नमंसइ जाव पज्जुवासइ ॥ सू० ३ ॥

अर्थः— वाणिज्यग्राम के बाहर इशान कोण में समृद्धिवाला कोल्लाग नामका सन्निवेश था, उसमें आनंद गृहपति के बहुत मित्र, ज्ञातिबन्धु और सगे संबंधि लोग रहते थे, वे सब भी समृद्धिवाले और संपन्न थे। उसी काल उसी समय में श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी विहार करते हुए वाणिज्यग्राम के बाहर दुतिपलाश नामके चैत्य में पधारें, तब सपरिवार कोणिक राजा की तरह जितशत्रु राजा अपने परिवार के साथ और प्रजाजन भगवान् का धर्मोपदेश सुनने के लिये आये और वंदना नमस्कार करके सेवा करने लगे। भगवान् पधारने के समाचार आनन्द गृहपति जानकर विचारने लगा कि—'भगवान् का विहार महाफल दायक है, इसलिये भगवान् के पास जाकर वंदना नमस्कार पूर्वक सेवा करुं'। ऐसा विचार करके स्नानादि से शरीर शुद्धि करके, शुद्ध सफेद वस्त्र पहिन कर और कुछ बहु मूल्यवाले आभूषण शरीर पर धारण करके अपने घरसे निकला। मस्तक पर कोरंट फूलकी माला वाला छत्रको धारण करके, अपना स्वजन परिवार युक्त पैदल चलकर, वाणिज्यग्राम के मध्य राजरास्ते पर निकला और जहां दुतिपलाश नामक चैत्यमें श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामी पधारे हैं वहां गया। भगवान् के समीप जाकर तीन वार दाहिनी ओरसे प्रदक्षिणा देकर वंदना नमस्कार किया यावत् सेवा करने लगा ॥ ३ ॥

आनंद भगवान् को वन्दनार्थ निकला.

सूत्रम्—तए णं समणे भगवं महावीरे आणंदस्स गाहावइस्स तीसे य महइ महालियाए जाव धम्मकहा, परिसा पडिगया, राया य गए ॥ सू० ४ ॥

अर्थ—उस समय श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामीने आणंद गृहपति के और समृद्धिवाली विशाल चतुर्विध परिषदा के सामने धर्मका उपदेश दिया। उपदेश सुनकर परिषदा वापिस चली गई और जितशत्रु राजा भी चले गये ॥ ४ ॥

सूत्रम्—तए णं से आणंदे गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव एवं वयासी—सद्दहामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं, पत्तियामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं, रोएमि णं भंते! निग्गंथं पावयणं, एवमेयं भंते! तहमेयं भंते! अवितहमेयं भंते! इच्छियमेयंभंते! पडिच्छियमेयं भंते! इच्छियपडिच्छियमेयं भंते! से जहेयं तुब्भे वयहतिवट्टु, जहां णं देवाणुप्पियाणं अंतिए बहवे राईसरतलवरमाडंबियकोडुम्बियसेट्ठिसेणावइसत्थवाहप्पभिइओ मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया नो खलु अहं तहा संचाएमि मुण्डे जाव पव्वइत्तए, अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तासिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जिस्सामि, अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह ॥ सू० ५ ॥

अर्थ—उस समय आनंद गृहपति श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामी के पास धर्म सुनकर, प्रसन्न और संतोषित

होकर इस प्रकार कहने लगा—हे भगवन् ! मोक्षमार्ग रूप निर्ग्रंथ (साधु) धर्म का आपने उपदेश दिया, उसमें मैं श्रद्धा करता हूँ, प्रीति करता हूँ, रुचि करता हूँ, आपने जो कहा वह यथार्थ है, शंका रहित है। हे भगवन् ! आप के पास बहुत से राजेश्वर, कोटवाल, ग्रामाधिपति, कुटुम्बवाले, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदि अनेक मुमुक्षु दीक्षा लेकर अनगार (मुनि) हुए हैं, ऐसी दीक्षा लेकर अनगार होने का सामर्थ्य मेरे में नहीं है, परंतु आपके पास पांच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत ये बारह प्रकार के व्रतवाले गृहस्थ धर्म को स्वीकार करने की मेरी इच्छा है। तब श्रमण भगवान् ने कहा—हे देवानुप्रिय ! तुमको जैसा सुख हो वैसा करो, किन्तु धर्म में अंतराय न करो ॥ ९ ॥

सूत्रम्—तएणं से आणंदे गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए तप्पढमयाए थूलगं पाणाइवायं पच्चक्खाइ जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा ॥ १ ॥ तयाणंतरं च णं थूलगं मुसावायं पच्चक्खाइ जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा ॥ २ ॥ तयाणंतरं च णं थूलगं अदिण्णादाणं पच्चक्खाइ जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा ॥३ ॥ तयाणंतरं च णं सदारसंतोसिए परिमाणं करेइ, नन्नत्थ एक्काए सिवानंदाए भारियाए, अवसेसं सव्वं मेहुणविहिं पच्चक्खामि मणसा वयसा कायसा ॥ ४ ॥

अर्थ—अब आनंद गृहपति श्रमण भगवान श्री महावीरस्वामी के पास व्रतों को स्वीकार करता है। उनमें प्रथम स्थूल प्राणातिपात व्रतका पच्चक्खाण करता है—मैं स्थूल हिंसा, मन, वचन और कायासे न करूंगा और न करवाऊंगा १। इसके बाद दूसरा स्थूल मृषावादका पच्चक्खाण करता है— मैं स्थूल झूठ वचन, मन, वचन और कायासे न बोलूंगा और न बोलवाऊंगा २। अब तीसरा अदत्तादान व्रतका पच्चक्खाण करता है—मैं स्थूल चौरी, मन, वचन और कायासे न करूंगा और न करवाउंगा ३। अब चौथा स्वदारासंतोष व्रतका परिमाण करता है—मैं एक शिवानंदा नामकी अपनी स्त्री के सिवाय दूसरी किसी भी स्त्री से मैथुन मन, वचन और कायासे न करूंगा और न करवाउंगा ४।

आनंद के व्रतोच्चार

टीकाः—'तप्पढमयाए'त्ति तेषाम्-अणुव्रतादीनां प्रथमं तत्प्रथमं तद्भावस्तत्प्रथमता तया 'थूलगं'ति त्रसविषयं 'जावज्जीवाए'त्ति यावती चासौ जीवा च-प्राणधारणं यावज्जीवा यावान् वा जीवः-प्राणधारणं यस्यां प्रतिज्ञायां सा यावज्जीवा तया, 'दुविहं'ति करणकारणभेदेन द्विविधं प्राणातिपात 'तिविहेणं' त्ति मनःप्रभृतिना करणेन 'कायस'त्ति सकारस्यागमिकत्वात्कायेनेत्यर्थः, न करोमीत्यादिनैतदेव व्यक्तीकृतं। स्थूलमृषावादः-तीव्रसंक्लेशात्तीव्रस्यैव संक्लेशस्योत्पादकः। स्थूलकमदत्तादानं-चौर इति व्यपदेशनिबन्धनं। स्वदारैः सन्तोषः स्वदारसन्तोषः स एव स्वदारसन्तोषिकः स्वदारसन्तोषिर्वा स्वदारसन्तुष्टिः, तत्र परिमाणं-बहुभिर्दारैरुपजायमानस्य सङ्क्षेपकरणं, कथम् ?-'नन्नत्थे'त्ति न मैथुनमाचरामि अन्यत्र एकस्याः स्त्रियाः, किमभिधानायाः ? -शिवानन्दायाः, किम्भूतायाः ? - भार्यायाः

स्वस्येति गम्यते, एतदेव स्पष्टयन्नाह-अवशेषं-तद्वर्जं मैथुनविधिं तत्प्रकारं तत्कारणं वा, तथा वृद्धव्याख्या तु 'नन्नत्थ' त्ति अन्यत्र तां वर्जयित्वेत्यर्थः।

टीकार्थः—'तप्पढमयाए' अणुव्रतों में सबसे पहला व्रत अहिंसा, वह 'थुलगं' त्रस जीवों के विषय में है। जहां तक जीव रहे वहां तक जीतने प्राणधारण करने वाले जीव हैं, उनको नहीं मारने की प्रतिज्ञा करना। वह 'दुविहं' दो प्रकार से ली जाती है-अपने हाथसे किसी जीविका विनाश करना और दूसरों के हाथ से विनाश करवाना। इन प्रत्येक के भी तीन २ प्रकार हैं-मन, वचन और काया से त्रस जीवोंका वध करना नहीं और करवाना नहीं। मूल पद 'कायसा' में सकार का आगम है। अणुव्रतों में दूसरा स्थूलव्रत मृषावाद (झूठ बोलना) है-बड़ा क्लेश होजाय, राजा दंड दे और लोगों में निन्दा हो, ऐसा झूठ बोलना नहीं। तीसरा स्थूलव्रत अदत्तादान (चौरी करना) है-कोई भी वस्तु मालिक की बिना आज्ञा लेना यही चौरी है, यह करना नहीं। चौथा स्थूल व्रत स्वदार संतोष (ब्रह्मचर्य) है-गृहस्थ सवर्था ब्रह्मचर्य पालन करने में असमर्थ होने से उनके लिए अपनी परिणिता स्त्री से ही विषय सेवन करने की मर्यादा रखते हैं, यह स्वदार संतोषव्रत है। आनन्द श्रावक अपनी शिवानन्दा स्त्री के सिवाय दूसरी स्त्री से विषय सेवन नहीं करने का नियम लेता है।

सूत्रम्—तयाणंतरं च णं इच्छाविहिपरिमाणं करेमाणे हिरण्णसुवण्णविहिपरिमाणं करेइ, नन्नत्थ चउहिं हिरण्णकोडीहिं निहाणपउत्ताहिं चउहिं वुड्ढिपउत्ताहिं चउहिं पवित्थरपउत्ताहिं, अवसेसं सव्वं हिरण्णसुवण्णविहिं पच्चक्खामि म० ३। तयाणंतरं च णं चउप्पयविहिंपरिमाणं करेइ, नन्नत्थ चउहिं वएहिं दसगोसाहस्सिएणं

वएणं, अवसेसं सव्वं चउप्पयविहिं पच्चक्खामि म० ३ । तयाणंतरं च णं खेत्तवत्थुविहिपरिमाणं करेइ नन्नत्थ पंचहिं हलसएहिं नियत्तणसइएणं हलेणं, अवसेसं सव्वं खेत्तवत्थुविहिं पच्चक्खामि ३ । तयाणंतरं च णं सगडाविहिपरिमाणं करेइ, नन्नत्थ पंचहिं सगडसएहिं दिसायत्तिएहिं पंचहिं सगडसएहिं संवाहणिएहिं, अवसेसं सव्वं सगडविहिं पच्चक्खामि ३ । तयाणंतरं च णं वाहणाविहिपरिमाणं करेइ, नन्नत्थ चउहिं वाहणेहिं दिसायत्तिएहिं चउहिं वाहणेहिं संवाहणिएहिं, अवसेसं सव्वं वाहणविहिं पच्चक्खामि ३ ॥ ५ ॥

अर्थ—पांचवाँ व्रत परिग्रह अर्थात् इच्छा को मर्यादित करने के लिये चांदी सोना आदिका परिमाण करता है—मैं चार कोटि धन भंडारमें, चार कोटि धन व्यापार में और चार कोटि धन घर खर्च के लिये रखूंगा। इनसे अधिक बाकी सब चांदी सोना मन वचन और कायासे न रखूंगा और न रखवाऊंगा। इस के बाद चतुष्पद (पशु) रखने का नियम लेता है—दस हज़ार गौओंका एक व्रज, ऐसे चार व्रज से अधिक कोई भी पशु मन वचन और कायासे न रखूंगा और न रखवाऊंगा। इसके बाद क्षेत्रवास्तुका परिमाण करता है—पांच सौ *निवर्त्तनशातिक

आनंद के व्रतोच्चार.

* दो सौ हाथ लम्बी और दो सौ हाथ चौडी अर्थात् ४०००० वर्ग हाथ चौरस भूमि को एक निवर्त्तन (बीघा) कहते हैं। ऐसी एक सौ निवर्त्तन भूमि एक हल से जोती जाय, ऐसे पांच सौ हल। लीलावती गणितशास्त्र में कहा है कि— "तथा कराणां दशकेन वंशः, निवर्त्तनं विंशतिवंशसंख्यैः" अर्थात् दश हाथ का एक वंश और वीस वंश का एक निवर्त्तन (बीघा) होता है।

हलसे जितनी भूमि जोती जाय, उतनी भूमि से अधिक भूमि मन वचन और कायासे न रखूंगा और न रखवाउंगा। इसके बाद शकट (वाहन) का परिमाण करता है—ग्रामान्तर जाने आनेके लिये पांच सौ और खेत आदिसे माल लाने लेजाने के लिये पांच सौ गाडी से अधिक कोई गाडी मन वचन कायासे न रखूंगा, न रखवाउंगा। इसके बाद जहाज का परिमाण करता है—परदेश जाने आनेके लिये चार जहाज और माल लाने लेजानेके लिये चार जहाज से अधिक कोई जहाज मन वचन कायासे न रखूंगा, न रखवाउंगा।

टीका—हिरण्णं ति–रजतं सुवर्ण–प्रतीतं विधिः–प्रकारः, 'नन्नत्थ' त्ति न–नैव करोमीच्छां हिरण्यादौ, अन्यत्र चतसृभ्यो हिरण्यकोटीभ्यः, ता वर्जयित्वेत्यर्थः, 'अवसेसं' ति शेषं तदतिरिक्तमित्येवं सर्वत्रावसेयम्, 'खेत्तवत्थु' त्ति–इह क्षेत्रमेव वस्तु क्षेत्रवस्तु ग्रन्थान्तरे तु क्षेत्रं च वास्तु च–गृहं क्षेत्रवास्तु इति व्याख्यायते, 'नियत्तणसइएणं' ति निवर्त्तनं–भूमिपरिमाणविशेषो देशविशेषप्रसिद्धः ततो निवर्त्तनशतं कर्षणीयत्वेन यस्यास्ति तन्निवर्त्तनशतिकं तेन। 'दिसायत्तिएहिं' ति दिग्यात्रा–देशान्तरगमनं प्रयोजनं येषां तानि दिग्यात्रिकानि तेभ्योऽन्यत्र, 'संवाहणिएहिं' ति संवाहनं क्षेत्रादिभ्यस्तृणकाष्ठधान्यादेर्गृहादावानयनं तत्प्रयोजनानि सांवाहनिकानि तेभ्योऽन्यत्र, 'वाहणेहिं' ति यानपात्रेभ्यः।

टीकार्थ—पांचवां स्थूलव्रत 'हिरण्ण' चांदी सोना का परिग्रह है। चार २ हिरण्य कोटि धन भंडार आदि के मिल कर कुल बारह हिरण्य कोटि धन अपने लिए रख करके बाकी सब सोना चांदी का त्याग करता है। 'खेत्तवत्थु' क्षेत्र रूप वस्तु, या क्षेत्र और वास्तु (घर)

का परिमाण। 'नियसणसइएणं' निवर्त्तन, यह भूमिका परिमाण विशेष है, वह देश में बीघा के नाम से प्रसिद्ध है। एक सौ निवर्त्तन (बीघा) भूमि को जोतने वाले हल को निवर्त्तन शतिक हल कहते हैं। 'दिसायत्तिएहिं' देशान्तर गमन अर्थात् व्यापार आदि कोई कार्य के लिये जाना आना पडे उसके लिये जो जहाज रखा जाय, उसका नियम। 'संवाहणिएहिं' क्षेत्र आदि से तृण, काष्ठ, धान्य, आदि मकान पर लाने के लिये या ले जाने के लिये जो जहाज रखा जाय उसका नियम।

सूत्रम्— तयाणंतरं च णं उवभोगपरिभोगविहिं पच्चक्खाएमाणे उल्लणियाविहिपरिमाणं करेइ नन्नत्थ एगाए गंधकासाईए, अवसेसं सव्वं उल्लणियाविहिं पच्चक्खामि ३। तयाणंतरं च णं दंतवणविहि-परिमाणं करेइ, नन्नत्थ एगेणं अल्ललट्ठीमहुएणं, अवसेसं दंतवणविहिं पच्चक्खामि ३। तयाणंतरं च णं फलविहिपरिमाणं करेइ, नन्नत्थ एगेणं खीरामलएणं, अवसेसं फलविहिं पच्चक्णामि ३। तयाणंतरं च णं अब्भंगणविहिपरिमाणं करेइ, नन्नत्थ सयपागसहस्सपागेहिं तेल्लेहिं, अवसेसं अब्भंगणविहिं पच्चक्खामि ३। तयाणंतरं च णं उवट्टणविहिपरिमाणं करेइ, नन्नत्थ एगेणं सुरहिणा गंधट्टएणं, अवसेसं उवट्टणविहिं पच्चक्खामि ३। तयाणंतरं च णं मज्जणविहिपरिमाणं करेइ, नन्नत्थ अट्ठहिं उट्टिएहिं उदगस्स घडएहिं, अवसेसं मज्जणविहिं पच्चक्खामि ३।

अर्थ— इसके बाद उवभोग परिभोग विधि का परिमाण करता हुआ प्रथम शरीर पोंछने का गमच्छा का परिमाण करता है—एक गंध कषायी वस्त्र के सिवाय दूसरे कोई भी वस्त्र से शरीर न पोंछूंगा, न पोंछवाऊंगा। अब दाँतुन का परिमाण करता है—एक हरी मुलहठी के सिवाय दूसरे किसी भी जात के वृक्ष का दाँतून न करूंगा न करवाऊंगा। अब फल का परिमाण करता है—एक क्षीरामलक (मीठा आंवला) के सिवाय दूसरा कोई भी फल खाने के कार्य में मन वचन काया से न वापरूंगा न वपराऊंगा। अब अभ्यंग (तेल लेपन) का परिमाण करता है शतपाक और सहस्रपाक तैल के सिवाय दूसरा कोई भी तेल शरीर पर मन वचन काया से न मसलूंगा, न मसलाऊंगा। इसके बाद उबटन का परिमाण करता है—एक सुरभिगंध के सिवाय दूसरी कोई सुगन्धी वस्तुओं से उबटन मन वचन काया से न करूंगा, न करवाऊंगा। इसके बाद स्नान का परिमाण करता है—स्नान करने के लिये आठ औष्ट्रिक (पानी भरने का बडा बरतन) घडे से अधिक जल मन वचन काया से नहीं वापरूंगा, नहीं वपराऊंगा।

टीका—'उवभोगपरिभोग' त्ति उपभुज्यते-पौनः पुन्येन सेव्यत इत्युपभोगो-भवनवसनवनितादिः परिभुज्यते-सकृदा-सेव्यत इति परिभोगः-आहारकुसुमविलेपनादिः व्यत्ययो वा व्याख्येय इति, 'उल्लणिय' त्ति स्नानजलार्द्रशरीरस्य जललूषणवस्त्रं, 'गन्धकासाईए' त्ति गन्धप्रधाना कषायेण रक्ता शाटिका गन्धकाषायी तस्याः, 'दन्तवण' त्ति दन्तपावनं-दन्तमलापकर्षणकाष्ठम् , 'अल्ललट्ठीमहुएणं' ति आर्द्रेण यष्टीमधुना-मधुररसवनस्पतिविशेषेण, 'खीरामलएणं' ति अवद्धास्थिकं क्षीरमिव मधुरं वा यदामलकं

तस्मादन्यत्र, 'सयपागसहस्सपागेहिं' ति द्रव्यशतस्य सत्कं क्वाथशतेन सह यत्पच्यते कार्षापणशतेन वा तच्छतपाकम्, एवं सहस्रपाकमपि 'गन्धट्टएणं' ति गन्धद्रव्याणामुपलकुष्ठादीनां 'अट्टओ' त्ति चूर्णं गोधूमचूर्णं वा गन्धयुक्तं तस्माऽन्यत्र, 'उट्टिएहिं उदगस्स घडएहिं' ति उष्ट्रिका-बृहन्मृन्मयभाण्डं तत्पूरणप्रयोजना ये घटास्त उष्ट्रिकाः, उचितप्रमाणा नातिलघवो महान्तो वेत्यर्थः, इह च सर्वत्रान्यत्रेतिशब्दप्रयोगेऽपि प्राकृतत्वात्पञ्चम्यर्थे तृतीया द्रष्टव्येति।

टीकार्थ—'उवभोग परिभोग' जो वस्तु एक वार सेवन की जाय, जैसे—खान, पान, फल, फूल और विलेपन आदि एकही वस्तु का एक वार सेवन किया जाता है, इसलिये ये वस्तु उपभोग कही जाती हैं, और जो वस्तु अनेक वार भोगने में आवे, जैसे—आभूषण, मकान, वस्त्र, स्त्री आदि एकही वस्तु अनेक वार भोगने में आती है, इसलिये ये वस्तु परिभोग कही जाती हैं, । 'उल्लणिय' स्नान वाले गीले शरीर को पोंछने के लिये जो टूवाल आदि वस्त्र रखा जाता है वह 'गंधकासाइए' सुगंधित द्रव्यसे रंगा हुआ गमछा विशेष, 'दंतवण' दांतून, दांत के मलको साफ करने वाला काष्ठ। 'अल्ललट्ठी महुपण' हरी जेठीमधु (मुलहटी), मधुर रसवाली वनस्पति विशेष 'खीरामलएणं' विना गुठली का दूध के जैसा मधुर आँवले का फल। 'सयपागसहस्सपागेहिं' एक सौ औषधियों का क्वाथ करके बनाया हुआ, या एक सौ काषार्पणों से खरीदा हुआ तेल, इस प्रकार सहस्रपाक तेल भी समझना। 'गंधट्टएणं' उपल और कुष्ठ आदि सुगंधित द्रव्य का चूर्ण, या गंध युक्त गोधूम (गेहूँ) का चूर्ण विशेष। 'उट्टिएहिं उदगस्स घडएहिं' उष्ट्रिका, मट्टी के बड़े बरतन को भरने वाला मट्टी का घड़ा। या बहोत बड़ा नहीं एवं छोटा भी नहीं साधारण प्रमाण वाला घड़ा विशेष। इस में सर्वत्र और अन्यत्र के शब्द प्रयोग में प्राकृत भाषा में पंचमी विभक्तिके ठिकाने तृतीया विभक्ति समझना।

सूत्रम्—तयाणंतरं च णं वत्थविहिपरिमाणं करेइ, नन्नत्थ एगेणं खोमजुयलेणं, अवसेसं वत्थविहिं

पच्चक्खामि ३ । तयाणंतरं च णं विलेवणविहिपरिमाणं करेइ, नन्नत्थ अगरुकुंकुमचंदणमादिएहिं, अवसेसं विलेवणविहिं पच्चक्खामि ३ । तयाणंतरं च णं पुप्फविहिपरिमाणं करेइ, नन्नत्थ एगेणं सुद्धपउमेणं मालइकुसुमदामेणं वा, अवसेसं पुप्फविहिं पच्चक्खामि ३ । तयाणंतरं च णं आभरणविहिपरिमाणं करेइ, नन्नत्थ मट्ठकण्णेज्जएहिं नाममुद्दाए य, अवसेसं आभरणविहिं पच्चक्खामि ३ । तयाणंतरं च णं धूवणविहिपरिमाणं करेइ, नन्नत्थ अगरुतुरुक्कधूवमादिएहिं, अवसेसं धूवणविहिं पच्चक्खामि ३ । तयाणंतरं च णं भोयणविहिपरिमाणं करेमाणे पेज्जविहिपरिमाणं करेइ, नन्नत्थ एगाए कट्ठपेज्जाए, अवसेस पेज्जविहिं पच्चक्खामि ३ । तयाणंतरं च णं भक्खविहिपरिमाणं करेइ, नन्नत्थ एगेहिं घयपुण्णेहिं खण्डखज्जएहिं वा, अवसेसं भक्खविहिं पच्चक्खामि ३ ।

अर्थः—इसके बाद वस्त्र का परिमाण करता है—एक क्षोमयुगल (सूत के वस्त्र की जोड़ी) के सिवाय अधिक कपडा पहरने का मन वचन काया से पच्चक्खाण करता हूं और करवाता हूं। इसके बाद विलेपन का परिमाण करता है—अगरू कुमकुम और चंदन के सिवाय दूसरी किसी भी वस्तु का शरीर पर विलेपन न करूंगा, न कर

आनंद के व्रतोच्चार.

वाऊंगा । अब पुष्प का परिमाण करता है—शुद्ध पद्म के फूल की और मालती के फूल की माला के सिवाय दूसरे फूलों को मैं मन वचन काया से न वापरूंगा, न वपराऊंगा । इसके बाद आभूषण का परिमाण करता है—कानमें दो सादे कुंडल और नाममुद्रा (अपना नाम खोदी हुई अंगूठी) के सिवाय दूसरा कोई आभूषण मन वचन काया से न पहरूंगा, न पहराउंगा । अब धूप का परिमाण करता है—अगरू और तुरुक्क जाति के धूप के सिवाय दूसरे जाति के धूप का मन वचन काया से पच्चक्खाण करता हूं । इसके बाद भोजन विधि का परिमाण करता हुवा प्रथम पीने की वस्तु का परिमाण करता है—कट्ठपेया (मग आदि का पानी या घीमें भूंजे हुए चाँवल का पानी) के सिवाय दूसरी वस्तु पीने का मन वचन काया से पच्चक्खाण करता हूं । इसके बाद मिष्टान्न का परिमाण करता है—घृतपूर्ण (घेवर) और खंडखाद्य (खाजा) के सिवाय दूसरी मिठाई खाने का मन वचन काया से पच्चक्खाण करता हूं ।

आनंद के व्रतोच्चार.

टीका;—'खोमजुयलेणं' ति कार्पासिकवस्त्रयुगलादन्यत्र, 'अगरु' त्ति अगुरुर्गन्धद्रव्यविशेषः, 'सुद्धपउमेणं' ति कुसुमान्तर-वियुतं पुण्डरीकं वा शुद्धपद्मं ततोऽन्यत्र, 'मालइकुसुमदाम' त्ति जातिपुष्पमाला, 'मट्टकण्णेज्जएहिं' ति मृष्टाभ्याम्–अचित्रवद्भ्यां कर्णाभरणविशेषाभ्यां 'नाममुद्द' त्ति नामाङ्किता मुद्रा–अङ्गुलीयकं नाममुद्रा 'तुरुक्कधूव' त्ति सेल्हकलक्षणो धूपः, 'पेज्जविहिं' ॥ १९ ॥
ति पेयाहारप्रकारं 'कट्ठपेज्ज' त्ति मुद्गादियूषो घृततलिततण्डुलपेया वा, 'भक्ख' त्ति खरविशदमभ्यवहार्यं भक्ष्यमित्यन्यत्र रूढम्, इह

तु पक्वान्नमात्रं तद्विवक्षितं, 'घयपुण्ण' त्ति घृतपूराः प्रसिद्धाः, 'खण्डखज्ज' त्ति खण्डलिप्तानि खाद्यानि अशोकवर्त्तयः खण्डखाद्यानि ।

टीकार्थ—'खोमजुयलेणं' सूती कपडे की जोडी। 'अगरु' सुगंधित औषधि विशेष अगुरु। 'सुद्धपउमेणं' सफेद कमल। 'मालइकुसुमदाम' मालती के पुष्प की माला। 'मट्ठकण्णेज्जएहिं' विना नकशी के सादे कुंडल विशेष। 'नाममुद्दं' अपने नामवाली अंगूठी। 'तुरुक्कधूव' सुगंधित द्रव्य विशेष, शिलारस। 'पेज्जविही' पीने योग्य आहारका प्रकार। 'कट्ठपेज्ज' मूंगका यूष या घीमें भूंजे हुए चावलका यूष, 'भक्ख' तीक्ष्ण और विशद भोजन मात्रको भक्ष्य कहते हैं, किन्तु यहां फक्त पकान्न मात्रही कहाहै। 'घयपुण्णं' घृतपूर्ण (घेवर) 'खंडखज्ज' ऊपर खांड लगाए हुए गोल खाजा मीठाई विशेष।

आनंद के व्रतोच्चार.

सूत्रम्— तयाणंतरं च णं ओदणविहिपरिमाणं करेइ, नन्नत्थ कलमसालिओदणेणं, अवसेसं ओदणविहिं पच्चक्खामि ३। तयाणंतरं च णं सूवविहिपरिमाणं करेइ, नन्नत्थ कलायसूवेण वा मुग्गमाससूवेण वा, अवसेसं सूवविहिं पच्चक्खामि ३। तयाणंतरं च णं घयविहिपरिमाणं करेइ, नन्नत्थ सारइएणं गोघयमंडेणं, अवसेसं घयविहिं पच्चक्खामि ३। तयाणंतरं च णं सागविहिपरिमाणं करेइ, नन्नत्थ वत्थुसाएण वा सुत्थियसाएण वा मंडुक्कियसाएण वा, अवसेसं सागविहिं पच्चक्खामि ३। तयाणंतरं च णं माहुरयविहिपरिमाणं करेइ, नन्नत्थ एगेणं पालंगामाहुरएणं, अवसेसं माहुरयविहिं पच्चक्खामि ३। तयाणतरं च णं

जेमणविहिपरिमाणं करेइ, नन्नत्थ सेहंबदालियंबेहिं, अवसेसं जेमणविहिं पच्चक्खामि ३। तयाणंतरं च णं पाणियविहिपरिमाणं करेइ, नन्नत्थ एगेणं अंतलिक्खोदयेणं अवसेसं पाणियविहिं पच्चक्खामि ३। तयाणंतरं च णं मुहवासविहिपरिमाणं करेइ, नन्नत्थ पंचसोगंधिएणं तंबोलेणं, अवसेसं मुहवासविहिं पच्चक्खामि ३ ॥ ६ ॥

अर्थः— इसके बाद चाँवल का परिमाण करता है—एक कलम शाली के सिवाय दूसरी जात के चाँवल खाने का मन वचन काया से पच्चक्खाण करता हूं। अब दाल का परिमाण करता है—कलाय, मूंग और उड़द के सिवाय दूसरी जात की दाल खाने का मन वचन काया से पच्चक्खाण करता हूं। अब घी का परिमाण करता है—शरद ऋतु के गौ के घी सिवाय दूसरा घी खाने का मन वचन काया से पच्चक्खाण करता हूं। इसके बाद शाक का परिमाण करता है—वथुआ, सुत्थिय (सोया) और मंडुक्किय के शाक के सिवाय दूसरा शाक खाने का मन वचन काया से पच्चक्खाण करता हूं। इसके बाद रस का परिमाण करता है—एक पालंगा माधूर रस के सिवाय दूसरा रस पीने का मन वचन काया से पच्चक्खाण करता हूं। इसके बाद जीमने की वस्तु का परिमाण करता है—सेंधाम्ल (घोलवड़ा) और दालिकाम्ल (दाल का वड़ा) के सिवाय दूसरी वस्तु खाने का मन वचन काया से पच्चक्खाण करता हूं। इसके बाद पानी का परिमाण करता है—अंतरीक्ष (आकाश से झीला हुआ) पानी के सिवाय दूसरा पानी पीने का मन वचन काया से पच्चक्खाण करता हूं। इसके बाद मुखवास का परिमाण

करता है—पंच सौगन्धिक (इलाइची, लौंग, कपूर, कंकोल और जायफल) से सुगन्धित तंबोल के सिवाय दूसरे मुखवास का मन वचन काया से पच्चक्खाण करता हूं।

टीकाः— 'ओदण' त्ति ओदनः—कूरं, 'कलत्त(म)सालि' त्ति पूर्वदेशप्रसिद्धः, 'सूव' त्ति सूपः कूरस्य द्वितीयाशनं प्रसिद्ध एव 'कलायसूवे' त्ति कलायाः चणकाकारा धान्यविशेषा मुद्गा माषाश्च प्रसिद्धाः, 'सारइएणं गोघयमंडेणं' ति शारदिकेन शरत्कालोत्पन्नेन गोघृतमण्डेन—गोघृतसारेण, 'साग' त्ति शाको वस्तुलादिः 'चूचुसाय' त्ति चूचुशाकः, सौवस्तिकशाको मण्डूकिकाशाकश्च लोकप्रसिद्धा एव, 'माहुरय' त्ति अनम्लरसानि शालनकानि, 'पालंग' त्ति वल्लिफलविशेषः, 'जेमण' त्ति जेमनानि वटकपूरणादीनि, 'सेहंबदालियंबेहिं' ति सेधे—सिद्धौ सति यानि अम्लेन—तीमनादिना संस्क्रियन्ते तानि सेधाम्लानि यानि दाल्या मुद्गादिमय्या निष्पादितानि अम्लानि च तानि दालिकाम्लानीति सम्भाव्यन्ते, 'अंतलिक्खोदयं' ति यज्जलमाकाशात्पतदेव गृह्यते तदन्तरिक्षोदकम्, 'पंचसोगन्धिएणं' ति पंचभिः—एलालवङ्गकर्पूरककोलजातीफललक्षणैः सुगन्धिभिर्द्रव्यैरभिसंस्कृतं पञ्चसौगन्धिकम्।

टीकार्थः—'ओदण' भात विशेष। 'कलमसालि' पूर्व देशमें प्रसिद्ध भात विशेष। 'सूव' दाल विशेष। 'कलायसूवे' चणा के आकारका धान्य विशेष (मटर)। मूंग और उडद दोनों प्रसिद्ध हैं। 'सारइएणं गोघयमंडेणं' शरद ऋतु में होने वाला गौ का घी। 'साग' बथुआ का शाक। 'चुचुसाए' चुचु नामक शाक विशेष, सौआ नामक शाक, मंडूकिका शाक वनस्पति विशेष प्रसिद्ध है। 'माहुरय' खटाइ जिसमें न हो ऐसा शालनक (कढी के जैसा खाद्य पदार्थ)। 'पालंग' लता विशेष का फल 'जेमण' जीमन बड़े, पूरणपोली आदि

भोजन। 'सेहंबदालियंबेहिं' पकने पर जिसमें खटाई का संस्कार किया जाता है, मूंग आदि की दाल को पीस कर और उसमें खटाई का संस्कार देकर जो बनाया जाय उसको दालिकाम्ल बोलते हैं। 'अंतलिक्खोदयं' आकाश से गिरते हुए जलका संग्रह करना उसको अंतरिक्ष उदक कहते हैं। 'पंच सोगंधिए' इलायची, लौंग, कपूर, कक्कोल (शीतल चीनी) और जायफल ये पांच सुगंधित द्रव्यों से संस्कारित को पंच सौगंधिक कहते हैं।

मूलः—तयाणंतरं च णं चउव्विहं अणट्ठादंडं पच्चक्खाइ, तं जहा—अवज्झाणायरियं पमायायरियं हिंसप्पयाणं पावकम्मोवएसे ३ ॥ ७ ॥ सू० ६ ॥

अर्थः— इसके बाद चार प्रकार के अनर्थदंड का परिमाण करता है—विना प्रयोजन अपध्यान (आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान) १, प्रमाद का आचरण २, हिंसक शस्त्र (उखली, मूसल, खड्ग, छुरी आदि) ३, और पाप कर्म का उपदेश ४ ये चार प्रकार के अनर्थदंड का मन वचन काया से पच्चक्खाण करता हूं ॥ सू० ६ ॥

टीकाः— 'अणट्ठादण्ड' त्ति अनर्थेन-धर्मार्थकामव्यतिरेकेण दण्डोऽनर्थदण्डः, 'अवज्झाणायरियं' त्ति अपध्यानम्-आर्त्तरौद्ररूपं तेनाचरितः-आसेवितो योऽनर्थदण्डः स तथा तं, एवं प्रमादाचरितमपि, नवरं प्रमादो-विकथारूपोऽस्थगिततैलभाजनधरणादिरूपो वा, हिंसं-हिंसाकारि शस्त्रादि तत्प्रदानं-परेषां समर्पणं, 'पापकर्मोपदेशः' 'क्षेत्राणि कृषत' इत्यादिरूपः ॥ ६ ॥

टीकार्थः—'अणट्ठदंड' धर्म अर्थ और काम के बिना निष्प्रयोजन पाप लगे ऐसा कार्य करना उसको अनर्थदंड कहते हैं। 'अवज्झाणायरियं' अपध्यान, आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान का चिंतन करना वह अपध्यानाचरित अनर्थदंड है। प्रमाद के वश होकर पाप-

रूप विकथा करनी, एवं तेल, घी, दूध, दही आदि को ढँकने में प्रमाद करना यह प्रमादाचरित अनर्थदंड है। हिंसा कारक शस्त्र चाकू छुरी मूसल आदि शस्त्र दूसरे को देना यह हिंस्रप्रदान अनर्थदंड है। 'पापकर्मोपदेश' खेती करो, अग्नि जलाओ, अमुक को मारो इत्यादि जो पाप का उपदेश देना वह पापकर्मोपदेश अनर्थदंड है।

सूत्रम्—इह खलु आणंदाइ समणे भगवं महावीरे आणंदं समणोवासगं एवं वयासी— एवं खलु आणंदा समणोवासएणं अभिगयजीवाजीवेणं जाव अणइक्कमणिज्जेणं सम्मत्तस्स पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंजहा—संका कंखा विइगिच्छा परपासंडपसंसा परपासंडसंथवे। तयाणन्तरं च णं थूलगस्स पाणाइवायवेरमणस्स समणोवसएणं पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंजहा—बंधे वहे छविच्छेए अइभारे भत्तपाणवोच्छेए १।

अर्थ—हे आनंद! ऐसा संबोधन करके श्रमण भगवान् श्रीमहावीरस्वामीने श्रमणोपासक आनंद श्रावक को इस प्रकार कहा—हे आनंद! जीवाजीव के स्वरूप को जानने वाले और अपनी मर्यादा में रहने वाले श्रमणोपासक (श्रावक) को सम्यक्त्व के मुख्य पांच अतिचार फक्त जानने योग्य हैं; परन्तु आचरण करने योग्य नहीं हैं। जैसे—१ शंका—समकिती श्रावक धर्म में संदेह करे नहीं। २ कांक्षा—अन्यमत की चाहना करे नहीं। ३ विचिकित्सा—धर्म के फल में संदेह या साधुजन की निंदा करे नहीं। ४ परपाखंडप्रशंसा—मिथ्यात्वियों की प्रशंसा करे नहीं और ५

व्रतों के अतिचार त्यागोपदेश

परपाखंडसंस्तव—मिथ्यात्वियों का परिचय करे नहीं। इसके बाद श्रावक स्थूल प्राणातिपात (हिंसा) व्रत के मुख्य पांच अतिचार को समझें, परन्तु आचरण करे नहीं। जैसे—१ बंध-स्थूल हिंसा के त्याग का व्रत लेने वाले श्रावक किसी जीवको बांधे नहीं। २ वध-किसी का भी वध करे नहीं, अर्थात् किसी जीवको मारे नहीं। ३ छविच्छेद—किसी जीवका अंग प्रत्यंग छेदन करे नहीं। ४ अतिभार—प्राणियों की शक्ति से अधिक बोझ लादे नहीं, या शक्ति से अधिक काम करावे नहीं और ५ भक्तपान विच्छेद-किसी जीवके खान पानमें विघ्न करे नहीं ॥ १ ॥

टीका—'आणंदाइ' त्ति हे आनन्द इत्येवंप्रकारेणामन्त्रणवचनेन श्रमणो भगवान् महावीर आनन्दमेवमवादीदिति, एतदेवाह-'एवं खलु आणंदे' त्यादि, 'अइयारा पेयाल' त्ति अतिचारा-मिथ्यात्वमोहनीयोदयविशेषादात्मनोऽशुभाः परिणामविशेषा ये सम्यक्त्वमतिचारयन्ति ते चानेकप्रकारा गुणिनामनुपबृंहादयः ततस्तेषां मध्ये 'पेयाल' त्ति साराः-प्रधानाः स्थूलत्वेन शक्यव्यपदेशत्वाद् ये ते तथा, तत्र शङ्का-संशयकरणं काङ्क्षा-अन्यान्यदर्शनग्रहः विचिकित्सा-फलं प्रति शङ्का विद्वज्जुगुप्सा वा-साधूनां जात्यादिहीलनेति, परपाषण्डाः-परदर्शनिनस्तेषां प्रशंसा-गुणोत्कीर्त्तनं परपाषण्डसंस्तवः-तत्परिचयः। तथा 'बंधे' त्ति बन्धो द्विपदादीनां रज्ज्वादिना संयमनं 'वहे' त्ति वधो यष्ट्यादिभिस्ताडनं 'छविच्छेए' त्ति शरीरावयवच्छेदः 'अइभारे' त्ति अतिभारारोपणं तथाविधशक्तिविकलानां महाभारारोपणं 'भत्तपाणवोच्छेए' त्ति अशनपानीयाद्यप्रदानं, इहायं विभागः पूज्यैरुक्तः—'बंधवहं छविछेदं अइभारं भत्तपाणवोच्छेयं। कोहादिदूसियमणो गोमणुयाईण णो कुज्जा' ॥ १ ॥ तथा 'न मारयामीति कृतव्रतस्य

विनैव मृत्युं क इहातिचारः । निगद्यते यः कुपितः करोति, व्रतेऽनपेक्षस्तदसौ व्रती स्यात् ॥ १ ॥ कायेन भग्न न ततो व्रती स्यात्कोपाद्याहीनतया तु भग्नम् । तद्देशभङ्गादतिचार इष्टः, सर्वत्र योज्यः क्रम एष धीमन् ! ॥ २ ॥ इति ।

टीकार्थः— 'आणंदाइ' हे आणंद ! इस प्रकार के संबोधन वचन से श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी ने आनंद श्रमणोपासक को कहा—हे आणंद ! मिथ्यात्वमोहनीय कर्मों के उदय से आत्मा के जो अशुभ परिणाम होते हैं, वे सम्यक्त्व के अतिचार हैं, वे गुणी जनों का सत्कार न करना इत्यादि अनेक प्रकार के हैं उन अतिचारों में जो मुख्य २ त्याग करने योग्य हैं वे इस प्रकार हैं—जिन प्ररूपित जीवाजीवादि पदार्थों में संदेह करना यह शंका अतिचार है । अन्यमत के कष्ट चमत्कार देख कर उसको ग्रहण करने की अभिलाषा करनी यह कांक्षा अतिचार है । दानादि धर्म कार्य का फल मिलेगा या नहीं ऐसा संदेह करना, या साधु साध्वी के जाति आदि का प्रकाश करके उनकी निंदा करना यह विचिकित्सा अतिचार है । अन्य दर्शनियों की प्रशंसा करना यह परपाखंड प्रशंसा अतिचार है । और उनका परिचय करना यह परपाखंड संस्तव अतिचार है । ये सम्यक्त्व के मुख्य पांच अतिचार हैं ।

व्रतों के अतिचार त्यागोपदेश

प्रथम प्राणातिपात व्रत के अतिचार नीचे लिखे अनुसार हैं— 'बंधे' द्विपद आदि अर्थात् मनुष्य और तिर्यंच आदि जीवों को रस्सी से बांधना । 'वहे' उनको लकड़ी आदि से मारना । 'छविच्छेए' उनके शरीर के नाक, कान आदि अवयवों का छेदन करना । 'अइभारे' उनके ऊपर अधिक बोझा लादना । 'भत्तपाणवोच्छेए' उनके खान पान में विघ्न डालना । पूज्य जनों ने भी कहा है कि—क्रोध से दूषित मनवाला मनुष्य गौ मनुष्य आदि प्राणियों को बांधे नहीं, मारे नहीं, तथा उनके शरीर के अवयवों का छेदन करे नहीं, उनके ऊपर शक्ति से अधिक बोझ भी लादे नहीं, तथा उनके खान पान में विघ्न डाले नहीं । यहां कोई शंका करते हैं कि—व्रत में उपेक्षा करता हुआ व्रती क्रोधित होकर प्राणी को ताड़न तर्जनादि करे तो उसको अतिचार लगे या नहीं ? क्योंकि व्रत तो जीव को जान से नहीं मारना ऐसा लिया है, और ताडन तर्जनादि से प्राणी मरता नहीं है, तो अतिचार कैसे लग सकता है ? उसका समाधान करते हैं कि-जीव

प्राण से मुक्त न होने पर भी व्रती जब क्रोध युक्त होकर दया से रहित हो जाता है, तब व्रत का एक देश भंग होता है, इसलिए अतिचार लगता है, क्योंकि व्रत का एक देश से भंग होना ही अतिचार है। ऐसे सब व्रतों में इसी प्रकार से विद्वान् लोग समझ लें।

सूत्रम्—तयाणंतरं च णं थूलगस्स मुसावायवेरमणस्स पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंजहा–सहसाअब्भक्खाणे रहसाअब्भक्खाणे सदारमंतभेए मोसोवएसे कूडलेहकरणे २।

व्रतों के अतिचार त्यागोपदेश

अर्थ—इसी प्रकार श्रावक को स्थूल मृषावाद (झूठ बोलना) व्रत के पांच अतिचार जानने चाहिए किन्तु उनका आचरण करना नहीं। जैसे—१ सहसाभ्याख्यान—बिना विचार किये किसी को झूठा कलंक देना। २—रहोऽभ्याख्यान—एकान्त में बातचीत करने वाले को दोष देना। ३ स्वदारमंत्रभेद—अपनी स्त्री की गुप्त बात को प्रकट करना। ४ मृषोपदेश—झूठा उपदेश देना। ५ कुट लेख—झूठा दस्तावेज करना। ये पांच अतिचार समझे, परंतु आचरण करे नहीं। इनके सिवाय दूसरे भी मृषावाद के अतिचार बतलाये हैं। जैसे—१ कन्यालीक—कन्या की लेन देन के प्रसंग में या किसी मनुष्य की लेन देन के प्रसंग में झूठी बात कहना। २ गवालीक—पशु मात्र की लेन देन के प्रसंग में झूठी बात कहना। ३ भूम्यलीक—भूमि की लेन देन के प्रसंग में झूठी बात कहना। ४ न्यासापहार—किसी की धरोहर (अमानत) रखी हुई वस्तु को छिपाना अर्थात् खयानत करना। ५ कूटसाक्षी—झूठी गवाही देना। इन अतिचारों को समझ कर उनका आचरण करे नहीं ॥२॥

व्रतों के अतिचार त्यागोपदेश

टीका—'सहसाअब्भक्खाणे' त्ति सहसा अनालोच्याभ्याख्यानम्—असद्दोषाध्यारोपणं सहसाऽभ्याख्यानं, यथा 'चौरस्त्वम्' इत्यादि, एतस्य चातिचारत्वं सहसाकारेणैव, न तीव्रसंक्लेशेन भणनादिति १, 'रहसाअब्भक्खाणे' त्ति रहः—एकान्तस्तेन हेतुना अभ्याख्यानं रहोऽभ्याख्यानम्, एतदुक्तं भवति—रहसि मन्त्रयमाणानां वक्ति—एते हीदं चेदं च राजापकारादि मन्त्रयन्तीति, एतस्य चातिचारत्वमनाभोगभणनात्, एकांतमात्रोपाधितया च पूर्वस्माद्विशेषः, अथवा सम्भाव्यमानार्थभणनादतिचारो न तु भङ्गोऽयमिति २, 'सदारमंतभेए' त्ति स्वदारसंबन्धिनो मन्त्रस्य—विश्रम्भजल्पस्य भेदः—प्रकाशनं स्वदारमन्त्रभेदः, एतस्य चातिचारत्वं सत्यभणनेऽपि कलत्रोक्ताप्रकाशनीयप्रकाशनेन लज्जादिभिर्मरणाद्यनर्थपरम्परासम्भवात्परमार्थतोऽसत्यत्वात्तस्येति ३, 'मोसोवएसे' त्ति मृषोपदेशः—परेषामसत्योपदेशः सहसाकारानाभोगादिना, व्याजेन वा यथा 'अस्माभिस्तदिदमिदं वाऽसत्यमभिधाय परो विजित' इत्येवंवार्त्ताकथनेन परेषामसत्यवचनव्युत्पादनमातिचारः साक्षात्कारेणासत्येऽप्रवर्त्तनादिति ४, 'कूडलेहकरणे' त्ति असद्भूतार्थस्य लेखस्य विधानमित्यर्थः, एतस्य चातिचारत्वं प्रमादादिना दुर्विवेकत्वेन वा, 'मया मृषावादः प्रत्याख्यातोऽयं तु कूटलेखो न मृषावादनम्' इति भावयत इति ५, वाचनान्तरे तु 'कन्नालियं गवालियं भूमालियं नासावहारे कूडसक्खिवज्जं सन्धिकरणे' त्ति पठ्यते, आवश्यकादौ पुनरिमे स्थूलमृषावादभेदा उक्ताः, ततोऽयमर्थः सम्भाव्यते—एते एव प्रमादसहसाकारानाभोगैरभिधीयमाना मृषावादविरतेरतिचारा भवन्ति, आकुट्ट्या तु भङ्गा इति, एतेषां चेदं स्वरूपम्—कन्या—अपरिणीता स्त्री तदर्थमलीकं कन्यालीकं तेन च लोकेऽतिगर्हितत्वादिहोपात्तेन सर्वं मनुष्यजातिविषयमलीकमुपलक्षितं, एवं गवालीकमपि चतुष्पदजात्यलीकोपलक्षणं, भूम्यलीकमपदानां सचेतनाचेत-

नवस्तूनामलीकस्योपलक्षणं, न्यासो-द्रव्यस्य निक्षेपः, परैः समर्पितं द्रव्यमित्यर्थः, तस्यापहारः-अपलपनं न्यासापहारः, तथा कूटम्-असद्भूतमसत्यार्थसंवादनेन साक्ष्यं-साक्षिकर्म कूटसाक्ष्यं, कस्मिन्नित्याह-' सन्धिकरणे ' द्वयोर्विवदमानयोः सन्धानकरणे, विवादच्छेद इत्यर्थः, इह च न्यासापहारादिद्वयस्य आद्यत्रयान्तर्भावेऽपि प्रधानविवक्षयाऽपह्नवसाक्षिदानक्रिययोर्भेदेनोपादानं द्रष्टव्यमिति ।

टीकार्थः— 'सहसाअब्भक्खाणे' विना विचार किये किसीको झूठा कलंक देना । जैसे-चोर न होने पर भी उसको चोर कहना इत्यादि । यह अतिचार विना विचार पूर्वक बोलनेसे ही होता है, और तीव्र क्रोधावेश में बोलनेसे अतिचार नही होता क्योंकि यह अनाचार आदि होनेसे व्रतभंग की संभावना है ॥ १॥ 'रहसाअब्भक्खाणे' एकान्तमें बातचीत करने वालेके ऊपर झूठा दोषारोपण करना कि-कोई दो व्यक्ति एकान्तमें कुछ बातचीत कर रहे हों, उनको उद्देश करके कहे कि ये लोग राज्य विरुद्ध सलाह कर रहे हैं, ऐसा झूठ वचन बिना विचार पूर्वक कह देनेसे अतिचार लगता है । एकान्तमें बातचीत करने वाले को उद्देश करके दोषारोपण करना, यही पूर्व के अतिचार से विशेष है । संभावना मात्रसे भी दूसरेके ऊपर दोष लगानेसे यह अतिचार लग सकता है ॥ २ ॥ 'सदारमंतभेए, अपनी स्त्री की कोई गुप्त बातको प्रकाशित करनेसे अतिचार लगता है, क्योंकि अपनी स्त्री की गुप्त बात सत्य होने परभी उसको प्रकाशित करनेसे संभव है कि वह लज्जावश होकर परंपरा से मृत्युको प्राप्त कर सकती है, इसलिये स्त्रीकी गुप्त बात सत्य होने परभी कष्टदायक होनेसे असत्य समझना, इसलिये अतिचार अवश्य लगता है ॥ ३ ॥ 'मोसोवएसे' बिना उपयोग सहसा दूसरेको झूठा उपदेश देना, अथवा कपट पूर्वक कहना कि-' मैंने ऐसे २ असत्य उपदेश देकरके दूसरे को जीत लिया, इत्यादि कपट युक्त वार्तालाप कहकर दूसरेको कष्टमें डालने के लिये असत्य उपदेश देना, एवं अपने स्वयं तो असत्यमें प्रवृत्ति करे नहीं, किन्तु दूसरे को असत्यमें प्रवृत्ति करावे यह मृषोपदेश अतिचार है ॥ ४ ॥ 'कूड-लेहकरणे' झूठा लेख लिखना, यह अतिचार प्रमाद के वशसे या अविवेक से झूठा लेख लिखनसे लगता है, या मैंने झूठ बोलनेका सोगन लिया है, किन्तु झूठे खत लिखनेका नहीं लिया है, ऐसा विचार पूर्वक झूठा खत आदि लिखे तो अतिचार लगता है ॥ ५ ॥ प्रकारान्तर से

कन्यालीक, गवालीक, भूम्यलीक, न्यासापहार और संधिकरणमें कूटसाक्षी इत्यादि अतिचार "आवश्यक" आदि सूत्रों में स्थूलमृषावादके भेद बतलाये हैं। ये प्रमादके वशसे सहसात्कार से या बिना उपयोगसे मृषावाद के अतिचार लगते हैं। किन्तु ईरादा पूर्वक झूठ बोले तो व्रत का भंग होजाता है। कन्यालीक-नहीं परणी हुई कन्याके विषयमें झुठ बोलना, अर्थात् सुलक्षणी को कुलक्षणी और कुलक्षणी को सुलक्षणी कहना, इसी प्रकार समस्त मनुष्य जाती के विषयमें झुठ बोलना यह कन्यालीक अतिचार लोगोंमें बहुत निंदनीय माना है, गवालीक-समस्त पशु जाति की लेनदेन के विषयमें झुठ बोलना, यह गवालीक अतिचार है। भूम्यलीक-भूमिकी लेनदेन के विषयमें या सचेतन और अचेतन वस्तु की लेनदेन में झूठ बोलना यह भूम्यलीक अतिचार है। न्यासापहार दूसरेने अमानत रखी हुई वस्तु के विषय में खयानत (वेईमानी) करनी, यह न्यासापहार अतिचार है। कूटसाक्षी—दोनों के विवाद में संधि कराने के लिये कुयुक्ति पूर्वक झूठी गवाही देना, यह कूटसाक्षी अतिचार है। न्यासापहार और कूटसाक्षी ये दोनों अतिचार प्रथम के कन्यालीक आदि तीन अतिचारों में अंतर्गत होजाते हैं, तोभी अपह्नव (छिपाव) और साक्षीदान क्रिया के भेदों की प्रधानता बतलाने के लिये पृथक् लिखा गया है।

सूत्रम्—तयाणंतरं च णं थूलगस्स अदिण्णादाणवेरमणस्स पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंजहा—तेणाहडे तक्करप्पओगे विरुद्धरज्जाइक्कमे कूडतुलकूडमाणे तप्पडिरूवगववहारे ३।

व्रतों के अतिचार त्यागोपदेश

अर्थ—तीसरा स्थूल अदत्तादान (चोरी) व्रत के पांच अतिचार जानना, किन्तु आचरना नहीं। जैसे १—स्तेनाहृत-चोर से चोराई हुई वस्तु ग्रहण करना अर्थात् चोरी का माल खरीदना। २—तस्कर प्रयोग-चोर को प्रेरणा करना या उसको मदद करना। ३—विरुद्धराज्यातिक्रम-राज्य विरुद्ध आचरण करना। ४—कूटतुलकूटमान-झूठे तोल और झूठे नाप रखना अर्थात् कम बेसी रखकर कम देना और ज्यादे लेना इस प्रकार के झूठे तोल और

नाप रखना । ५—तत्प्रातिरूपकव्यवहार–असली वस्तु बतलाकर इसके जैसी नकली वस्तु देना ॥ ३ ॥

टीका—' तेणाहडे ' त्ति स्तेनाहृतं चौरानीतं, तत्समर्घमिति लोभात्काणक्रयेण गृह्णतोऽतिचरति तृतीयव्रतमित्यतिचारहेतुत्वात् स्तेनाहृतमित्यतिचार उक्तः, अतिचारता चास्य साक्षाच्चौर्याप्रवृत्तेः १, ' तक्करप्पओगे ' त्ति तस्करप्रयोगश्चौरव्यापारणं, 'हरत यूयम्' इत्येवमभ्यनुज्ञानमित्यर्थः, अस्याप्यतिचारताऽनाभोगादिभिरिति २, 'विरुद्धरज्जाइक्कमे' त्ति विरुद्धनृपयो राज्यं तस्यातिक्रमः—अतिलङ्घनं विरुद्धराज्यातिक्रमः, न हि ताभ्यां तत्रातिक्रमोऽनुज्ञातः, चौर्यबुद्धिरपि तस्य तत्र नास्तीति, अतिचारताऽस्यानाभोगादिना इति ३, ' कूडतुलकूडमाणे ' त्ति तुला–प्रतीता मानं–कुडवादि कूटत्वं–न्यूनाधिकत्वं, ताभ्यां न्यूनाभ्यां ददतोऽधिकाभ्यां गृह्णतोऽतिचरति व्रतमिति आतिचारहेतुत्वादातिचारः कूटतुलाकूटमानमुक्तः अतिचारत्वं चास्यानाभोगादेः, अथवा ' नाहं चौरः क्षत्रखननादेरकरणात् ' इत्यभिप्रायेण व्रतसापेक्षत्वात् ४, ' तप्पडिरूवगववहारे ' त्ति तेन–अधिकृतेन प्रतिरूपकं–सदृशं तत्प्रतिरूपकं तस्य विविधमवहरणं व्यवहारः–प्रक्षेपस्तत्प्रतिरूपकव्यवहारः, यद्यत्र घटते व्रीहिघृतादिषु पलञ्जीवसादि तस्य प्रक्षेप इतियावत्, तत्प्रातिरूपकेन वा वसादिना व्यवहरणं तत्प्रतिरूपकव्यवहारः, अतिचारता चास्य पूर्ववत् ५ ।

टीकार्थ— 'तेणाहडे' चोर ने चोरी करके लायी हुई वहुमूल्यवाली वस्तु को लोभ के वशसे सस्ते में खरीदना, यह स्तेनाहृत अतिचार में प्रत्यक्ष चोरी की प्रवृत्ति नहीं है ॥ १ ॥ ' तक्करप्पओगे ' विना ईरादा पूर्वक दूसरे को चोरी करने का उपदेश देना, यह तस्कर प्रयोग अतिचार है ॥ २ ॥ ' विरुद्धरज्जाइक्कमे' राज्य के कायदे को नहीं जानता हुआ और चोरी की बुद्धि भी नहीं रखता हुआ फक्त विना उपयोग पूर्वक दानचोरी आदि राज्य विरुद्ध आचरण करना, यह विरुद्ध राज्यातिक्रम अतिचार है ॥ ३ ॥ ' कूडतुलकूडमाणे '

झूठे तोल और झूठे नाप रखना अर्थात् तोले और नाप न्यूनाधिक रखना, इसी से न्यून देना और अधिक लेना, यह विना उपयोग पूर्वक करनेसे कूडतुलकूडमान अतिचार लगता है ॥ ४ ॥ 'तप्पडिरूवगववहारे' नकली वस्तु को असली कह कर बेचना, या असली वस्तु में नकली वस्तु मिलाकर बेचना, एवं असली बतला कर नकली देना। जैसे-चावल में पलंजी (चावल सदृश धान्य विशेष) और घी में चरबी मिलाकर बेचना, या घी बतला कर चरबी देना यह तत्प्रतिरूपकव्यवहार अतिचार है ॥ ५ ॥

सूत्रम्—तयाणंतरं च णं सदारसंतोसिए पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंजहा—इत्तरियपरिग्गहियागमणे अपरिग्गहियागमणे अणंगकीडा परविवाहकरणे कामभोगातिव्वाभिलासे ४ ।

व्रतों के अतिचार त्यागोपदेश

अर्थ—चौथा स्वदारा संतोष व्रत का पांच अतिचार जानना, परंतु आचरना नहीं। जैसे-१ इत्वरपरिगृहीतागमन—अमुक समय के लिए किराये पर रखी हुई स्त्री से गमन करना। २ अपरिगृहीतागमन—किसी ने ग्रहण नहीं की हुई स्त्री से अर्थात् कँवारी कन्या, विधवा, वेश्या आदि से गमन करना। ३ अनंगक्रीडा—दूसरी स्त्रियों के साथ आलिंगन आदि शृंगार चेष्टा करना। ४ परविवाहकरण—दूसरों के लडके लडकी का व्याह कराना। ५ कामभोगातिव्राभिलाष—कामभोग में तीव्र इच्छा करना। ये पांच अतिचार समझ कर आचरण करे नहीं ॥ ४ ॥

टीका—'सदारसंतोसीए' त्ति स्वदारसन्तुष्टेरित्यर्थः, 'इत्तरियपरिग्गहियागमणे' त्ति इत्वरकालपरिगृहीता कालशब्दलोपादित्वरपरिगृहीता-भाटीप्रदानेन कियन्तमपि कालं दिवसमासादिकं स्ववशीकृतेत्यर्थः, तस्यां गमनं—मैथुनासेवनमित्वरपरिगृहीतागमनं,

अतिचारता चास्यातिक्रमादिभिः १, 'अपरिग्गहियागमणे' त्ति अपरिगृहीता नाम वेश्या अन्यसत्कपरिगृहीतभाटिका कुलाङ्गना वा अनाथेति, अस्याप्यतिचारताऽतिक्रमादिभिरेव २, 'अणंगकीड' त्ति अनङ्गानि-मैथुनकर्मापेक्षया कुचकुक्षोरुवदनादीनि तेषु क्रीडनमनङ्गक्रीडा, अतिचारता चास्य स्वदारेभ्योऽन्यत्र मैथुनपरिहारेणानुरागादालिङ्गनादि विदधतो व्रतमालिन्यादिति ३, 'परविवाहकरणे' त्ति परेषाम्-आत्मन आत्मीयापत्येभ्यश्च व्यतिरिक्तानां विवाहकरणं परविवाहकरणं, अयमभिप्रायः-स्वदारसन्तोषिणो हि न युक्तः परेषां विवाहादिकरणेन मैथुननियोगोऽनर्थको विशिष्टविरतियुक्तत्वादित्येवमनाकलयतः परार्थकरणोद्यततयाऽतिचारोऽयमिति ४, 'कामभोगतिव्वाभिलासे' त्ति कामौ-शब्दरूपे भोगाः-गन्धरसस्पर्शास्तेषु तीव्राभिलाषः-अत्यन्तं तदध्यवसायितं कामभोगतीव्राभिलाषः, अयमभिप्रायः-स्वदारसन्तोषी हि विशिष्टविरतिमान्, तेन च तावत्येव मैथुनासेवा कर्तुमुचिता यावत्या वेदजनिता बाधोपशाम्यति, यस्तु वाजिकरणादिभिः कामशास्त्रविहितप्रयोगैश्च तामाधिकामुत्पाद्य सततं सुरतसुखमिच्छति स मैथुनविरतिव्रतं परमार्थतो मलिनयति, को हि नाम सकर्णकः पामामुत्पाद्याग्निसेवाजनितं सुखं वाञ्छेदिति अतिचारत्वं कामभोगतीव्राभिलाषस्येति ५।

टीकार्थः—'सदारसंतोसीए'-परस्त्री का सर्वथा त्याग करके अपनी स्त्री से ही संतोष मानना, यह स्वदारसंतोष व्रत है। इसके अतिचार—'इत्तरियपरिग्गहियागमणे'-कुछ दिन या मास के लिये किराये पर रखी हुई स्त्री से मैथुन सेवन करना, यह इत्वरपरिगृहीतागमन अतिचार व्रत के अतिक्रम से अर्थात् नियमों का आंशिकरूप से खण्डन करने से लगता है ॥ १ ॥ 'अपरिग्गहियागमणे'-वेश्या से या किराये पर रखी हुई दूसरे की स्त्री से अथवा अनाथ ऐसी कुलीन स्त्री से मैथुन सेवन करना, यह अपरिगृहीतागमन अतिचार व्रत के अतिक्रम से लगता है ॥ २ ॥ 'अणंगकीड'-मैथुन कर्म की अपेक्षा से परस्त्री के स्तनमर्दन, पेट या जांघ को देखना अथवा मुखचुंबन ॥ ३३ ॥

इत्यादि हास्य खेल कुतूहल करना, यह अनंगकीडा नामक अतिचार परस्त्री से मैथुन सेवन का त्याग होनेसे उसके साथ प्रेम पूर्वक आलिंगन आदि करने से लगता है ॥ ३ ॥ 'परविवाहकरण'-अपने अथवा अपने संतान को छोड कर दूसरे का विवाह करना परविवाह अतिचार है। दूसरे का विवाह करके उसको मैथुन में प्रवृत्ति कराना अनर्थक है, यह स्वदार संतोषी व्रतवाले मनुष्य को योग्य नहीं है, इस प्रकार विना विचार किये दूसरे का विवाह करने के लिए उद्यत होने से यह अतिचार लगता है ॥ ४ ॥ 'कामभोगतिव्वाभिलासे'-स्त्री के शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श में अत्यंत अनुराग रखना यह कामभोगतीव्राभिलाष अतिचार है। स्वदार संतोष व्रतवाले मनुष्य को उतना ही मैथुन सेवन करना उचित है कि पुरुषवेद या स्त्रीवेद जनित बाधा शांत हो जाय, परंतु कामशास्त्र में लिखे अनुसार काम को प्रदीप करनेवाली औषधि विशेष खा करके निरंतर मैथुन सुख की चाहना रखना, यह मैथुन विरति व्रत को परमार्थ से मलीन करता है। 'ऐसा कौनसा समझदार मनुष्य है जो खाज को उत्पन्न करके अग्नि सेवन के सुख की चाहना करे?' इस लिए यह कामभोग में तीव्र अभिलाषा रखने से यह अतिचार लगता है ॥ ५ ॥

व्रतों के अतिचार त्यागोपदेश

१० **सूत्रम्—तयाणंतरं च णं इच्छापरिमाणस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा–खेत्तवत्थुपमाणाइक्कमे हिरण्णसुवण्णपमाणाइक्कमे दुपयचउप्पयपमाणाइक्कमे धणधन्नपमाणाइक्कमे कुवियपमणाइक्कमे ५।**

अर्थ—श्रमणोपासक श्रावक पांचवां इच्छापरिमाण व्रत के पांच अतिचार जाने किन्तु आचरन करे नहीं—जैसे—१ क्षेत्र वास्तु के परिमाण का उल्लंघन करना, अर्थात् खेत आदि जो भूमि आजीवका के लिए रखी हो, उस-

से ज्यादे रखना। २ हिरण्यसुवर्णपरिमाणातिक्रम—सोना चांदी आदि धातु को परिमाण से ज्यादा रखना। ३ द्विपद्चतुष्पद परिमाणातिक्रम—दो पैर वाले सेवकजन और चार पैर वाले पशु इनको परिमाण से अधिक रखना। ४ धनधान्यपरिमाणातिक्रम—धन और धान्य का परिमाण से ज्यादे रखना। ५ कुपितपरिमाणातिक्रम—घरमें स्थाली आदि वापरने की वस्तु का परिमाण से ज्यादे रखना। ये पांच अतिचार समझ कर आचरण करे नहीं ॥ ५ ॥

टीका—'खेत्तवत्थुपमाणाइक्कमे, त्ति क्षेत्रवस्तुनः प्रमाणातिक्रमः, प्रत्याख्यानकालगृहीतमानोल्लङ्घनमित्यर्थः, एतस्य चातिचारत्वमनाभोगादिनाऽतिक्रमादिना वा, अथवा एकक्षेत्रादिपरिमाणकर्तुस्तदन्यक्षेत्रस्य वृत्तिप्रभृतिसीमापनयनेन पूर्वक्षेत्रे योजना क्षेत्रप्रमाणातिक्रमोऽतिचार एव, व्रतसापेक्षत्वात्तस्येति १, 'हिरण्णसुवण्णपमाणाइक्कमे' त्ति प्राग्वत्, अथवा राजादेः सकाशाल्लब्धं हिरण्याद्यभिग्रहावधिं यावदन्यस्मै प्रयच्छतः 'पुनरवधिपूर्त्तौ ग्रहीष्यामि' इत्यध्यवसायवतोऽयमतिचारस्तथैवेति २, 'धणधन्नपमाणाइक्कमे' त्ति अनाभोगादेः अथवा लभ्यमानं धनाद्यभिग्रहावधिं यावत्परगृह एव बन्धनबद्धं कृत्वा धारयतोऽतिचारोऽयमिति ३, 'दुपयचउप्पयपमाणाइक्कमे' त्ति अयमपि तथैव. अथवा गोवडवादिचतुष्पदयोपित्सु यथा अभिग्रहकालावधिपूर्त्तौ प्रमाणाधिकवत्सादिचतुष्पदोत्पत्तिर्भवति तथा षण्ढादिकं प्रक्षिपतोऽतिचारोऽयं, तेन हि जातमेव वत्सादिकमपेक्ष्य प्रमाणातिक्रमस्य परिहृतत्वाद्गर्भगतापेक्षया तस्य सम्पन्नत्वादिति ४, 'कुवियपमाणाइक्कमे' त्ति कुप्यं-गृहोपस्करः स्थालकचोलकादि, अयं चातिचारोऽनाभोगादिना, अथवा पञ्चैव स्थालानि परिग्रहीतव्यानीत्याद्यभिग्रहवतः कस्याप्यधिकतराणां तेषां सम्पत्तौ प्रत्येकं द्व्यादिमेलनेन पूर्वसङ्ख्यावस्थापनेनातिचारोऽयमिति

८, आह च—" खेत्ताइहिरण्णाई धणाइदुपयाइकुप्पमाणकमे । जोयणपमाणबन्धणकारणभावेहि नो कुज्जा ॥ १ ॥ "

टीकार्थः—'खेत्तवत्थुपमाणाइक्कमे'–क्षेत्र और वास्तु (मकान) का प्रत्याख्यान करते समय जितना परिमाण रखा हो, उससे अधिक रखना, यह प्रमाणातिक्रम अतिचार व्रत का उपयोग न रहने से या अतिक्रम से लगता है। जैसे—व्रत की चाहना रखता हुआ अमुक क्षेत्र का नियम लेनेवाला व्रती एक क्षेत्र के परिमाण को बढाने के लिये दूसरे क्षेत्र की बाड आदि तोडकर पहले क्षेत्र के साथ मिला देना यह क्षेत्र प्रमाणातिक्रम अतिचार है ॥ १ ॥ 'हिरण्णसुवण्णपमाणाइक्कमे'–चांदी और सोना जितने परिमाण में रखने का नियम लिया हो, उससे विना उपयोग अधिक रखना, या अमुक वर्ष तक का नियम लेने बाद राजा आदिके पास से चांदी या सोना भेंट मिल जाय तो उसको नियम की अवधि तक दूसरे के पास अवधि पूर्ण होने बाद वापीस लेने की इच्छा से रखे, यह हिरण्यसुवर्णप्रमाणातिक्रम अतिचार है ॥ २ ॥ 'धणधन्नपमाणाइक्कमे'–धन और धान्य का परिमाण विना उपयोग नियम से अधिक रखा जाय, या अधिक प्राप्त हुआ जानकर अभिग्रह की अवधि तक दूसरे के पास वापीस लेने की इच्छा से रखे, यह धनधान्यप्रमाणातिक्रम अतिचार है ॥ ३ ॥ 'दुपयचउप्पयपमाणाइक्कमे'–दास और दासी आदि द्विपद को, तथा गौ, भेंस और घोडा आदि चतुष्पद को विना उपयोग नियम से अधिक रखना, या बच्चा पैदा होजाने से चतुष्पद की वृद्धि हो जाय, या वृद्धि न होनेपावे इसलिये नपुंसक बनादिया जाय, एवं विचार करे कि मैंने नियम तो पहले उत्पन्न हुए बच्चे आदि का लिया था, परन्तु यह तो पीछे से गर्भ द्वारा उत्पन्न होकर बढा है इत्यादि विचार करके रखे तो यह द्विपदचतुष्पदप्रमाणातिक्रम अतिचार लगता है ॥ ४ ॥ 'कुवियपमाणाइक्कमे'–स्थाली, कटोरा आदि गृहोपयोगी वस्तु विना उपयोग नियम से अधिक रखना, या प्रमाण से अधिक हो जाय तो उसको एक दूसरे के साथ मिला करके संख्या पूरी करना। जैसे—पांच स्थाल रखने का नियम लिया है, उसमें कारण विशेष अधिक हो जायँ तो नियम की संख्या पूरी रखने के लिये दो २ को मिलाकर एक बडा स्थाल बनवाना, यह कुप्यप्रमाणातिक्रम अतिचार है ॥ ५ ॥ कहा है कि—" क्षेत्रादिहिरण्यादिद्विपदादिकुप्यमानक्रमान् । योजन–

प्रदान बन्धनकारणभावैः नो कुर्यात् ॥ १ ॥" अर्थात् क्षेत्र और वास्तु आदि में योजनादि से, सोना आदि में कुछ समय के लिये दूसरे के पास रख करके, धन धान्य आदि को बोरा आदि में भर के दूसरे के पास रख करके, द्विपद आदि को पीछे से उत्पन्न होनेवाले कारण से और कुप्य आदि को एक दूसरे के साथ मिलाकर परिमाण के बराबर करने के इरादे से व्रत का अतिक्रमण करना यह अतिचार है।

सूत्रम्—तयाणंतरं च णं दिसिवयस्स पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंजहा—उड्ढदिसिपमाणाइक्कमे अहोदिसिपमाणाइक्कमे तिरियदिसिपमाणाइक्कमे खेत्तवुड्ढी सइअन्तरद्धा ६ ।

व्रतों के अतिचार त्यागोपदेश

अर्थ—इसके बाद छट्ठे दिग् परिमाणव्रत के पांच अतिचार समझना परन्तु आचारना नहीं। जैसे—१ ऊर्ध्व-दिशा के परिमान से अधिक उपर जाना। २ अधो दिशा के परिमान से नीचे जाना। ३ तिर्यग् दिशा के परिमान से अधिक मार्ग जाना। ४ क्षेत्रवृद्धि—क्षेत्रके नापमें वृद्धि करना, या एक तरफ घटाकर दूसरी तरफ बढाना। ५ स्मृति अंतर्धा—किये हुए परिमान के नियम को भूल जानेसे अधिक भूमि जाना। ये पांच अतिचार समझकर उनका आचरण करे नहीं ॥ ६ ॥

टीका—दिग्व्रतं शिक्षाव्रतानि च यद्यपि पूर्वं नोक्तानि तथापि तत्र तानि द्रष्टव्यानि, अतिचारभणनस्यान्यथा निरवकाशता स्यादिहेति, कथमन्यथा प्रागुक्तं—"दुवालसविहं सावगधम्मं पडिवज्जिस्सामि" इति, कथं वा वक्ष्यति—'दुवालसविहं सावगधम्मं पडिवज्जइ' इति, अथवा सामायिकादीनामित्वरकालीनत्वेन प्रतिनियतकालकरणीयत्वान्न तदैव तान्यसौ प्रतिपन्नवान् दिग्व्रतं च विरतेर-

भावाद् उचितावसरे तु प्रतिपत्स्यत इति भगवतस्तदतिचारवर्जनोपदेशनमुपपन्नं, यच्चोक्तं 'द्वादशविधं गृहिधर्मं प्रतिपत्स्य' यच्च वक्ष्यति 'द्वादशविधं श्रावकधर्मं प्रतिपद्यते' तद् यथाकालं तत्करणाभ्युपगमनादनवद्यमवसेयमिति । तत्र 'उड्ढदिसिपमाणाइक्कमे' त्ति, क्वचिदेवं पाठः, क्वचित्तु 'उड्ढदिसाइक्कमे' त्ति, एते चोर्ध्वदिगाद्यतिक्रमा अनाभोगादिनाऽतिचारतयाऽवसेयाः १–३, 'खेत्तवुड्ढि'–त्ति एकतो योजनशतपरिमाणमभिगृहीतमन्यतो दश योजनान्यभिगृहीतानि, ततश्च यस्यां दिशि दश योजनानि तस्यां दिशि समुत्पन्ने कार्ये योजनशतमध्यादपनीयान्यानि दश योजनानि तत्रैव स्वबुद्ध्या प्रक्षिपति, संवर्धयत्येकत इत्यर्थः, अयं चातिचारो व्रतसापेक्षत्वादवसेयः ४, 'सइअन्तरद्ध' त्ति स्मृत्यन्तर्धा–स्मृत्यन्तर्धानं स्मृतिभ्रंशः 'किं मया व्रतं गृहीतं शतमर्यादया पञ्चाशन्मर्यादया वा ?' इत्येवमस्मरणे योजनशतमर्यादायामपि पञ्चाशतमतिक्रामतोऽयमतिचारोऽवसेय इति ५ ।

टीकार्थ—दिग्व्रत और शिक्षाव्रतों को पहले कहा नहीं है, तो भी ये समझ लेना चाहिये । क्योंकि उनको नहीं कहने से अतिचार का कहना निरर्थक हो जायगा और 'दुवालसविहं सावगधम्मं पडिवज्जिस्सामि' या 'पडिवज्जइ' पाठ भी व्यर्थ हो जायगा । सामायिक आदि शिक्षाव्रत और दिग्व्रत स्वल्प कालिक होने से प्रति नियत समय में ही करने के हैं इसलिये व्रत लेते समय स्वीकृत नहीं किये किन्तु उचित समय में अवश्य स्वीकारेगा इसलिये श्रमण भगवानने उनके अतिचार वर्जन का उपदेश दिया है । पहले बारह प्रकार के व्रतों को स्वीकार करूंगा और आगे स्वीकार करता हूँ, ऐसा कहने का तात्पर्य यह है कि—व्रतों को लेते समय दिग्व्रत और शिक्षा व्रतों का इस प्रकार स्वीकार करते हैं कि 'यथासमय अवश्य करूंगा' ऐसा स्वीकार करने से व्रती यथासमय दिग्व्रत लेवेगा, इसलिये उसके अतिचार बतलाते हैं—'उड्ढदिसिपमाणाइक्कमे'—उर्ध्वदिशा, अधोदिशा और तिर्यग्दिशा में जाने आने का जितना परिमाण रखा हो, उससे अधिक विना उपयोग जाना आना हो तो दिक्परिमाणातिक्रम अतिचार लगता है ॥ १, से ३ ॥ 'खेत्तवुड्ढि' दिशा के परिमाण

व्रतों के अतिचार त्यागोपदेश

व्रत में जितने योजन रखे हों, उसमें एक दिशा के योजन कम करके दूसरी दिशा में बढाना, जैसे—एक दिशा में एक सौ योजन तक और दूसरी दिशा में दश योजन तक जाने आने का नियम रखा हो, उसमें यदि दश योजन वाली दिशामें कार्यवश अधिक जाने का मौका आजाय, उस समय एक सौ योजनवाली दिशा के योजन कम करके दश योजन वाली दिशा में व्रत की चाहना रखता हुआ जोड़ दे तो क्षेत्रवृद्धि अतिचार लगता है ॥ ४ ॥ 'सइअंतरद्ध'—दिशा के परिमाण का विस्मृत हो जाने से अधिक जाना आना हो जाय, अर्थात् एक सौ योजन जाने का नियम रखा है ? या पचास योजन का रखा है ? उसका विस्मरण हो जाने से परिमाण से अधिक जाना आना हो जाय, यह स्मृति अंतर्धान अतिचार है ॥ ५ ॥

व्रतों के अतिचार त्यागोपदेश

सूत्रम्—तयाणंतरं च णं उवभोगपरिभोगे दुविहे पण्णत्ते, तंजहा— भोयणओ य कम्मओ य, तत्थ णं भोयणओ समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंजहा—सचित्ताहारे सचित्तपडिबद्धाहारे अप्पउलिओसहिभक्खणया दुप्पउलिओसहिभक्खणया तुच्छोसहिभक्खणया, कम्मओ णं समणोवासएणं पणरस कम्मादाणाइं जाणियव्वाइं न समायरियव्वाइं, तंजहा—इंगालकम्मे वणकम्मे साडीकम्मे भाडीकम्मे फोडीकम्मे दंतवाणिज्जे लक्खवाणिज्जे रसवाणिज्जे विसवाणिज्जे केसवाणिज्जे जंतपीलणकम्मे निल्लंछणकम्मे दवग्गिदावणया सरदहतलावसोसणया असईजणपोसणया ७ ।

अर्थ—इसके बाद सातवाँ उपभोगपरिभोग व्रतके भोजनाश्रित और कर्माश्रित ये दो भेद समझना ।

व्रतों के
अतिचार
त्यागोपदेश

उनमें भोजाश्रित उपभोगपरिभोग व्रतके पांच अतिचार जानना, परन्तु आचरना नहीं। जैसे-१ सचित्त (सजीव) वस्तु खाना। २ सचित्तवस्तु से मिली हुई अन्य वस्तु खाना। ३ अपक्व—नहीं पकी हुई कची वस्तु खाना। ४ बराबर न पकी हुई (अधकची) वस्तु खाना और ५ तुच्छ औषधियों का सेवन करना। ये पांच अतिचार समझ कर आचरना नहीं। अब कर्माश्रित उपभोगपरिभोग व्रतके पंद्रह कर्मादान जानना, किन्तु आचरना नहीं। जैसे—१ अंगारकर्म—अग्निका उपभोग करना पडे ऐसा व्यापार। २ वनकर्म—काष्ट आदि कटवाकर जंगलका विनाश करना पडे ऐसा व्यापार। ३ शकटकर्म—गाड़ी इक्का आदि बनवाकर बेचने का व्यापार। ४ भाटककर्म—गाड़ी बेल घोडे आदि को किराये देने का धंधा करना। ५ स्फोटककर्म—खान खोदाने का धंधा करना। ६ दंतवाणिज्य—हाथीदांत छीप हड्डी चमडा आदि का व्यापार करना। ७ लक्खवाणिज्य—लाख चिपड़ी आदि का व्यापार। ८ रसवाणिज्य—मदिरा आदि रसका व्यापार। ९ विषवाणिज्य—अफीम सोमल आदि विषका व्यापार। १० केशवाणिज्य—चमरी गायके केश और मोर आदि पक्षियों के पंख आदिका व्यापार। ११ यंत्रपीलनकर्म—घानी, कोल्हू, चक्की आदि चलाने का व्यापार। १२ निर्लाछनकर्म—घोडे बैल आदिको खसी करना अर्थात् पशु के नाक कान वृषण आदि अवयवों का छेदन करना। १३ दवाग्निदानकर्म—जंगल खेत आदि में आग लगाना। १४ सरोहृदतडागपरिशोषणता— बडा जलाशय, सरोवर आदि को सूखाने का धंधा करना। १५ असतीजनपोषणता—दुराचारी

मनुष्यों का पोषण या हिंसक प्राणियों का पालन करना । ये पंद्रह कर्मादान श्रमणोपासक आचरणकरे नहीं ॥ ७ ॥

टीकाः— 'भोयणओ कम्मओ य' त्ति भोजनतो-भोजनमाश्रित्य बाह्याभ्यन्तरभोजनीयवस्तून्यपेक्ष्येत्यर्थः, 'कर्मतः'-क्रियां जीवनवृत्तिं बाह्याभ्यन्तरभोजनीयवस्तुप्राप्तिनिमित्तभूतामाश्रित्येत्यर्थः, 'सचित्ताहारे' त्ति सचेतनाहारः, पृथिव्यप्कायवनस्पतिकायजीवशरीरिणां सचेतनानामभ्यवहरणमित्यर्थः, अयं चातिचारः कृतसचित्ताहारप्रत्याख्यानस्य कृततत्परिमाणस्य वाऽनाभोगादिना प्रत्याख्यातं सचेतनं भक्षयतस्तद्वा प्रतीत्यातिक्रमादौ वर्तमानस्य १, 'सचित्तपडिबद्धाहारे' त्ति सचित्ते वृक्षादौ प्रतिबद्धस्य गुन्दादेरभ्यवहरणम्, अथवा सचित्ते-अस्थिके प्रतिबद्धं यत्पक्वमचेतनं खर्जूरफलादि तस्य सास्थिकस्य कटाहमचेतनं भक्षयिष्यामीतरत्परिहरिष्यामि इति भावनया मुखे क्षेपणमिति, एतस्य चातिचारत्वं व्रतसापेक्षत्वादिति २, 'अप्पउलिओसहिभक्खणया' त्ति अपक्वायाः-अग्निनाऽसंस्कृतायाः ओषधेः- शाल्यादिकाया भक्षणता-भोजनमित्यर्थः, अस्याप्यतिचारताऽनाभोगादिनैव, ननु सचित्ताहारातिचारेणैव अस्य संगृहीतत्वात्किं भेदोपादानेनेति !, उच्यते, पूर्वोक्तपृथिव्यादिसचित्तसामान्यापेक्षया ओषधीनां सदाऽभ्यवहरणीयत्वेन प्राधान्यख्यापनार्थं, दृश्यते च सामान्योपादाने सत्यपि प्राधान्यापेक्षया विशेषोपादानमिति ३, 'दुप्पउलिओसहिभक्खणया' त्ति दुष्पक्वाः अग्निना (अर्धस्विन्ना) ओषधयस्तद्भक्षणता, अतिचारता चास्य पक्वबुद्ध्या भक्षयतः ४, 'तुच्छोसहिभक्खणया' त्ति तुच्छाः-असारा ओषधयः-अनिष्पन्नमुद्गफलीप्रभृतयः, तद्भक्षणे हि महती विराधना स्वल्पा च तत्कार्य(भूता)तृप्तिरिति विवेकिनाऽचित्ताशिना ता अचित्तीकृत्य न भक्षणीया भवन्ति, तत्करणेनापि भक्षणेऽतिचारो भवति, व्रतसापेक्षत्वात्तस्येति ५, इह च पञ्चातिचारा इत्युपलक्षणमात्रमेवावसेयं, यतो मधुमद्यमांसरात्रिभोजनादिव्रतिनामनाभोगातिक्रमादिभिरनेके ते सम्भवन्तीति ॥

टीकार्थ—अब भोगोपभोग व्रत के अतिचार भोजन आश्रित और जो आजीविका के लिये बाह्य और अभ्यंतर भोगोपभोग वस्तु की प्राप्ति के लिये कुत्सित व्यापार आदि कर्म किया जाय वह कर्म आश्रित, एवं दो प्रकार के हैं। उनमें प्रथम भोजन आश्रित पांच अतिचारों को बतलाते हैं—'सचित्ताहारे'–सचित्त ऐसी पृथिवीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय का भक्षण करना। यह सचित्ताहार अतिचार सचित्त आहारका प्रत्याख्यान करने के बाद या उनका परिमाण करने के बाद विना उपयोग प्रत्याख्यान की हुई सचित्त वस्तु का भक्षण करने से अथवा परिमाण के उल्लंघन से लगता है ॥ १ ॥ 'सचित्तपडिबद्धाहारे'–सचित्त वस्तु के साथ लगी हुई अचित वस्तु गोंद आदि का भक्षण करना, अथवा गुठली सहित अचित ऐसे खजूर आदि फल को खाना, या गुठलीवाले खजूर आदि को कडाही में भूंजकर अचित समझ कर उसको मुखमें डालना, यह सचितप्रतिबद्धाहार अतिचार है ॥ २ ॥ 'अप्पउलिओसहिभक्खणया'–अग्नि से संस्कार नहीं की हुई शाली आदि कच्ची औषधियों का विना उपयोग भक्षण करना। यह अतिचार सचित्ताहार के अतिचार में आजाता है तो इसको अलग कहने की क्या जरूरत है? उसका समाधान करते हैं कि—पहले पृथिवीकाय आदि सचित्त आहार में सामान्य रूपसे औषधियों का भक्षण करना आजाता है, परन्तु यहां औषधियों की प्रधानता बतलाने के लिये अलग लिखा है। कहा है कि—'सामान्य के ग्रहणमें विशेष का ग्रहण प्राधान्य सूचक है' ॥ ३ ॥ 'दुप्पउलिओसहिभक्खणया'–कुछ कच्ची और कुछ पक्की ऐसी अर्द्धपक औषधियों को पक्क बुद्धि से भक्षण करना, यह दुष्पक्कौषधि भक्षण अतिचार है ॥ ४ ॥ 'तुच्छोसहिभक्खणया'– जिसमें खाने का पदार्थ कम हो और फेंकने का अधिक हो, ऐसी कोमल मूँगफली बोर आदि तुच्छ असार वस्तुओं को अचित्त करके व्रत की अपेक्षा रखता हुआ भक्षण करना यह तुच्छौषधि भक्षण अतिचार है। इसलिये अचित को भक्षण करनेवाले विवेकी पुरुष बडी विराधना वाली औषधियों को अचित करके भी भक्षण करे नहीं ॥ ५ ॥ ये भोजन के पांच अतिचार फक्त उपलक्षणमात्र हैं, परन्तु मधु, मद्य, मांस और रात्रिभोजन का सर्वथा त्याग होने पर भी इनके अनाभोग से या अतिक्रम से अनेक प्रकार के अतिचार लगते हैं।

व्रतों के अतिचार त्यागोपदेश

टीका—'कम्मओ ण' मित्यादि, कर्मतो यदुपभोगव्रतं 'खरकर्मादिकं कर्म प्रत्याख्यामि' इत्येवंरूपं तत्र श्रमणोपासकेन पञ्चदश कर्मादानानि वर्जनीयानि, 'इंगालकम्मे, त्ति अङ्गारकरणपूर्वकस्तद्विक्रयः, एवं यदन्यदपि वह्निसमारम्भपूर्वकं जीवनमिष्टकाभाण्डकादिपाकरूपं तदङ्गारकर्मेति ग्राह्यं, समानस्वभावत्वात्, अतिचारता चास्य कृतैतत्प्रत्याख्यानस्यानाभोगादिना अत्रैव वर्त्तनादिति एवं सर्वत्र भावना कार्य्या १, नवरं 'वनकर्म' वनस्पतिछेदनपूर्वकं तद्विक्रयजीवनं २, 'शकटकर्म' शकटानां घटनविक्रयवाहनरूपं ३, 'भाटककर्म' मूल्यार्थं गन्त्र्यादिभिः परकीयभाण्डवहनं ४, 'स्फोटकर्म' कुद्दालहलादिभिर्भूमिदारणेन जीवनं ५, 'दन्तवाणिज्यं' हस्तिदन्तशङ्खपूतिकेशादीनां तत्कर्मकारिभ्यः क्रयेण तद्विक्रयपूर्वकं जीवनं ६, 'लाक्षावाणिज्यं' सञ्जातजीवद्रव्यान्तरविक्रयोपलक्षणं ७, 'रसवाणिज्यं' सुरादिविक्रयः ८, 'विषवाणिज्यं' जीवघातप्रयोजनशस्त्रादिविक्रयोपलक्षणं ९, 'केशवाणिज्यं' केशवतां दासगवोष्ट्रहस्त्यादिकानां विक्रयरूपं १०, 'यन्त्रपीडनकर्म, यन्त्रेण तिलेक्षुप्रभृतीनां यत्पीडनरूपं कर्म तत् ११, तथा 'निर्लाञ्छनकर्म' वर्धितककरणं १२, दवाग्नेः—वनाग्नेर्दानं—वितरणं क्षेत्रादिशोधननिमित्तं दवाग्निदानमिति १३, 'सरोन्हदतडागपरिशोषणता' तत्र सरः—स्वभावनिष्पन्नं न्हदो—नद्यादीनां निम्नतरः प्रदेशः तडागं—खननसम्पन्नमुत्तानविस्तीर्णजलस्थानं एतेषां शोषणं गोधूमादीनां वपनार्थं १४, 'असतीजनपोषणता, असतीजनस्य—दासीजनस्य पोषणं तद्भाटिकोपजीवनार्थं यत्तत् तथा, एवमन्यदपिक्रूरकर्मकारिणः प्राणिनः पोषणमसतीजनपोषणमेवेति १५ ।

टीकार्थ—अब कर्म आश्रित भोगोपभोग व्रत के अतिचार बतलाते हैं—ये खरकर्म (जिसमें अनेक जीवों की हानि होती हो ऐसे निष्ठुर धंधे) पंद्रह प्रकार के हैं, उनको श्रमणोपासक समझ करके आचरण करे नहीं। 'इंगालकम्मे'—कोयले बनवाकर बेचने का धंधा,

। सूत्र ४४ ॥

एवं दूसरे भी ईंट चूना बरतन आदि पकाने का धंधा, इत्यादि अग्नि के आरंभ का कार्य करके जीवननिर्वाह करना, यह अंगार कर्म अतिचार प्रत्याख्यान लेने बाद विना उपयोग प्रमादवश हो जाने से लगता है ॥ १ ॥ 'वनकर्म'–वन को काटना या वेचना आदि धंधा करना ॥ २ ॥ 'शकटकर्म'–गाडी आदि वाहन बनाकर वेचने का धंधा करना ॥ ३ ॥ 'भाटककर्म'–गाडी, जहाज आदि रखकर दूसरे को किराये देना ॥ ४ ॥ 'स्फोटकर्म'–कुदाल या हल आदि से भूमिका विदारण करना ॥ ५ ॥ 'दंतवाणिज्य'–हाथीदांत, शंख, कोडी और सीप आदि के व्यापार से जीवन निर्वाह करना ॥ ६ ॥ 'लाक्षावाणिज्य'–जिस में बाहर के अनेक जीवों का विनाश हो, ऐसे लाख आदि का व्यापार करना ॥ ७ ॥ 'रसवाणिज्य'–मदिरा आदि रसका व्यापार करना ॥ ८ ॥ 'विषवाणिज्य'–जिस से जीवों का विनाश हो, ऐसे शस्त्र या सोमल, अफीम आदि विषका व्यापार करना ॥ ९ ॥ 'केशवाणिज्य'–केशवाले दास, गौ, ऊंट, हाथी, घोडे या मयूर आदि का वेपार करना ॥ १० ॥ 'यंत्रपीडनकर्म'–तिल. ईख आदि पीलने के यत्र का व्यापार करना ॥ ११ ॥ 'निर्लांछनकर्म'–जीवों के नाक, कान, पूंछ, आदि का छेदन करना या बैल, घोडे आदि को खसी करना ॥ १२ ॥ 'दवाग्नि'–क्षेत्र आदि साफ करने के लिये वन और झाडी आदि में आग लगाना ॥ १३ ॥ 'सरोह्रदतडागपरिशोषणता'–विना खोदी हुई जमीन में स्वाभाविक जल रहे उसको सरोवर और नदी आदि के नीचे प्रदेश को ह्रद करते हैं। गहरा और विशाल नहीं ऐसे जलाशय को तडाग कहते हैं। ऐसे सरोवर, ह्रद, तलाव, कूआ, वावडी आदि जलाशय को गेंहूँ आदि बोने के लिये सुखाना ॥ १४ ॥ 'असतीजनपोषणता'–दुष्टदासी या व्यभिचारिणी स्त्री आदि का पोषण करके उसके व्यापार से आजीविका चलाना तथा क्रूरकर्म करने वाले हिंसक जीवों का पोषण करना ॥ १५ ॥

सूत्रम्—तयाणंतरं च णं अणट्ठादण्डवेरमणस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंजहा–कंदप्पे कुक्कुइए मोहरिए संजुत्ताहिगरणे उवभोगपरिभोगाइरित्ते ८।

अर्थ—अब आठवाँ अनर्थदंड विरमणव्रत के पांच अतिचार श्रमणोपासक जाने किन्तु आचरण करे नहीं जैसे—१ कंदर्प—कामविकार पैदा करनेवाले वचन बोलना। २ कौत्कुच्य—हँसी दिल्लगी या भांड की तरह चेष्टा-करना। ३ मौखर्य—निरर्थक बकना। ४ संयुक्ताधिकरण—उखल, मुसल, तलवार आदि शस्त्र तैयार रखना। ५ उपभोगपरिभोगातिरिक्त—उपभोग और परिभोग की वस्तु का जो परिमाण किया हो उससे ज्यादे रखना। ये पांच अतिचार आचरण करे नहीं ॥ ८ ॥

व्रतों के अतिचार त्यागोपदेश

टीका—'कन्दप्पे' त्ति कन्दर्पः-कामस्तद्धेतुर्विशिष्टो वाक्प्रयोगोऽपि कन्दर्प उच्यते, रागोद्रेकात् प्रहासमिश्रं मोहोद्दीपकं नर्मेति भावः, अयं चातिचारः प्रमादाचरितलक्षणानर्थदण्डभेदव्रतस्य सहसाकारादिनेति १, 'कुक्कुइए' त्ति कौत्कुच्यम् अनेकप्रकारा मुखनयनादिविकारपूर्विका परिहासादिजनिका भाण्डानामिव विडम्बनक्रिया, अयमपि तथैव २, 'मोहरिए' त्ति मौखर्यं धाष्टर्यप्रायमसत्यासम्बद्धप्रलापित्वमुच्यते, अयमतिचारः प्रमादव्रतस्य पापकर्मोपदेशव्रतस्य वाऽनाभोगादिनैव ३, 'संजुत्ताहिगरणे' त्ति संयुक्तम्-अर्थक्रियाकरणक्षममाधिकरणम्-उदूखलमुशलादि, तदतिचारहेतुत्वादातिचारो हिंस्रप्रदानानिवृत्तिविषयः, यतोऽसौ साक्षाद्यद्यपि हिंस्रं शकटादिकं न समर्पयति परेषां तथापि तेन संयुक्तेन तेऽयाचित्वाऽप्यर्थक्रियां कुर्वन्ति, विसंयुक्ते तु तस्मिंस्ते स्वत एव विनिवारिता भवन्ति ४, 'उवभोगपरिभोगाइरित्ते' त्ति उपभोगपरिभोगविषयभूतानि यानि द्रव्याणि स्नानप्रक्रमे उष्णोदकोद्वर्तनकामलकादीनि भोजनप्रक्रमे अशनपानादीनि तेषु यदतिरिक्तम्-अधिकमात्मादीनामर्थक्रियासिद्धावप्यवशिष्यते तदुपभोगपरिभोगातिरिक्त, तदुप-

॥ ४५ ॥

चारादतिचारः, तेन ह्यात्मोपभोगातिरिक्तेन परेषां स्नानभोजनादिभिरनर्थदण्डो भवति, अयं च प्रमादव्रतस्यैवातिचार इति ५ । उक्ता-गुणव्रतातिचाराः ।

टीकार्थः—'कंदप्पे'-काम विकार को उत्पन्न करने वाले अर्थात् रागसे मोह को उद्दीपन करने वाले हास्य पूर्वक वचन बोलना यह कंदर्प अतिचार बिना उपयोग प्रमादाचरण अनर्थदंड के सेवन से लगता है ॥ १ ॥ 'कुकुइए'-अनेक प्रकार मुख और आंख आदि से भांड की तरह चेष्टा करे, जिससे दूसरे को हास्य उत्पन्न हो, यह कौत्कुच्य अतिचार विना उपयोग प्रमादाचरण अनर्थदंड के सेवन से लगता है ॥ २ ॥ 'मोहरिए'-निर्लज्ज होकर असत्य और असंबंध बकवाद करना, यह मौखर्य अतिचार प्रमादव्रत के या पापकर्मोपदेश के सेवन से विना विचार पूर्वक बकने से लगता है ॥ ३ ॥ 'संजुत्ताहिगरणे'-उखली, मूसल, चक्की आदि कूटने पीसने आदि का साधन तैयार करके रखना, कि जिससे दूसरा कोई आ करके बिना पूछे उनसे अपना काम सिद्ध करले । इसमें स्वयं हिंसा से निवृत्त है, लेकिन दूसरे को काम आजाय इस प्रकार अधिकरणों का रखना यह अतिचार का हेतु है, इसलिए अतिचार अवश्य लगता है । यदि दूसरे को देने की इच्छा न होवे तो अधिकरणों को सज्ज करके रखे नहीं, जिसे अपने आप दूसरे को देने की मनाही समझी जाती है ॥ ४ ॥ 'उवभोगपरिभोगाइरित्ते'-उपभोग और परिभोग वस्तुओं को अपने कार्य से अधिक रखना, अर्थात् स्नान करने का उष्ण जल या आंवला आदि उबटन एवं असन पान आदि भोजन इत्यादि उवभोग वस्तुओं को और मकान आदि परिभोग वस्तुओं को अपने काम से अधिक रखना। भोगोपभोग वस्तुओं को अपने कार्य से अधिक रखने से दूसरा कोई उससे अपना स्नान भोजनादिक कार्य सिद्ध करले, यह अनर्थदंड प्रमादाचरण के सेवन से लगता है ॥ ५ ॥

सूत्रम्—तयाणंतरं च णं सामाइयस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा,

तंजहा—मणदुप्पणिहाणे वयदुप्पणिहाणे कायदुप्पणिहाणे सामाइयस्स सइअकरणया सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया ॥ ९ ॥

अर्थः—अब श्रमणोपासक नववां सामायिक व्रत के पांच अतिचार जाने, किन्तु आचरण करे नहीं। जैसे-मन वचन और काया का अशुभ व्यापार करना। अर्थात् १-सामायिक में मन को काबू में न रखना। २-वचन का संयम न करना व्यर्थ खराब वचन बोलना। ३-काया (शरीर) की चपलता को न रोकना। ४-सामायिक का समय पूर्ण होने पहले सामायिक पार लेना, या सामायिक का स्मरण न रखना। ५-अव्यवस्थित सामायिक करना अर्थात् नियत समय पर न करके अन्य समय में करना। ये पांच अतिचार आचरण करे नहीं ॥ ९ ॥

टीका—अथ शिक्षाव्रतानां तानाह 'सामाइयस्स' त्ति समो-रागद्वेषविमुक्तो यः सर्वभूतान्यात्मवत्पश्यति तस्य आयः-प्रतिक्षणमपूर्वापूर्वज्ञानदर्शनचारित्रपर्यायाणां निरुपमसुखहेतुभूतानामधःकृतचिन्तामणिकल्पद्रुमोपमानां लाभः समायः सः प्रयोजनमस्यानुष्ठानस्येति सामायिकं तस्य-सावद्ययोगनिषेधरूपस्य निरवद्ययोगप्रतिसेवनस्वभावस्य च 'मणदुप्पणिहाणे' त्ति मनसो दुष्टं प्रणिधानं प्रयोगो मनोदुष्प्रणिधानं कृतसामायिकस्य गृहेतिकर्तव्यतायां सुकृतदुष्कृतपरिचिन्तनमिति भावः १, 'वयदुप्पणिहाणे' त्ति कृतसामायिकस्य निष्ठुरसावद्यवाक्प्रयोगः २, 'कायदुप्पणिहाणे' त्ति कृतसामायिकस्याप्रत्युपेक्षितादिभूतलादौ करचरणादीनां देहावयवानामनिभृतस्थापनमिति ३, 'सामाइयस्स सइअकरणय' त्ति सामायिकस्य सम्बंधिनी या स्मृतिः अस्यां वेलायां मया

सामायिकं कर्तव्यं, तथा कृतं तन्न वा इत्येवंरूपं स्मरणं, तस्याः प्रबलप्रमादतयाऽकरणं स्मृत्यकरणं ४, 'अणवट्ठियस्स करणय' त्ति अनवस्थितस्य अल्पकालीनस्यानियतस्य वा सामायिकस्य करणमनवस्थितकरणम्, अल्पकालकरणानन्तरमेव त्यजति यथाकथञ्चिद्वा तत्करोतीति भावः ५, इह चाद्यत्रयस्यानाभोगादिनातिचारत्वम् इतरद्वयस्य तु प्रमादबहुलतयेति ॥

टीकार्थ—अब चार प्रकार के शिक्षाव्रतों के अतिचार बतलाते हैं। उनमें प्रथम सामायिक का स्वरूप कहते हैं—'सामाइयस्स' राग-द्वेष से रहित होकर जो समस्त प्राणीमात्र को आत्मतुल्य देखे वह सम, इससे निरुपम सुखका हेतु भूत और चिन्तामणि कल्पवृक्ष को तिरस्कृत करनेवाले जो प्रत्येक समयमें अपूर्व २ ज्ञान दर्शन और चारित्र के पर्यायों का लाभ होना यह समाय है। यह समाय ही है प्रयोजन और अनुष्ठान जिस का वह सामायिक व्रत है। यह सावद्यव्यापार प्रतिषेध और निरवद्यव्यापार प्रतिसेवन रूप है। उसके अतिचार—'मणदुप्पणिहाणे'—सामायिक लेने बाद घर संबंधी शुभाशुभ कार्य का चिन्तवन करना, यह मनोदुष्प्राणिधान अतिचार है ॥ १ ॥ 'वयदुप्पणिहाणे'—सामायिक में कठोर सावद्य वचन बोलना, यह वचन दुष्प्राणिधान अतिचार है ॥ २ ॥ 'कायदुप्पणिहाणे'—सामायिक में रहा हुआ मनुष्य भूमिका प्रमार्जन किये बिना हाथ पैर आदि शरीरके अवयवों को विना उपयोग रखना अर्थात् बिना प्रमार्जन किये सोना, बैठना, उठना इत्यादि सावद्यव्यापार में काया को प्रवर्त्ताना, यह कायप्राणिधान अतिचार है ॥ ३ ॥ सामाइयस्स सइअकरणय'—सामायिक का विस्मृत होजाना, अर्थात् प्रबल प्रमाद के कारण मैंने सामायिक किया या नहीं किया ? ऐसा भ्रम होजाना स्मृति अकरण अतिचार है ॥ ४ ॥ 'अणवट्ठियस्स करणय'—सामायिक अनवस्थित करना, अर्थात् सामायिक का समय पूर्ण नहीं हुए पहले सामायिक पारना, या विना आदर सामायिक करना, यह अनवस्थित अतिचार है ॥ ५ ॥ इन पांच अतिचारों में पहले के तीन अतिचार विना उपयोग से और अंत्य के दो अतिचार प्रमाद की बहुलता से लगते हैं।

सूत्रम्—तयाणंतरं च णं देसावगासियस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंजहा—आणवणप्पओगे पेसवणप्पओगे सद्दाणुवाए रूवाणुवाए बहियापोग्गलपक्खेवे ॥ १० ॥

अर्थः—अब श्रमणोपासक दसवां देशावकाशिक व्रत के पांच अतिचार जाने, किन्तु आचरण करे नहीं। जेसे १–२–नियमित की हुई हद के बाहर से अपने या किसी द्वारा कोई वस्तु मँगवाना या बाहर भेजना। ३–अपना कोई कार्य के लिये खाँसी खखार आदि शब्द करना। ४–अपना मुख हाथ या आंख आदि शरीर के अवयवों को दिखा कर इशारा करना। ५–किसी कार्य के लिये कंकर, काष्ठ आदि फेंक कर संकेत करना। इत्यादि पांच अतिचार आचरण करे नहीं ॥ १० ॥

व्रतों के अतिचार त्यागोपदे

टीका—'देसावगासियस्स' त्ति दिग्व्रतगृहीतादिक्परिमाणस्यैकदेशो देशस्तास्मिन्नवकाशो–गमनादिचेष्टास्थानं देशावकाशस्तेन निर्वृत्तं देशावकाशिकं–पूर्वगृहीतदिग्व्रतसङ्क्षेपरूपं सर्वव्रतसङ्क्षेपरूपं चेति, 'आणवणप्पओगे' त्ति इह विशिष्टावधिके भूदेशाभिग्रहे परतः स्वयंगमनायोगाद्यदन्यः सचित्तादिद्रव्यानयने प्रयुज्यते सन्देशकप्रदानादिना त्वयेदमानेयम् इत्यानयनप्रयोगः १, 'पेसवणप्पओगे' त्ति बलाद्विनियोज्यः प्रेष्यस्तस्य प्रयोगो, यथाभिगृहीतप्रविचारदेशव्यतिक्रमभयात् "त्वयाऽवश्यमेव तत्र गत्वा मम गवाद्यानेयं इदं वा तत्र कर्तव्यम्" इत्येवंभूतः प्रेष्यप्रयोगः २, 'सद्दाणुवाए' त्ति स्वगृहवृत्तिप्राकाराद्यवच्छिन्नभूप्रदेशाभिग्रहे बहिः प्रयोजनोत्पत्तौ तत्र स्वयंगमनायोगाद् वृत्तिप्राकारादिप्रत्यासन्नवर्तिनो बुद्धिपूर्वकं तमभ्युत्काशितादिशब्दकरणेन समवासितकान् बोधयतः

शब्दानुपातः, शब्दस्यानुपातनम्–उच्चारणं तादृग्येन परकीयश्रवणविवरमनुपतत्यसाविति ३, 'रूवाणुवाए' त्ति अभिगृहीतदेशाद्बहिः प्रयोजनभावे शब्दमनुच्चारयत एव परेषां स्वसमीपानयनार्थं स्वशरीररूपदर्शनं रूपानुपातः ४ 'बहिया पोग्गलपक्खेवे' त्ति अभिगृहीतदेशाद्बहिः प्रयोजनसद्भावे परेषां प्रबोधनाय लेष्ट्वादिपुद्गलप्रक्षेप इति भावना ५, इह चाद्यद्वयस्यानाभोगादिनाऽतिचारत्वं इतरस्य तु त्रयस्य व्रतसापेक्षत्वादिति ॥

व्रतों के अतिचार त्यागोपदेश

टीकार्थ—'देसावगासियस्स' प्रथम लिए हुए अधिक दिशाके परिमाण को प्रतिदिन संक्षेप करके उसमें गमनादि कार्य करना यह देशावकाशिक व्रत है। यह पहले लिये हुए दिग्व्रत का संक्षेप रूप और सर्व व्रत का भी संक्षेप रूप है–इसके अतिचार 'आणवणप्पओगे'–किये हुए परिमाण से अधिक भूमि से सचित्तादि द्रव्य किसी से मंगवाना, या किसी को संदेशा भेजकर मंगवाना, यह आनयनप्रयोग अतिचार है ॥ १ ॥ 'पेसवणप्पओगे'–लिये हुए दिग्व्रत का व्यतिक्रम के भय से किसी नोकर आदिको भेजकर आदेश करना कि वहां जाकर मेरी गो आदि को ले आना, या वहां जाकर अमुक कार्य कर आना, यह प्रेष्यप्रयोग अतिचार है ॥ २ ॥ 'सद्दाणुवाए'–अपने घर की हद या किला आदि से बाहर न जाने का अभिग्रह लेने बाद बाहर जाने का कोई काम आजाय, उस समय स्वयं बाहर न जासके, इसलिये समीप में रहने वाले को खांसी आदि शब्द करके अपना होना सूचित करना, यह शब्दानुपात अतिचार है ॥ ३ ॥ 'रूवाणुवाए'–अभिग्रह लिए हुए प्रदेश के बाहर कोई कार्य आजाय तो शब्द नहीं करके दूसरे को अपना स्वरूप बतलावे, जिसे दूसरा अपनी पास आजाय, यह रूपानुपात अतिचार है ॥ ४ ॥ 'बहियापोग्गलपक्खेवे'–अभिग्रहीत प्रदेश के बाहर का कोई कार्य आजाने पर दूसरे को अपना होना सूचित करने के लिये कंकर आदि फेंकना, यह पुद्गलप्रक्षेप अतिचार है ॥ ५ ॥ इन पांच अतिचारों में प्रथम के दो अतिचार अनाभोग (विना उपयोग) से और अंत्य के तीन अतिचार व्रत की चाहना रखता हुआ कार्य करने से लगते हैं।

व्रतों के अतिचार त्यागोपदेश

सूत्रम्—तयाणंतरं च णं पोसहोववासस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा तंजहा—अप्पडिलेहियदुप्पडिलेहियसिज्जासंथारे अप्पमज्जियदुप्पमज्जियसिज्जासंथारे अप्पडिलेहियदुप्पडिलेहियउच्चारपासवणभूमी अप्पमज्जियदुप्पमज्जियउच्चारपासवणभूमी पोसहोववासस्स सम्मं अणणुपालणया ॥ ११ ॥

अर्थः—अब श्रमणोपासक (श्रावक) ग्यारहवां पौषधोपवास व्रत के पांच अतिचार जाने, परन्तु आचरण करे नहीं। जैसे १–विना पडिलेहन किये या अच्छी तरह नहीं पडिलेहन किये पौषधशाला, आसन और संथारे का उपयोग करना। २–विना साफ किये या अच्छी तरह साफ नहीं किये पौषधशाला, आसन और संथारे का उपयोग करना। ३–विना पडिलेहन किये या अच्छी तरह नहीं पाडिलेहन किये स्थंडिल भूमि (पेशाब और दस्त करने का स्थान) का उपयोग करना ४–विना साफ किये या बराबर साफ नहीं किये स्थंडिलभूमि का उपयोग करना। ५–पौषधोपवास अव्यवस्थित करना, विधिपूर्वक पालन नहीं करना। ये पांच अतिचार आचरण करे नहीं ॥ ११ ॥

टीका—'पोसहोववासस्स' त्ति इह पोषधशब्दोऽष्टम्यादिपर्वसु रूढः, तत्र पोषधे उपवासः पोषधोपवासः, स चाहारादिवि-

षयभेदाच्चतुर्विध इति तस्य, 'अप्पडिलेहिये' त्यादि अप्रत्युपेक्षितो–जीवरक्षार्थं चक्षुषा न निरीक्षितः 'दुष्प्रत्युपेक्षितः' उद्भ्रान्तचेतोवृत्तितयाऽसम्यग्निरीक्षितः शय्या–शयनं तदर्थं संस्तारकः–कुशकम्बलफलकादिः शय्यासंस्तारकः ततः पदत्रयस्य कर्मधारये भवत्यप्रत्युपेक्षितदुष्प्रत्युपेक्षितशय्यासंस्तारकः, एतदुपभोगस्यातिचारहेतुत्वादयमतिचार उक्तः १, 'एवमप्रमार्जितदुष्प्रमार्जितशय्यासंस्तारकोऽपि' नवरं प्रमार्जनं वसनाञ्चलादिना २, एवमितरो द्वौ, नवरमुच्चारः–पुरीषं, स्रवणं मूत्रं, तयोर्भूमिः स्थण्डिलम् ३, ४, एते चत्वारोऽपि प्रमादितयाऽतिचाराः, 'पोसहोववासस्स सम्मं अणणुपालणया' त्ति कृतपोषधोपवासस्यास्थिरचित्ततयाऽऽहारशरीरसत्काराब्रह्मव्यापाराणामभिलषणादननुपालना पोषधस्येति. अस्य चातिचारत्वं भावतो विरतेर्बाधितत्वादिति ॥

टीकार्थ— पोसहोववासस्स'–पौषध व्रत, यह अष्टमी चतुर्दशी आदि पर्वतिथियों में लिया जाना प्रसिद्ध है। उस पौषध के दिन उपवास करना, यह पौषधोपवास कहा जाता है। यह पौषधोपवास आहार आदिके भेदों से चार प्रकार का है–आहार पौषध १, शरीर सत्कार पौषध २, ब्रह्मचर्यपौषध ३ और अव्यापारपौषध ४। इसके अतिचार—'अप्पडिलेहिय'–जीवों की रक्षा के लिये आंख से शय्या संथारा आदिको देखे नहीं और देखे तो अच्छीतरह न देखे। शय्या अर्थात् शयन के लिये जो संथारा अर्थात् कंबल आदि बीछाने के वस्त्र का उपभोग करना यह अतिचार का हेतु है इसलिये अतिचार बतलाया है ॥ १ ॥ शय्या संथारा आदि का प्रमार्जन करे नहीं और करे तो अच्छी तरह न करे ॥ २ ॥ पेशाब और स्थंडिल आदि को देखे नहीं या अव्यवस्थित मनसे देखे ॥ ३ ॥ एवं स्थंडिल आदि की भूमिका प्रमार्जन करे नहीं, या अव्यवस्थित मनसे करे ॥ ४ ॥ ये चारों अतिचार प्रमादवशसे लगते हैं। 'पोसहोववासस्स सम्मं अणणुपालणया'–पौषधोपवास करके उसका अच्छी तरह पालन करे नहीं, अर्थात् पारणा आदि की चिन्ता करे, शरीर की शुश्रुषा करे, ब्रह्मचर्य अच्छी तरह पाले नहीं और व्यापार आदि की अभिलाषा करे, इसलिये भावसे व्रतकी विराधना होने से अतिचार लगता है ॥ ५ ॥

सूत्रम्—तयाणंतरं च णं अहासंविभागस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा—सचित्तनिक्खेवणया सचित्तपिहणया कालाइक्कमे परववदेसे मच्छरिया ॥ १२ ॥

अर्थः—अब श्रमणोपासक बारहवां यथासंविभाग (आतिथिसंविभाग) व्रत के पांच अतिचार जाने किन्तु आचरण करे नहीं। जैसे—१ साधु-मुनिराज आदि को आहार पानी न देने की इच्छा से भोजन सामग्री को सचित्त वस्तु के साथ रखना। या २—सचित्त वस्तु से ढँकना। ३—भोजन का समय व्यतीत होने बाद आमंत्रण करना। ४—दान नहीं देने की बुद्धि से अपनी वस्तु को दूसरे की कहना, और दान देने की इच्छा से दूसरे की वस्तु को अपनी कहना। ५— ईर्षा पूर्वक दान देना। ये पांच अतिचार आचरण करे नहीं ॥ १२ ॥

व्रतों के अतिचार त्यागोपदेश

टीकाः—'अहासंविभागस्से' ति अहत्ति—यथासिद्धस्य स्वार्थं निर्वर्तितस्येत्यर्थः, अशनादेः समिति—सङ्गतत्वेन पश्चात्कर्मादिदोषपरिहारेण विभजनं साधवे दानद्वारेण विभागकरणं यथासंविभागः तस्य, 'सचित्तनिक्खिवणये'—त्यादि सचित्तेषु व्रीह्यादिषु निक्षेपणमन्नादेरदानबुद्ध्या मातृस्थानतः सचित्तनिक्षेपणं १, एवं सचित्तेन फलादिना स्थगनं सचित्तपिधानम् २, 'कालातिक्रमः' कालस्य—साधुभोजनकालस्यातिक्रमः—उल्लङ्घनं कालातिक्रमः, अयमभिप्रायः,—कालमूनमधिकं वा ज्ञात्वा साधवो न ग्रहीष्यन्ति ज्ञास्यन्ति च यथाऽयं ददाति एवं विकल्पतो दानार्थमभ्युत्थानमतिचार इति ३, तथा 'परव्यपदेशः' परकीयमेतत् तेन साधुभ्यो न दीयते इति साधुसमक्षं भणनं, जानन्तु साधवो यद्यस्यैतद्भक्तादिकं भवेत्तदा कथमसमभ्यं न दद्याद् ? इति साधुसम्प्रत्ययार्थं भणनं, अथवा

व्रतों के अतिचार त्यागोपदेश

अस्माद्दानान्मम मात्रादेः पुण्यमस्त्विति भणनमिति ४, 'मत्सरिता' अपरेणेदं दत्तं किमहं तस्मादपि कृपणो हीनो वा अतोऽहमपि ददामि इत्येवंरूपो दानप्रवर्तकविकल्पो मत्सरिता ५,

टीकार्थः— 'अहासंविभागस्स' अपने लिए तैयार किये हुए भोजनादिक का साधु के लिये पश्चात्कर्मादि दोषों से रहित दान देने की बुद्धि से विभाग करना यह यथासंविभागव्रत है। ग्रन्थांतर में इसी को अतिथिसंविभाग व्रत कहा है। इसके अतिचार-'सचित्तनिक्खिवणय' अतिथि (साधु) को दान नहीं देने की बुद्धि से निर्दोष आहार पानी को सचित्त वस्तु के ऊपर रखना, यह सचित्त-निक्षेपण अतिचार है ॥ १ ॥ दान नहीं देने की बुद्धि से निर्दोष आहार को फल आदि सचित्त से ढँकना यह सचित्तपिधान अतिचार है ॥ २ ॥ 'कालातिक्रम' साधु का भोजनकाल व्यतीत होने बाद आमंत्रण करे, "साधु का भोजन समय न्यूनाधिक समझ कर मन में विचार करे कि इस समय साधु आहार लेवेंगे नहीं और साधु समझेंगे कि यह दातार है" इस प्रकार मनमें विचार करता हुआ साधु को आमंत्रण करने जाना यह कालातिक्रम अतिचार है ॥ ३ ॥ 'परव्यपदेश' नहीं देने की इच्छा से अपनी वस्तु को दूसरे की बतलाना साधु को विश्वास हो जाय इस प्रकार साधु समक्ष बोले कि 'यह भक्तपान आदि दूसरे का है' ऐसा कहने से साधु मनमें समझेंगे कि यह दातार तो है, परंतु यह आहार दूसरे का होने से हमको नहीं देता। अथवा मेरे दान से माता पिता आदि को पुण्य हो ऐसा बोल कर दान देना यह परव्यपदेश अतिचार है ॥ ४ ॥ 'मत्सरिता' दूसरे ने इस प्रकार दान दिया, तो मैं क्या कृपण हूँ या निर्धन हूँ कि मैं दान न देसकूँ, इस प्रकार ईर्षा करता हुआ साधु को दान देना यह मत्सर अतिचार है ॥ ५ ॥

टीका—एते चातिचारा एव, न भङ्गाः, दानार्थमभ्युत्थानाद् दानपरिणतेश्च दूषितत्वात्, भङ्गस्वरूपस्य चेहैवमभिधानाद्, यथा— दाणन्तरायदोसा न देइ दिज्जंतयं च वारेइ। दिण्णे वा परितप्पइ इति किवणत्ता भवे भंगो ॥१॥ आवश्यकटीकायां हि न भङ्गातिचार

योर्विशेषोऽस्माभिरवबुद्धः, केवलमिह भङ्गाद्विवेकं कुर्वद्भिरस्माभिरतिचारा व्याख्याताः सम्प्रदायात् नवपदादिषु तथा दर्शनात्,-जारिसओ जइभेओ जह जायइ जहेव तत्थ दोसगुणा। जयणा जह अइयारा भंगा तह भावणा नेया ॥२॥ इत्यस्या आवश्यकचूर्ण्यां पूर्वगतगाथाया दर्शनात्, अतिचारशब्दस्य सर्वभङ्गे प्रायोऽप्रसिद्धत्वाच्च, ततो नेदं शङ्कनीयं य एतेऽतिचारा उक्तास्ते भङ्गा एवेति, तथा य एते प्रतिव्रतं पञ्च पञ्चातिचारास्त उपलक्षणमतिचारान्तराणामवसेया न त्ववधारणं, यदाहुः पूज्याः "पंच पंचाइयारा उ, सुत्तम्मि जे पदंसिया। ते नावहारणट्ठाए, किंतु ते उवलक्खणं ॥१॥" इति। इदं चेह तत्त्वं-यत्र व्रतविषयेऽनाभोगादिनाऽतिक्रमादिपदत्रयेण वा स्वबुद्धिकल्पनया वा व्रतसापेक्षतया व्रतविषयं परिहरतः प्रवृत्तिः सोऽतिचारो, विपरीततायां तु भङ्गः, इत्येवं सङ्कीर्णातिचारपदगमनिका कार्या।

टीकार्थः— उपरोक्त सब अतिचार कहे उसको व्रत भंग नहीं समझना चाहिये, क्योंकि दान देने के लिये प्रवृत्ति करता है, परंतु दान देने के परिणाम को दूषित करता है, इसलिये अतिचार कहे हैं। व्रतभंग का स्वरूप कहा है कि- "दानान्तरायदोषाद् न ददाति ददतं च वारयति। दत्ते वा परितप्यति इति कृपणत्वाद् भवेद् भङ्गः॥" अर्थात् दानान्तराय के दोष से दान देवे नहीं, दूसरा कोई देता हो उसको मना करे और कृपणता के कारण स्वयं दान देकर पश्चात्ताप करे तो व्रतभंग होता है। आवश्यक टीका में कहा है कि-भंग और अतिचार में जो विशेषता है उसको हम नहीं समझ सकते, परन्तु व्रती व्रतभंग से व्रत की चाहना रखता है इसलिये, तथा परंपरा ऐसा सम्प्रदाय होने से, एवं नवपदवृत्ति आदि शास्त्रों में अतिचाररूप बतलाने से हमने अतिचार कहे हैं। कहा है कि- "यादृशो यतिभेदो यथा जायते यथा च दोषगुणाः। यतना यथातिचारा भङ्गास्तथा भावना ज्ञेया।" अर्थात् जिस प्रकार के यतिभेद जैसे हो वहां पर जैसे दोषगुण होते हों, जिस प्रकार की यतना, जिस प्रकार का अतिचार और भंग होता हो ये सब मन के परिणाम के अनुसार के समझना चाहिये। इस प्रकार आवश्यकचूर्णि में पूर्व की गाथा कही है। अतिचार शब्द की सर्वभंग में प्रसिद्धि नहीं है,

इसलिये जो अतिचार कहे वे सब भंग हैं ऐसी शंका नहीं करना चाहिये। प्रत्येक व्रत के पांच २ अंतिचार कहे, वे सब दुसरे अतिचारों का उपलक्षण मात्र हैं. इसलिये पांच २ ही अतिचार हैं ऐसा नहीं समझना चाहिये। पूज्यवरों ने कहा है कि-" पञ्च पञ्चातिचारास्तु सुत्रे ये प्रदर्शिताः। ते नावधारणार्थं किन्तु ते उपलक्षणम् "। अर्थात् शास्त्रों में प्रत्येक व्रत के पांच २ अतिचार बतलाये वे सब उपलक्षण मात्र हैं, किन्तु पांच २ ही हैं ऐसा निश्चय नहीं है परंतु अनेक भेद हैं। व्रत का अनाभोग से या अतिक्रम से अथवा मैंने इस प्रकार व्रत लिये हैं, इसलिये ऐसा करने से व्रत भंग नहीं होता इस प्रकार अपनी बुद्धि कल्पना से व्रत की चाहना रखता हुआ व्रत का एक देश से भंग करना यही अतिचार है। इससे विपरीत करे तो भंग हो जाता है। इस प्रकार संक्षेप से अतिचार की व्याख्या की है।

टीका—अथ सर्वविरतावेवातिचारा भवन्ति, देशविरतौ तु भङ्गा एव, यदाह-"सव्वेऽवि य अइयारा संलणाणं तु उदयओ हुंति। मूलच्छेज्जं पुण होइ बारसण्हं कसायाणं ॥१॥" अत्रोच्यते, इयं हि गाथा सर्वविरतावेवातिचारभङ्गोपदर्शनार्था, न देशविरत्यादि-भङ्गदर्शनार्था, तथैव वृत्तौ व्याख्यातत्वात्, तथा सञ्ज्वलनोदयविशेषे सर्वविरतिविशेषस्यातिचारा एव भवन्ति, न मूलच्छेदः, प्रत्या-ख्यानावरणादीनां तूदये पश्चानुपूर्व्या सर्वविरत्यादीनां मूलतः छेदो भवतीत्येवंभूतव्याख्यानान्तरेऽपि न देशविरत्यादावतिचाराभावः सिध्यति, यतो यथा संयतस्य चतुर्थानामुदये यथाख्यातचारित्रं भ्रश्यति इतरचारित्रं सम्यक्त्वं च सातिचारमुदयविशेषाभिरतिचारं च भवतीति एवं तृतीयोदये सरागचरणं भ्रश्यति देशविरतस्य तु देशविरतिसम्यक्त्वे सातिचारे निरतिचारे च प्रत्येकं तथैव स्यातां, द्वितीयोदये देशविरतिर्भ्रश्यति,सम्यक्त्वं तु तथैव द्विधा स्यात्, प्रथमोदये तु सम्यक्त्वं भ्रश्यतीति, एवं चैतत्, कथमन्यथा सम्यक्त्वातिचारेषु दैशिकेषु प्रायश्चित्तं तप एव निरूपितं, सार्विकेषु तु मूलमिति, अथानन्तानुबन्ध्यादयो द्वादश कषायाः सर्वघातिनः सञ्ज्वलनास्तु देशघातिन

इति, ततश्च सर्वघातिनामुदये मूलमेव, देशघातिनां त्वतिचार इति, सत्यं, किन्तु यदेतत्सर्वघातित्वं द्वादशानां कषायाणां तत्सर्वविरत्यपेक्षमेव शतकचूर्णिकारेण व्याख्यातं, न तु सम्यक्त्वाद्यपेक्षमिति, तथा हि तद्वाक्यं-"भगवप्पणीयं पंचमहव्वयमइयं अट्ठारससीलंगसहस्सकलियं चारित्तं घाएन्ति त्ति सव्वघाइणो" त्ति। किञ्च-प्रागुपदर्शितायाः 'जारिसओ' इत्यादिगाथायाः सामर्थ्यादतिचारभङ्गौ देशविरतिसम्यक्त्वयोः प्रतिपत्तव्याविति।

टीकार्थः— कोई शंका करता है कि-'अतिचार सर्वविरति के लिये हैं और देशविरति के लिये तो भंग ही है। कहा है कि-"सर्वेऽपि चातिचाराः संज्वलनानामुदयतो भवन्ति। मूलच्छेद्यं पुनर्भवति द्वादशानां कषायाणाम् ॥" अर्थात् सब अतिचार संज्वलन कषाय के उदय से लगते हैं और प्रत्याख्यानादि बारह प्रकार के कषायों के उदय से तो मूलव्रत का भंग हो जाता है'। इसका समाधान करते हैं कि—उक्त गाथा सर्वविरति के अतिचार और भंग बतलाने के लिये है, परंतु देशविरति आदि के अतिचार और भंग बतलाने के लिये नहीं है, ऐसा इस गाथा की वृत्ति में कहा है-संज्वलन कषाय के उदय से सर्वविरति को अतिचार लगते हैं, किन्तु व्रतभंग नहीं होता और प्रत्याख्यानावरण आदि कषायों के उदय में पश्चानुपूर्वी के क्रम से सर्वविरति आदि के व्रत का भंग होता है। इस प्रकार व्याख्या होने से देशविरति के व्रत का भंग नहीं होता, परन्तु अतिचार होते हैं। जैसे—चतुर्थ संज्वलन कषाय के उदय में यथाख्यात चारित्र का भंग होता है, परन्तु दूसरे चारित्र और सम्यक्त्व का भंग नहीं होता, किन्तु अतिचार होते हैं या निरतिचार भी हो सकता है। तीसरा प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदयसे सर्वविरति के सरागचारित्र का भंग होता है, परंतु देशविरति के देशविरति और सम्यक्त्व का भंग न होकर ये दोनों सातिचार या निरतिचार होते हैं। दूसरा अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदयसे देशविरति का भंग होता है, परंतु सम्यक्त्व भंग न होकर वह सातिचार या निरतिचार होता है। प्रथम अनन्तानुबंधी कषाय के उदयसे सम्यक्त्व का भंग होता है,

व्रतों के अतिचार त्यागोपदेश

इस प्रकार पूर्वानुक्रमसे कषायों के उदयसे व्रतका भंग और पश्चानुक्रमसे सातिचार या निरतिचार होते हैं। यहां कोई शंका करता है कि-'सम्यक्त्वादि के एक एक देशसे भंग होने से अतिचारों का तपरूप प्रायश्चित कहा और सब कषायों के उदयसे मूलव्रत का भंग कहा यह क्यों ?' अनन्तानुबंधी आदि बारह कषाय सर्वघाती हैं और संज्वलन कषाय देशघाती है, इसलिये सर्वघाती के उदयसे मूलव्रतका भंग और देशघाती के उदयसे अतिचार कहा। यह कहना सत्य है परंतु अनन्तानुबंधी आदि बारह कषाय सर्वघाती हैं, यह सर्वविरति की अपेक्षा से है, ऐसे शतक चूर्णिकारकने व्याख्या की है। लेकिन सम्यक्त्व आदि की अपेक्षा से नहीं की है। कहा है कि- "भगवत्प्रणीतं पञ्चमहाव्रतमयं अष्टादशशीलाङ्गसहस्रकलितं चारित्रं घातयन्तीति सर्वघातिनः" सर्वघाति कषाय श्रमण भगवान ने कहा हुआ पंचमहाव्रतरूप और अठारह हजार शीलांगयुक्त चारित्र का नाश करता है। किन्तु यहां पर पहले कही हुई 'यादशो याति भेदो' इत्यादि गाथा के सामर्थ्य से अतिचार और भंग ये देशविरति और सम्यक्त्व के लिये कहा है ऐसा समझना।

सूत्रम्—तयाणंतरं च णं अपच्छिममारणंतियसंलेहणाझूसणाराहणाए पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंजहा—इहलोगासंसप्पओगे परलोगासंसप्पओगे जीवियासंसप्पओगे मरणासंसप्पओगे कामभोगासंसप्पओगे ॥ १३ ॥ सू ७ ॥

अर्थः—अब आयुष्य की समाप्ति के समय श्रमणोपासक अपश्चिममारणान्तिक संलेखना की सेवना आराधना करे, उसके पांच अतिचार जाने किन्तु आचरण करे नहीं। जैसे—१ इसलोक संबन्धी सुख की इच्छा करना। २—परलोक संबंधी देवेन्द्रादि के सुख की इच्छा करना। ३—अनशन व्रत लेकर जीते रहने की इच्छा करना।

४—दुःख से दुःखी होकर मरणे की इच्छा रखना। ५—कामभोगों की अभिलाषा रखना। ये पांच अतिचार अपश्चिममारणांतिक संलेखना की आराधना करने वाले श्रावक आचरण करे नहीं ॥ १३ ॥

टीका—'अपच्छिमे' त्यादि, पश्चिमैवापाश्चिमा मरणं–प्राणत्यागलक्षणं तदेवान्तो मरणान्तः तत्र भवा मारणान्तिकी संलिरूयते–कृशीक्रियते शरीरकषायाद्यनयेति संलेखना–तपोविशेषलक्षणा ततः पदत्रयस्य कर्मधारयः तस्या जोषणा–सेवना तस्या आराधना, अखण्डकालकरणामित्यर्थः, अपश्चिममारणान्तिकसंलेखनाजोषणाराधना, तस्याः, 'इहलोगे'–त्यादि, इहलोको–मनुष्यलोकः तस्मिन्नाशंसा–अभिलाषः तस्याः प्रयोग इहलोकाशंसाप्रयोगः, श्रेष्ठी स्यां जन्मान्तरेऽमात्यो वा इत्येवंरूपा प्रार्थना १, एवं परलोकाशंसाप्रयोगो 'देवोऽहं स्याम्' इत्यादि २, 'जीविताशंसाप्रयोगो' जीवितं–प्राणधारणं तदाशंसायाः–तदभिलाषस्य प्रयोगो, यदि 'बहुकालमहं जीवेयम्' इति। अयं हि संलेखनावान्कश्चिद्वस्त्रमाल्यपुस्तकवाचनादिपूजादर्शनाद्बहुपरिवारावलोकनाल्लोकश्लाघाश्रवणाच्चैवं मन्येत, यथा 'जीवितमेवे श्रेयः, प्रतिपन्नानशनस्यापि यत एवंविधा मदुद्देशेन विभूतिर्वर्तते इति ३, 'मरणाशंसाप्रयोगः' उक्तस्वरूपपूजाद्यभावे भावयत्यसौ यदि 'शीघ्रं म्रियेऽहम्' इतिस्वरूप इति ४, कामभोगाशंसाप्रयोगो "यदि मे मानुष्यकाः कामभोगा दिव्या वा सम्पद्यन्ते तदा साधु" इति विकल्परूपः ॥ ५ ॥

टीकार्थ—'अपच्छिमे' जिसके बाद फिर कोई न होने वाला, प्राणत्याग–मरण के समीप होने वाला तपविशेष, कि जिससे शरीर और कषाय आदि कृश किये जाँय, उसकी सेवना और आराधना अविराधित रूपसे अविच्छिन्न करना यह अपश्चिममारणांतिकसंलेखना जोषणा–आराधना है। उसके पांच अतिचार बतलाते हैं—'इहलोग' यह मनुष्य लोकमें सेठ मंत्री राजा आदि ऋद्धिवाले मनुष्य

होने की अभिलाषा करना यह इहलोकाशंसाप्रयोग अतिचार है ॥ १ ॥ 'परलोग' परलोक में देव-देवेन्द्र होने की अभिलाषा करना यह परलोकाशंसाप्रयोम अतिचार है ॥ २ ॥ 'जीवित' अनशन के कारण अपना सन्मान सत्कार देख कर, अर्थात् संलेखनावाला वस्त्र, माला, पुस्तकवाचना आदि से अपनी पूजा या अपने दर्शन से, एवं बहुत लोगोंके मुखसे अपनी प्रशंसा सुनकर ऐसा समझे कि मेरा जीवन अच्छा है। मैंने अनशन लिया है जिस से इतनी विभूति हो रही है, इस प्रकार के विचार पूर्वक अधिक समय जीने की अभिलाषा करना यह जीविताशंसाप्रयोग अतिचार है ॥ ३ ॥ 'मरण' अनशनवाला अपनी पूजा प्रतिष्ठा नही होती हुई देख कर शीघ्र ही मरणे की इच्छा रखना यह मरणाशंसाप्रयोग अतिचार है ॥ ४ ॥ 'कामभोग' अनशन के प्रभावसे आगामी भवमें दिव्य मनुष्यसंबंधी कामभोग की अभिलाषा रखना यह कामभोगाशंसाप्रयोग अतिचार है ॥ ५ ॥

व्रतों के अतिचार त्यागोपदेश

सूत्रम्—तए णं से आणंदे गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं सावयधम्मं पडिवज्जइ २ त्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ २ त्ता, एवं वयासी—"नो खलु मे भंते ! कप्पइ अज्जप्पभिइं अन्नउत्थिए वा अन्नउत्थियदेवयाणि वा अन्नउत्थियपरिग्गहियाणि अरिहंतचेइयाणि वा वंदित्तए वा नमंसित्तए वा, पुव्विं अणालत्तेणं आलवित्तए वा संलवित्तए वा, तेसिं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा दाउं वा अणुप्पदाउं वा, नन्नत्थ रायाभिओगेणं गणाभिओगेणं बलाभिओगेणं देवयाभिओगेणं गुरुनिग्गहेणं वित्तिकंतारेणं कप्पइ मे समणे निग्गंथे फासुएणं एसणिज्जेणं असण-

व्रतों के अतिचार त्यागोपदेश

पाणखाइमसाइमेणं वत्थपडिग्गहकंबलपायपुंछणेणं पीढफलयासिज्जासंथारएणं ओसहभेसज्जेण य पडिलाभेमाणस्स विहरित्तिए त्तिकट्टु इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ २ त्ता पसिणाइं पुच्छइ २ त्ता अट्ठाइं आदियइ २ त्ता समणं भगवं महावीरं तिखुत्तो वंदइ २ त्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ दूइपलासाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव वाणियगामे नयरे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सिवानंदं भारियं एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिए ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मे निसंते, सेऽवि य धम्मे मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए, तं गच्छ णं तुमं देवाणुप्पिए ! समणं भगवं महावीरं वंदाहि जाव पज्जुवासाहि, समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जाहि ॥ सूत्र ८ ॥

अर्थ—इसके बाद आनंद गृहपतिने श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामीके पास उपर लिखे अनुसार सुना हुवा पांच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत, इस प्रकार बारह प्रकारके श्रावकधर्मको स्वीकार किया। श्रावकधर्म स्वीकार करके, श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी को वंदना नमस्कार करके इस प्रकार अभिग्रह (नियम) लिया कि—" हे भगवन् ! आज से अन्यतीर्थियों को, अन्यतीर्थियों के देवों को और अन्यतीर्थियों ने स्वीकार किया

॥ ६१ ॥

हुआ अरिहंत के चैत्य को वंदना या नमस्कार करना कल्पे नहीं। एवं उन्होंने पहले बोलाये बिना उन्हों के साथ आलाप संलाप करना कल्पे नहीं। एवं उन्हों को अशन (भोजन), पान (पानी), खादिम और स्वादिम देना भी नहीं कल्पे। परंतु राजाभियोग (राजा की आज्ञा) से, गणाभियोग (समुदाय की आज्ञा) से, बलाभियोग (बलवान की आज्ञा) से, देवाभियोग (देव की आज्ञा) से, गुरुनिग्रह से अर्थात् माता–पिता गुरु आदि की आज्ञा से या उन्हों के उपर आये हुए उपद्रवों की शांति के लिए और वृत्तिकान्तार (आजीविका के अभाव) में देना कल्पे। मैं आज से श्रमणनिग्रंथ साधुओं को प्रासुक (निर्दोष) और एषणीय (ग्रहण करने योग्य) ऐसे अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कंबल, पादप्रौंछन (हाथ पैर आदि प्रमार्जन करने का साधन), पट्टा, तख्ता, शय्या (स्थानक), संथारा और औषध भेषज इत्यादि वस्तुओं को देता रहूँगा, इस प्रकार अभिग्रह लिया। उपर लिखे अनुसार अभिग्रह लेकर, कितनेक प्रश्न श्रमण भगवान् को पूछकर बराबर समझ लिया। पीछे श्रमण भगवान् श्रीमहावीरस्वामी को तीनवार वंदना नमस्कार किया। वंदना नमस्कार करके श्रमण भगवान् श्रीमहावीरस्वामी के पाससे दुतिपलाश चैत्य से बाहर निकला और वाणिज्यगांव में जहां अपना घर है वहां आया। आकरके अपनी शिवानंदा नामकी स्त्री से कहने लगा—हे देवानुप्रिये! मैं ने श्रमण भगवान् श्रीमहावीरस्वामी के पास धर्म का श्रवण किया, वह धर्म मुझे बहुत पसंद आया और उस में मेरी विशेष अभिरुचि हुई। इसलिये तू भी श्रमण

भगवान श्रीमहावीरस्वामी के पास जा, और वंदना नमस्कार करके पांच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत ये बारह प्रकारके गृहस्थ के धर्म को स्वीकार कर ॥ सू० ८ ॥

व्रतों के अतिचार त्यागोपदेश

टीका—'नो खलु' इत्यादि, नो खलु मम 'भदन्त!' भगवन्! 'कल्पते' युज्यते 'अद्यप्रभृति' इतः सम्यक्त्वप्रतिपत्तिदिनादारभ्य निरतिचारसम्यक्त्वपरिपालनार्थं तद्यतनामाश्रित्य 'अन्नउत्थिए वे' त्ति जैनयूथाद् यदन्यद् यूथं-सङ्घान्तरं तीर्थान्तरमित्यर्थः तदस्ति येषां तेऽन्ययूथिकाः-चरकादिकुतीर्थिकाः तान्, अन्ययूथिकदैवतानि वा-हरिहरादीनि अन्ययूथिकपरिगृहीतानि वा चैत्यानि-अर्हत्प्रतिमालक्षणानि, यथा भौतपरिगृहीतानि वीरभद्रमहाकालादीनि 'वन्दितुं वा' अभिवादनं कर्तुं 'नमस्कर्तुं वा' प्रणामपूर्वकं प्रशस्तध्वनिभिर्गुणोत्कीर्तनं कर्तुं, तद्भक्तानां मिथ्यात्वस्थिरीकरणादिदोषप्रसङ्गादित्यभिप्रायः, तथा पूर्वं-प्रथममनालप्तेन सता अन्यतीर्थिकैः तानेव 'आलपितुं वा' सकृत्सम्भाषितुं 'संलपितुं वा' पुनः पुनः संलापं कर्तुं, यतस्ते तप्ततरायोगोलकल्पाः खल्वासनादिक्रियायां नियुक्ता भवन्ति, तत्प्रत्ययश्च कर्मबन्धः स्यात्, तथाऽऽलापादेः सकाशात्परिचयेन तस्यैव तत्परिजनस्य वा मिथ्यात्वप्राप्तिरिति, प्रथमालप्तेन त्वसम्भ्रमं लोकापवादभयात् "कीदृशस्त्वम्" इत्यादि वाच्यमिति, तथा 'तेभ्यः' अन्ययूथिकेभ्योऽशनादि दातुं वा सकृत्, अनुप्रदातुं वा पुनः पुनरित्यर्थः, अयं च निषेधो धर्मबुद्ध्यैव, करुणया तु दद्यादपि, किं सर्वथा न कल्पत इत्याह—'नन्नत्थ रायाभिओगेणं' ति 'न' इति न कल्पत इति योऽयं निषेधः सोऽन्यत्र राजाभियोगात्, तृतीयायाः पञ्चम्यर्थत्वाद् राजाभियोगं वर्जयित्वेत्यर्थः, राजाभियोगस्तु-राजपरतन्त्रता, गणः-समुदायस्तदभियोगो-पारवश्यता गणाभियोगस्तस्मात्, बलाभियोगो नाम-राजगणव्यति-

रिक्तस्य बलवतः पारतन्त्र्यं, देवताभियोगो—देवपरतन्त्रता, गुरुनिग्रहो—मातापितृपारवश्यं गुरूणां वा—चैत्यसाधूनां निग्रहः—प्रत्यनीककृतोपद्रवो गुरुनिग्रहः तत्रोपस्थिते तद्रक्षार्थमन्ययुथिकादिभ्यो ददद्पि नातिक्रामति सम्यक्त्वमिति, 'वित्तिकन्तारेणं' ति वृत्तिः—जीविका तस्याः कान्तारम्—अरण्यं तदिव कान्तरं क्षेत्रं कालो वा वृत्तिकान्तारं, निर्वाहाभाव इत्यर्थः, तस्मादन्यत्र निषेधो दानप्रणामादेरिति प्रकृतमिति, 'पडिग्गहं' ति पात्रं 'पीढं' ति पट्टादिकं 'फलगं' ति अवष्टम्भादिकं फलकं 'भेसज्जं' ति पथ्यं, 'अट्ठाइं' त्ति उत्तरभूतानर्थानाददाति (सू० ८)

व्रतों के अतिचार त्यागोपदेश

टीकार्थ— 'नो खलु' सम्यक्त्व की प्राप्तिसे लेकर निरतिचार सम्यक्त्व का परिपालन करने के लिये जैन संघसे अतिरिक्त चरकादि कुतीर्थियों (साधुओं) को, कुतीर्थियों के हरि-हर आदि देवों को और अरिहंत की प्रतिमाको कुतीर्थि लोग वीरभद्र, महाकाल आदि के रूपमें मानते हों उसी प्रतिमाको वंदना नमस्कार या स्तुति करना कल्पे नहीं। कुतीर्थियों के साधु या देवोंको मानने पूजने से उसके भक्तों को मिथ्यात्वमें स्थिर करने के दोषका प्रसंग होता है। एवं कुतीर्थियों के साथ विना बोलाये पहले बोलना या आलाप संलाप करना कल्पे नहीं, क्योंकि उनका आसनादि से सत्कार करने से वे तपे हुए लोहे के गोले जैसे होकर सम्यक्त्वका नाश करा देता है, एवं उन्हों का परिचय करे तो मिथ्यात्वकी प्राप्ति होती है, कभी वें प्रथम बोलावें तो लोकापवाद के भयसे बोलना कल्पे। एवं उन्हों को भोजनादि धर्मबुद्धि से देना कल्पे नहीं, लेकिन करुणा से देना कल्पे। उन्हों को मानना पूजना सर्वथा नहीं कल्पता है, परंतु राजाभियोग से (राजाके हुकमसे), गणाभियोग से (समुदाय की आज्ञा से), बलाभियोग (वलवान की आज्ञासे), देवताभियोग से (देवों के हुकुमसे), गुरु निग्रह—माता पिता की आज्ञासे या प्रतिमा और साधु के उपद्रवों की शान्ति के लिये और वृतिकान्तार—आजीविका के लिये इत्यादि कारणों से माने या पूजे तो सम्यक्त्व का भंग न हो इस प्रकार आनंद श्रावक ने आगार रखे। 'पडिग्गह' पात्र, 'पीठ' पट्टा

आदि, 'फलग' बैठते समय पीठके पीछे जो पटीया रखा जाता है वह, 'भेसज्जं' औषध, 'अट्ठाई' इस प्रकार श्रमण भगवान् ने कहे हुए उत्तर भूत अर्थों को ग्रहण करता है।

शिवानंदा के व्रतग्रहण

सूत्रम्—तए णं से सा सिवानंदा भारिया आणंदेणं समणोवासएणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी–खिप्पामेव लहुकरण जाव पज्जुवासइ, तए णं समणे भगवं महावीरे सिवानंदाए तीसे य महइ० जाव धम्मं कहेइ, तए णं सा सिवानंदा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठ जाव गिहिधम्मं पडिवज्जइ २ त्ता तमेव धम्मियं जाणप्पवरं दुरूहइ २ त्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया ॥ सू० ९ ॥

अर्थ—इस प्रकार आनंद श्रमणोपासक का वचन सुनकर शिवानंदा खुशी हुई, संतुष्ट हुई और अपने कोटुंबिक जनों को बुलवाकर, इस प्रकार कहने लगी—"हे देवानुप्रिय! शीघ्र गतिवाले युवानवृषभ युक्त सुंदर रथ ले आओ। इस वेगवाले रथ में बैठ कर आनंद श्रावक की तरह परिवार युक्त चलकर शीघ्र ही श्रमण भगवान् श्रीमहावरिस्वामी के पास जाकर वंदना नमस्कार करके धर्म श्रवण करें।" ऐसा कहकर शीघ्र ही श्रमण भगवान के पास आकर वंदना नमस्कार किया, तब श्रमण भगवान श्रीमहावीरस्वामी ने शिवानंदा को और बडी सभा को धर्मोपदेश दिया। धर्मोपदेश

श्रवण करके, खुशी होकर श्रावक के गृहिधर्म का स्वीकार किया। पीछे सपरिवार अपने घर जिस दिशा से आई थी उसी दिशा से गई ॥ सू० ९ ॥

टीका—'लहुकरण' इत्यत्र यावत्करणात् लहुकरणजुत्तजोइयमित्यादिर्यानवर्णको व्याख्यास्यमानसप्तमाध्ययनादवसेयः। सू० ९।

टीकार्थः—'लहुकरण' इत्यादि बैल और रथका वर्णन सातवाँ अध्ययन में विस्तार से लिखा है उसी प्रकार यहां भी समझ लेना चाहिये।

आनंद संबंधी प्रश्नोत्तर

सूत्रम्—भंते त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ २ त्ता एवं वयासी—पहू णं भंते! आणंदे समणोवासए देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे जाव पव्वइत्तए ?, नो तिणट्ठे समट्ठे, गोयमा! आणंदे णं समणोवासए बहूइं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणिहिइ २ त्ता जाव सोहम्मे कप्पे अरुणे विमाणे देवत्ताए उववज्जिहिइ। तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। तत्थ णं आणंदस्सऽवि समणोवासगस्स चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता॥ तए णं समणे भगवं! महावीरे अन्नया कयाइ बहिया जाव विहरइ ॥ सू० १० ॥

अर्थ—हे भगवान्! इस प्रकार संबोधन करके गौतमस्वामी ने श्रमण भगवान श्रीमहावीरस्वामी को वंदना

नमस्कार करके विनय पूर्वक पूछा—'हे भगवन् ! यह आनंद श्रमणोपासक आप देवानुप्रिय के पास मुंड होकर दीक्षा अंगीकार करेगा !' तब भगवान् ने कहा कि ऐसा न करेगा, अर्थात् दीक्षा लेने के लिये समर्थ नहीं है। परंतु हे गौतम ! आनंद श्रमणोपासक बहुत वर्ष तक श्रमणोपासक (श्रावक) का धर्म अच्छी तरह पालन करके, सौधर्म देवलोक में जहां अरुणनामका विमान है, उस विमान में बहुत समृद्धिवाला देव उत्पन्न होगा, वहां देवों का चार पल्योपम का आयुष्य है। यह चार पल्योपम के आयुष्यवाला आनंद श्रावक का जीव देव के भवमें होगा। इस प्रकार गौतमस्वामी को कहकर श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामी बाहर जनपद विहार अर्थात् अन्यत्र विहार करने लगे ॥ १० ॥

आनंद शिवानंदा का श्राव धर्मपालन

सूत्रम्—तए णं से आणंदे समणोवासए जाए अभिगयजीवाजीवे जाव पडिलाभेमाणे विहरइ। तए णं सा सिवानंदा भारिया समणोवासिया जाया जाव पडिलाभेमाणी विहरइ ॥ सू० ११ ॥

अर्थ—आनंद श्रमणोपासक जीव अजीवादि तत्त्वों को जाननेवाला और निर्ग्रन्थ साधुओं को अशनादि चार प्रकार के आहार से प्रतिलाभित करता हुआ रहने लगा। इस की धर्मपत्नी शिवानंदा श्राविका भी धर्मपालती हुई रहने लगी ॥ सू० ११ ॥

सूत्रम्—तए णं तस्स आणंदस्स समणोवासगस्स उच्चावएहिं सीलव्वयगुणवेरमणपच्चक्खाणपोसहो-

वत्रासेहिं अप्पाणं भावेमाणस्स चोद्दस संवच्छराइं वइक्कंताइं, पण्णरसमस्स संवच्छरस्स अंतरावट्टमाणस्स अन्नया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पाज्जित्था—एवं खलु अहं वाणियगामे नयरे बहूणं राईसर जाव सहस्सावि य णं कुडुंबस्स जाव आधारे, तं एएणं विक्खेवेणं अहं नो संचाएमि समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए। तं सेयं खलु ममं कल्लं जाव जलंते विउलं असणं जहा पूरणो जाव जेट्ठपुत्तं कुडुंबे ठवेत्ता, तं मित्तं जाव जेट्ठपुत्तं च आपुच्छित्ता कोल्लाए सन्निवेसे नायकुलंसि पोसहसालं पडिलेहित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपणात्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

आनंद के मनोर्थ

अर्थ—इस प्रकार रहने हुए, शीलव्रत, गुणव्रत, विरमणव्रत, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास आदि उच्चव्रतों से आत्माको अच्छी तरह निर्मल (दोषरहित) करते हुए आनंद श्रमणोपासक के चौदह वर्ष व्यतीत हो गये। पंद्रहवाँ वर्ष के बीच में किसी दिन मध्यरात्रि के समय धर्म चिन्तवन करते हुए ऐसा विचार हुआ कि मैं इस वाणिज्य गांव के बहुत लोगों के पूछने का स्थान एवं सलाहकार हूँ, तथा मेरे कुटुंब का भी आधाररूप हूँ, इसलिये मैं श्रमण भगवान् श्रीमहावीरस्वामी के पास ग्रहण की हुई धर्मप्रज्ञप्ति (धर्म की मर्यादा) के अनुसार न रह सकुंगा।

इसलिये कल सूर्योदय होने पर अनेक प्रकार की भोजन सामग्री तैयार करवाकर, पूर्णसेठ की तरह स्वकुटुंब ज्ञातिजनों को भोजन करवाकर, सन्मान पूर्वक मेरा ज्येष्ठ पुत्र को यह सब बोझा दे दूँ और उसकी अनुमति लेकर कोल्लाक सन्निवेश के ज्ञात क्षत्रियवंशों के मोहल्ले में रही हुई, पौषधशाला को प्रमार्जन करके, वहां जाकर, श्रमण भगवान् श्रीमहावीरस्वामी के पास स्वीकार किया हुआ धर्म के अनुसार रहूँ।

सूत्रम्—एवं संपेहेइ २ त्ता कल्लं विउलं तहेव जिमियभुत्तुत्तरागए तं मित्त जाव विउलेणं पुप्फ ५ सक्कारेइ सम्माणेइ २ त्ता तस्सेव मित्त जाव पुरओ जेट्ठपुत्तं सद्दावेइ २ त्ता, एवं वयासी—एवं खलु पुत्ता ! अहं वाणियगामे बहूणं राईसर जहा चिंतियं जाव विहरित्तए, तं सेयं खलु मम इदाणिं तुमं सयस्स कुडुंबस्स आलंबणं ४ ठवेत्ता जाव विहरित्तए। तए णं जेट्ठपुत्ते आणंदस्स समणोवासगस्स तहत्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ।

अर्थः— ऐसा विचार करके प्रातः काल अनेक प्रकारकी भोजन सामग्री तैयार करवाकर, मित्र आदि स्वजन ज्ञातिजनों को निमंत्रित करके, उन्हों को अच्छी तरह भोजन करवाया, पीछे पुष्पमाला, सुगंध (अत्तर) और अलंकार आदि से सत्कार और सन्मान करके, उन सबके सामने अपने ज्येष्ठपुत्र को बुलवाकार कहने लगा—'हे

पुत्र ! मैं इस वाणिज्यगांव के बहुत जनों का सलाहकार एवं आधार भूत हूँ । अब तुमको कुटुंब आदि का आधाररूप स्थापन करके मैं पौषधशाला में जाकर धर्मध्यान करुं । ' यह बात आनंद श्रमणोपासककी हितकारक समझ कर विनय पूर्वक स्वीकार करली ।

सूत्रम्—तए णं से आणंदे समणोवासए तस्सेव मित्त जाव पुरओ जट्ठेपुत्तं कुडुंबे ठवेइ २ त्ता एवं वयासी–मा णं देवाणुप्पिया ! तुब्भे अज्जप्पभिइं केइ मम बहूसु कज्जेसु जाव आपुच्छउ वा पडिपुच्छउ वा ममं अट्ठाए असणं वा ४ उवक्खडेउ वा उवकरेउ वा । तए णं से आणंदे समणोवासए जेट्ठपुत्तं मित्तनाइं आपुच्छइ २ त्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता वाणियगामं नयरं मज्झं मज्झेणं निग्गच्छइ २ त्ता जेणेव कोल्लाए सन्निवेसे जेणेव नायकुले जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ २ त्ता पोसहसालं पमज्जइ २ त्ता उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ २ त्ता दब्भसंथारयं संथरइ, दब्भसंथारयं दुरुहइ २ त्ता पोसहसालाए पोसहिए दब्भसंथारोवगए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ ॥ सू० १२ ॥

आनंदने अपने बडे पुत्र को गृहकार्य सौंपा

आनंद के ११ प्रतिमा वहने का अधिकार

अर्थः—इसके बाद आनंद श्रमणोपासक उन सब मित्र स्वजन कुटुंब ज्ञातिजनों के आगे बड़े पुत्र को कुटुम्ब का सब बोझा सौंप करके कहने लगा —' हे देवानुप्रिय जनों ! अब आपका सब तरह सलाहकार यह मेरा ज्येष्ठ पुत्र है इसलिये अब किसी बात के लिये मुझे पूछियेगा नहीं, मेरी सलाह भी न लेवें, जो कुछ कहना हो वह सब मेरा ज्येष्ठ पुत्र को ही कहना तथा सलाह लेना, और मेरे लिये खान पान खादिम स्वादिम आदि कुछ भी करना नहीं। अब आनंद श्रमणोपासक अपना ज्येष्ठ पुत्र को तथा अपने मित्र ज्ञाति स्वजन सम्बन्धि आदि लोगों को पूछ करके, उनकी आज्ञा लेकर अपने घर से बाहर निकला और वाणिज्यगांव के मध्य से निकल कर, जहां कोल्लाकसन्निवेश में ज्ञात क्षत्रियों के मोहल्ले में जहां पौषधशाला है, वहां आया। पौषधशाला को प्रमार्जित करके लघुशंका (पेशाब) और दस्त जाने के स्थान को बराबर पडिलेहण करके, दर्भ का संथारा बिछाया और उसके उपर बैठा, यहां पोषधोपवास करता हुआ श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामी के पास ग्रहण की हुई धर्मप्रज्ञप्ति के अनुसार रहने लगा ॥ सू० १२ ॥

टीकाः—'महावीरस्स अंतियं' ति अंते भवा आंतिकी महावीरसमीपाभ्युपगतेत्यर्थः तां 'धम्मपण्णत्तिं' ति धर्मप्रज्ञापनामुपसम्पद्य अङ्गीकृत्यानुष्ठानद्वारतः 'जहा पूरणो' त्ति भगवत्यभिहितो बालतपस्वी स यथा स्वस्थाने पुत्रादिस्थापनमकरोत् तथाऽयं कृतवानित्यर्थः। एवं चासौ कृतवान् 'विउलं असणपाणखाइमसाइमं उवक्खडावित्ता मित्तनाइनियगसंबंधिपरिजणं आमंतेत्ता

तं मितनाइनियगसंबंधिपरिजनं विउलेणं ४ वत्थगन्धमल्लालंकारेण य सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता तस्सेव मित्तनाइनियगसंबंधिपरिजणस्स पुरओ जेट्ठपुत्तं कुडुंबे ठावेइ ठावित्त' त्ति 'नायकुलंसि' त्ति स्वजनगृहे ॥ 'उवक्खडेउ' ति उपस्करोतु–राध्यतु, 'उवकरेउ' त्ति उपकरोतु, सिद्धं सद् द्रव्यान्तरैः कृतोपकारम्–आहितगुणान्तरं विदधातु (सू० १२)

टीकार्थः—'महावीरस्स' श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी के पास ली हुई धर्मप्रज्ञप्ति का स्वीकार करके उसका अच्छी तरह पालन करता हुआ रहने लगा। पीछे भगवती सूत्र में कहे हुए 'जहा पूरणो' बालतपस्वी पूरण ने अपने स्थान पर अपने ज्येष्ठ पुत्र को स्थापित किया, तथा बहुत प्रकार के भोजन, पान, खादिम और स्वादिम को तैयार बनवा करके, अपने मित्र, ज्ञातिबंधु और स्वजन संबंधी लोगों को आमंत्रण किया और उन मित्र ज्ञातिबंधु और स्वजन वर्ग का बहुत प्रकार के असन, पान, खादिम से, तथा वस्त्र, गंध, माला और अलंकारों से सत्कार और सन्मान किया। पीछे उन मित्र, ज्ञातिबंधु और स्वजन वर्ग के सामने अपने ज्येष्ठ पुत्र को अपने कुटुंब के ज्येष्ठपद पर स्थापित किया। उसी प्रकार आनंद श्रावक ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को अपने पद पर स्थापित किया। 'नायकुलंसि' अपने कुटुंबजनों के घरों में। 'उवक्खडेउ' पकाओ। 'उवकरेउ' पकाये हुए वस्तु को द्रव्यान्तर से संस्कार करना ॥ १२॥

आनंद के ११ प्रतिमा वहने का अधिकार

सूत्रम्—तए णं से आणंदे समणोवासए उवासगपडिमाओ उवसंपज्जित्ता णं विहरइ, पढमं उवासगपडिमं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएणं फासेइ पालेइ सोहेइ तीरेइ कित्तेइ आराहेइ ॥ तए णं से आणंदे समणोवासए दोच्चं उवासगपडिमं, एवं तच्चं चउत्थं पंचमं छट्ठं सत्तमं अट्ठमं नवमं दसमं एक्कारसमं जाव आराहेइ ॥ सू० १३ ॥

अर्थः—अथ आनंद श्रमणोपासक श्रावक के योग्य अभिग्रहरूप ग्यारह उपासक प्रतिमाओं की आराधना करता हुआ रहने लगा। प्रथम उपासक प्रतिमा को यथासूत्र (सूत्र की मर्यादा के अनुसार) यथा कल्प (आचार के अनुसार) यथा मार्ग (क्षायोपशम भाव की प्राप्ति हो उसी के अनुसार) और यथातथ्य (यथार्थ) विधि पूर्वक लिया, निर्दोषपने से पालन किया, निरतिचार से शुद्ध किया, पूर्ण समय होने पर पूर्ण किया, स्तुति-प्रशंसा किया, और अच्छी तरह आराधन किया। इसी प्रकार आनंद श्रमणोपासक ने दूसरी, तीसरी, चौथी, पांचवीं छट्ठी, सातवीं, आठवीं, नववीं, दशवीं और ग्यारहवीं प्रतिमा का आराधन किया ॥ सू० १३ ॥

आनंद के ११ प्रतिमा वहने का अधिकार

टीकाः— ' पढमं ' ति एकादशानामाद्यामुपासकप्रतिमां—श्रावकोचिताभिग्रहविशेषरूपामुपसम्पद्य विहरति, तस्याश्चेदं स्वरूपं ' संकादिसल्लविरहियसम्मद्दंसणजुओ उ जो जंतू। सेसगुणविप्पमुक्को एसा खलु होइ पढमा उ ॥ १ ॥ सम्यग्दर्शनप्रतिपत्तिश्च तस्य पूर्वमप्यासीत्, केवलमिह शङ्कादिदोषराजाभियोगाद्यपवादवर्जितत्वेन तथाविधसम्यग्दर्शनाचारविशेषपालनाभ्युपगमेन च प्रतिमात्वं सम्भाव्यते, कथमन्यथाऽसावेकमासं प्रथमायाः प्रतिमायाः पालनेन द्वौ मासौ द्वितीयायाः पालनेन एवं यावदेकादशमासानेकादश्याः पालनेन पंच सार्धानि वर्षाणि पूरितवानित्यर्थतो वक्ष्यतीति, न चायमर्थो दशाश्रुतस्कन्धादावुपलभ्यते, श्रद्धामात्ररूपायास्तत्र तस्याः प्रतिपादनात्, ' अहासुत्तं ' ति सूत्रानतिक्रमण ' यथाकल्पं ' प्रतिमाचारानतिक्रमेण ' यथामार्गं ' क्षायोपशमिकभावानतिक्रमेण ' अहातच्चं ' ति यथातत्त्वं दर्शनप्रतिमेतिशब्दस्यान्वर्थानतिक्रमेण, ' फासेइ ' त्ति स्पृशति प्रतिपत्तिकाले विधिना प्रतिपत्तेः ' पालेइ '

त्ति सततोपयोगप्रतिजागरणेन रक्षति 'सोहेइ' ति शोभयति गुरुपूजापुरस्सरपारणकरणेन शोधयति वा निरतिचारतया 'तीरेइ' त्ति पूर्णेऽपि कालावधावनुबन्धात्यागात् 'कीर्तयति' तत्समाप्तौ इदमिदं चेहादिमध्यवसानेषु कर्त्तव्यं तच्च मया कृतमिति कीर्तनात् 'आराधयति' एभिरेव प्रकारैः सम्पूर्णैर्निष्ठां नयतीति ।

आनंद के ११ प्रतिमा वहने का अधिकार

टीकार्थ—'पढमं' श्रावक के आराधन करने योग्य ग्यारह प्रतिमाओं में प्रथम उपासक प्रतिमा (श्रावक के उचित अभिग्रह विशेष रूप) को ग्रहण करके रहना । उसका स्वरूप–शंका आदि शल्य रहित होकर जो प्राणी अणुव्रतादि गुणयुक्त रह कर सम्यग्दर्शन को प्राप्त करता है । यह प्रथम दर्शन प्रतिमा है ॥ १ ॥ सम्यग्दर्शन की प्राप्ति तो व्रतों को लेने पहले हो गई थी, परंतु यहां शंका आदि दोष और राजाभियोग आदि अपवाद मार्ग का भी त्याग होने से सम्यग्दर्शनाचार की विशेष रूपसे पालन करता है, अर्थात् सम्यक्त्व को निरतिचारसे पालता है, इसलिये प्रतिमा में गिना है प्रथम प्रतिमा एक मास, दूसरी दो मास इस प्रकार ग्यारहवीं ग्यारह मास पालन करने से साढ़े पांच वर्ष तक श्रद्धा पूर्वक 'अहासुत्तं' सूत्रों में कहे अनुसार, 'यथाकल्प' प्रतिमा के आचारपूर्वक, 'यथामार्ग' क्षमोपशमिक भावों का अतिक्रमण न करके 'अहातच्चं' दर्शन प्रतिमा आदि शब्द के अर्थ के अनुसार, 'फासेइ' लेते समय विधि पूर्वक लेवे, 'पालेइ' उपयोग पूर्वक उसकी रक्षा करे, 'सोहेइ' निरतिचार से धर्म गुरु की पूजा पूर्वक शुद्धि करे, 'तीरेइ' अवधिपूर्ण होनेसे उपयोगपूर्वक त्याग करे, 'कीर्त्तयति' समाप्ति में विचार करे कि प्रतिमा की आदि, मध्य और अंत्य में जो २ करनेका था वह मैंने किया, इस प्रकार गुरु के आगे कहे, 'आराधयति' पूर्वोक्त सम्पूर्ण प्रकार से धर्म की आराधना करे ।

टीकाः— 'दोच्चं' ति द्वितीयां व्रतप्रतिमाम् । इदं चास्याः स्वरूपम्–'दंसणपडिमाजुत्तो पालेन्तोऽणुव्वए निरइयारे । अणुकंपाइगुणजुओ जीवो इह होइ वयपडिमा ॥ १ ॥' 'तच्चं' ति तृतीयां सामायिकप्रतिमाम्, तत्स्वरूपमिदम्–'वरदंसणवयजुत्तो

आनंद के ११ प्रतिमा वहने का अधिकार

सामइयं कुणइ जो तिसंझासु । उक्कोसेण तिमासं एसा सामाइयप्पडिमा ॥ १ ॥ ' चउत्थं ' ति चतुर्थीं पौषधप्रतिमाम्, एवंरूपाम् ' पुव्वोदियपडिमजुओ पालइ जो पोसहं तु सम्पुण्णं । अट्ठमिचउद्दसाइसु चउरो मासे चउत्थी सा ॥ १ ॥ ' पंचमं ' ति पंचमीं प्रतिमाप्रतिमां, कायोत्सर्गप्रतिमामित्यर्थः स्वरूपं चास्याः–' सम्ममणुव्वयगुणवयसिक्खावयवं थिरो य नाणी य । अट्ठमिचउद्दसीसुं पडिमं ठाएगराईयं ॥ १ ॥ असिणाण वियडभोई (अस्नानोऽरात्रिभोजी चेत्यर्थः) मउलिकडो (मुत्कलकच्छ इत्यर्थः) दिवसबम्भयारी य । राइं परिमाणकडो पडिमावज्जेसु दियहेसु ॥ २ ॥ झायइ पडिमाए ठिओ तिलोयपुज्जे जिणे जियकसाए । नियदोसपच्चणीयं अण्णं वा पंच जा मासा ॥ ३ ॥' 'छट्ठिं' ति षष्ठीं अब्रह्मवर्जनप्रतिमाम्, एतत्स्वरूपं चैवम्–'पुव्वोदियगुणजुत्तो विसेसओ विजियमोहणिज्जो य । वज्जइ अबम्भमेगन्तओ य राइं पि थिरचित्तो ॥ १ ॥ सिङ्गारकहाविरओ इत्थीए समं रहम्मि नो ठाइ । चयइ य अइप्पसंगं तहा विभूसं च उक्कोसं ॥ २ ॥ एवं जा छम्मासा एसोऽहिगओ उ इयरहा दिट्ठं । जावज्जीवंपि इमं वज्जइ एयम्मि लोगम्मि ॥ ३ ॥' 'सत्तमिं' ति सप्तमीं सचित्ताहारवर्जनप्रतिमामित्यर्थः, इयं चैवम्–'सच्चित्तं आहारं वज्जइ असणाइयं निरवसेसं । सेसवयसमाउत्तो जा मासा सत्त विहिपुव्वं ॥ १ ॥' 'अट्ठमिं' ति अष्टमीं स्वयमारम्भवर्जनप्रतिमां, तद्रुपमिदम्–वज्जइ सयमारम्भं सावज्जं कारवेइ पेसेहिं । वित्तिनिमित्तं पुव्वयगुणजुत्तो अट्ठ जा मासा ॥ १ ॥' 'नवमिं' ति नवमीं भृतकप्रेष्यारम्भवर्जनप्रतिमाम्, सा चेयम्–'पेसेहिं आरम्भं सावज्जं कारवेइ नो गुरुयं । पुव्वोइयगुणजुत्तो नव मासा जाव विहिणा उ ॥१॥' 'दसमिं' ति दशमीं उद्दिष्टभक्तवर्जनप्रतिमां, सा चैवम्–'उद्दिट्ठकडं भत्तंपि वज्जए किमुय सेसमारम्भं । सो होइ उ खुरमुण्डो सिहलिं वा धारए कोइ ॥ १ ॥ दव्वं पुट्ठो जाणं जाणे इइ वयइ नो य नो वेति ।

पुव्वोदियगुणजुत्तो दस मासा कालमाणेणं ॥ २ ॥ 'एक्कारसमिं' ति एकादशीं श्रमणभूतप्रतिमां, तत्स्वरूपं चैतत्–खुरमुण्डो लोएण व रयहरणं ओग्गहं च घेत्तुणं । समणब्भूओ विहरइ धम्मं काएण फासेन्तो ॥ १ ॥ एवं उक्कोसेणं एक्कारस मास जाव विहरेइ । एक्काहाइपरेणं एवं सव्वत्थ पाएणं ॥ २ ॥' इति ॥ (सू० १३)

टीकार्थः—'दोच्चं' दूसरी व्रत प्रतिमा का स्वरूप-अणुकंपा आदि गुणयुक्त जीव दर्शन प्रतिमायुक्त रहकर लिये हुए अणुव्रतों को निरतिचारसे दो मास तक पालन करे यह व्रत प्रतिमा है ॥ २ ॥ 'तच्चं' तीसरी सामायिक प्रतिमा का स्वरूप–सम्यग्दर्शन और व्रत प्रतिमा युक्त रहकर, उत्कृष्ट तीन मास तक त्रिकाल सामायिक करना यह सामायिक प्रतिमा है ॥ ३ ॥ 'चउत्थं' चौथी पौषध प्रतिमा का स्वरूप-पहले की तीन प्रतिमायुक्त रहकर चार मास तक आठम चौदश अमावस और पूर्णिमा के दिन संपूर्ण पौषध पालना, यह पौषध प्रतिमा है ॥ ४ ॥ 'पंचमं' पांचवीं कायोत्सर्ग प्रतिमा का स्वरूप-सम्यक्त्व अणुव्रत गुण व्रत और शिक्षाव्रतवाला स्थिर एवं ज्ञानी पुरुष आठम चउदश की रात्रि को कायोत्सर्ग में स्थिर रहे, स्नान न करे, रात्रि भोजन न करे काछ न लगावे अर्थात् चोलपट्टा की तरह वस्त्र पहरे, दिन को सर्वथा ब्रह्मचर्य पाले और प्रतिमावर्जित रात्रि में भी मर्यादित ब्रह्मचर्य पाले, त्रैलोक्यपूज्य और जितकषाय ऐसे जिनेश्वर भगवान् का स्थिरचित्त से ध्यान करे, एवं अपने दोषों का निरीक्षण करे, इस प्रकार पांच मास करे, यह कायोत्सर्ग प्रतिमा है ॥ ५ ॥ 'छट्ठं' छट्ठी अब्रह्मवर्जन प्रतिमा का स्वरूप—पूर्वोक्त प्रतिमा युक्त रह कर मोहनीय कर्म का विजय करके स्थिर चित्त से रात्रि में भी सर्वथा अब्रह्मसेवन करना नहीं, श्रृंगारिक कथा करनी नहीं, स्त्री के साथ एकांत में रहे नहीं, एवं स्त्री का अति परिचय भी करे नहीं, श्रृंगार करे नहीं, इस प्रकार छह मास तक करे, यह अब्रह्मवर्जन प्रतिमा है ॥ ६ ॥ 'सत्तमिं' सातवीं सचित्ताहार वर्जन प्रतिमा का स्वरूप—पूर्वोक्त प्रतिमा युक्त रहकर अशनादि सजीव वस्तु विधि पूर्वक सात मास तक खावे नहीं, यह सचित्ताहारवर्जन प्रतिमा है ॥ ७ ॥ 'अट्ठमिं' आठवीं स्वयं आरंभवर्जन प्रतिमा का स्वरूप—पूर्वोक्त प्रतिमा युक्त रहकर आठ मास तक

आनंद के ११ प्रतिमा वहने का अधिकार

स्वयं कोई भी पापमय प्रवृत्तिवाला आरंभवर्जन प्रतिमा है ॥ ८ ॥ 'नवमिं' नववीं भृत्यप्रेष्यारंभवर्जन प्रतिमा का स्वरूप—पूर्वोक्त प्रतिमायुक्त रहकर नव मास तक नौकर चाकर द्वारा भी किसी प्रकार का पापमय प्रवृत्तिवाला आरंभ करावे नहीं, यह भृत्यप्रेष्यारंभवर्जन प्रतिमा है ॥ ९ ॥ 'दसमिं' उद्दिष्टभक्तवर्जन प्रतिमा का स्वरूप—पूर्वोक्त प्रतिमा युक्त रहकर दश मास तक अपने लिये बनाये हुए खान पान का उपयोग करे नहीं, शिरमुंडन करावे या चोटी रखे, एवं अनिष्ट अप्रिय संदिग्ध और अनिश्चित ऐसी वार्तालाप न करे, यह उद्दिष्टभक्तवर्जन प्रतिमा है ॥ १० ॥ 'एक्कारसमिं' ग्यारहवीं श्रमणभूतप्रतिमा युक्त का स्वरूप—पूर्वोक्त प्रतिमा युक्त रह कर शिरमुंडन करावे या लोच करावे, रजोहरण धारण करे, दूसरे के मकान में मकान वाले की आज्ञा लेकर रहे अर्थात् श्रमणभूत होकर रहे, धर्मध्यान करता हुआ विचरे, इस प्रकार ग्यारह मास तक रहे, यह श्रमणभूत प्रतिमा है ॥ ११ ॥

आनंद के संथारे का मनोर्थ

सूत्रम्—तए णं से आणंदे समणोवासए इमेणं एयारूवेणं उरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहियेणं तवोकम्मेणं सुक्के जाव किसे धमणिसंतए जाए ॥ तए णं तस्स आणंदस्स समणोवासगस्स अन्नया कयाइ पुव्वरत्ता जाव धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयं अज्झत्थिए ५, एवं खलु अहं इमेणं जाव धमणिसंतए जाए, तं अत्थि ता मे उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे सद्धाधिइसंवेगे, तं जाव ता मे अत्थि उट्ठाणे सद्धाधिइसंवेगे जाव य मे धम्मायरिए धम्मोवएसए समणे भगवं महावीरे जिणे सुहत्थी विहरइ, ताव ता मे सेयं कल्लं जाव जलंते अपच्छिममारणंतियसंलेहणाझूसणाझूसियस्स भत्तपाणपडियाइक्खियस्स कालं अणवकंखमाणस्स

विहरित्तए, एवं संपेहेइ २ त्ता कल्लं पाउ जाव अपच्छिममारणंतिय जाव कालं अणवकंखमाणे विहरइ ॥

अर्थः—अब आनंद श्रमणोपासक इस प्रकार के महान् उदार विशाल और उत्कृष्ट तपकर्म से शुष्क कृश हाडपंजर जेसा हो गया। अब आनंद श्रमणोपासक एक दिन अर्द्धरात्रि के समय धर्म जागरन करते हुए, ऐसा अध्यवसाय (विचार), हुआ कि—'मैं इस प्रकार तपश्चर्या करके कृश हो गया हूँ, तो भी मेरे में उत्थान (उठने की शक्ति उत्साह)' बल, कर्म, वीर्य, पुरुषार्थ, पराक्रम, श्रद्धा, धैर्य और संवेग है। तो जहां तक उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पराक्रम, श्रद्धा, धैर्य और संवेग है, तथा धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् श्रीमहावीरस्वामी जिनेश्वर गंधहस्ति की तरह विचरते हैं, तबतक मैं कल सूर्योदय होते अपश्चिममारणांतिक संलेखना (अंतिम मरणावस्था करने की साधना) की आराधना से धर्म की आराधना करके और आहारपानी का प्रत्याख्यान करके काल (मृत्यु) को नहीं इच्छता हुआ रहना अच्छा है। ऐसा विचार करके प्रातः काल होते अपश्चिममारणांतिक संलेखना करके, जीवित और मरण में समभाव रखता हुआ रहने लगा।

सूत्रम्—तए णं तस्स आणंदस्स समणोवासगस्स अन्नया कयाइ सुभेणं अज्झवसाणेणं सुभेणं परिणामेणं लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं तदावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ओहिनाणे समुप्पन्ने, पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दे

पंचजोयणसइयं खेत्तं जाणइ पासइ, एवं दक्खिणेणं पच्चत्थिमेण य, उत्तरेणं जाव चुल्लहिमवन्तं वासधरपव्वयं जाणइ पासइ, उड्ढं जाव सोहम्मं कप्पं जाणइ पासइ, अहे जाव इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए लोलुयच्चुयं नरयं चउरासीइवाससहस्सट्ठिइयं जाणइ पासइ ॥ सू० १४ ॥

अर्थः—इस प्रकार रहते हुए आनंद श्रमणोपासक को एक दिन शुभ अध्यवसाय और शुभ परिणाम के द्वारा चित्तवृत्ति अधिक शुद्ध हो जाने से अवधिज्ञानावरणीय कर्मों का क्षय और उपशम हो गया, जिसे उस को अवधिज्ञान प्राप्त हुआ। अब वह वहां ही रहा हुआ पूर्व पश्चिम और दक्षिण दिशामें लवणसमुद्र के पांच सौ २ योजन तक के क्षेत्र को, उत्तर में चुल्लहिमवंत वर्षधर पर्वत तक के क्षेत्र को, उपर सौधर्म देवलोक तक और नीचे प्रथम रत्नप्रभा पृथ्वी के लोलुयच्चुय नरक तक के चोरासी हजार वर्ष की स्थितिवाले प्रदेश को देखने लगा और जानने लगा ॥ सू० १४ ॥

आनंद को अवधिज्ञान

सूत्रम्—ते णं काले णं ते णं समए णं समणे भगवं महावीरे समोसरिए, परिसा निग्गया, जाव पडिगया, ते णं काले णं ते णं समए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई नामं अणगारे गोयमगोत्तेणं सत्तुस्सेहे समचउरंससंठाणसंठिए वज्जरिसहनारायसंघयणे कणगपुलगनिघसपम्हगोरे उग्गतवे दित्ततवे तत्ततवे

घोरतवे महातवे उराले घोरगुणे घोरतवस्सी घोरबम्भचेरवासी उच्छूढसरीरे संखित्तविउलतेउलेसे छट्ठं छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

अर्थः—उस काल और उस समयमें श्रमण भगवान् श्रीमहावीरस्वामी विहार करते हुए, वहां दुतिपलाश चैत्यमें पधारें। परिषदा वंदन करने आई और धर्मोपदेश श्रवण करके वापीस चली गई। उस काल और उस समय में श्रवण भगवान् श्रीमहावीरस्वामी के बड़े शिष्य इंद्रभूति नाम के अनगार (मुनि), गौतम गोत्रवाले, सात हाथ के ऊंचे शरीरवाले, समचोरस संस्थानवाले, वज्रऋषभनाराचसंघयनवाले, सुवर्णवर्ण के शरीर की कांतिवाले, कमल सदृश गौर नेत्रवाले, उग्रतपस्वी, दिप्ततपस्वी, तप्ततपस्वी, घोरतपस्वी, महातपस्वी, उदारतपस्वी, क्षमादि अनेक घोर गुणवाले, घोर ब्रह्मचारी, शरीर की ममता रहित, विस्तीर्ण तेजोलेश्या को संक्षेप करके रखनेवाले, छठ (बेले) २ पारणा करनेवाले, निरंतर सत्रह्प्रकार के संयम से और बारह प्रकार के तपसे आत्मा को भावित करते हुए रहते थे।

गौतम स्वामी के गुणवर्णन

सूत्रम्—तए णं से भगवं गोयमे छट्ठक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ विइयाए पोरिसीए झाणं झायइ, तइयाए पोरिसीए अतुरियं अचवलं असंभंते मुहपत्तिं पडिलेहेइ २ त्ता भायणवत्थाइं

पडिलेइ २ त्ता भायणवत्थाइं पमज्जइ २ त्ता भायणाइं उग्गाहेइ २ त्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ २ त्ता एवं वयासी–इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए छट्ठक्खमणपारणगंसि वाणियगामे नयरे उच्चनीयमज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडित्तए, अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबन्धं करेह ।

गौतम स्वामी भिक्षार्थ निकले

अर्थ—भगवान गौतमस्वामी छट्ट तपके पारणे के दिन प्रथम पौरुषी (प्रहर) में स्वाध्याय किया दूसरी पौरुषी में ध्यान किया और तीसरी पौरुषी में स्थिरतासे चपलता एवं घबराहट रहित मुहपात्ति, भाजन (पात्र) और वस्त्रों का पाडिलेहण प्रमार्जन किया। पीछे पात्रों को ग्रहण करके श्रमण भगवान श्रीमहावीर स्वामी के पास आये। श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामी को वंदना नमस्कार करके इस प्रकार कहने लगे–'हे भगवन्! आपकी आज्ञा हो तो छट्ट के पारणे के लिये वाणिज्य गांव में ऊंच नीच और मध्यम कुलवालों के घरो में भिक्षाके लिये जाना चाहता हूँ।' भगवंत ने कहा–हे देवानुप्रिय! जैसे सुख हो वैसा करो, प्रतिबंध मत करो।

सूत्रम्—तए णं गोयमे समणेणं भगवया महावीरेण अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ दूइपलासाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता अतुरियमचवलमसंभंते जुगंतरपरिलोय-

णाए दिट्ठीए पुरओ ईरियं सोहेमाणे जेणेव वाणियगामे नयरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता वाणियगामे नयरे उच्चनीयमज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडइ ।

अर्थ—तब गौतम स्वामी श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामी की आज्ञा लेकर श्रमण भगवान महावीर के पाससे दूतिपलाशचैत्यसे निकले, रास्ते में शीघ्रता नहीं एवं चपलता और घबराहट से रहित, आगे चार हाथ प्रमाण भूमिको देखते हुए, ईर्यापथिकी शोधते हुए, जहां वाणिज्य गांव था, वहां आये। वाणिज्य गांव में ऊंच नीच और मध्यम कुलके घरों में गौचरी (भिक्षा) के लिये फिरने लगे।

सूत्रम्—तए णं से भगवं गोयमे वाणियगामे नयरे जहा पण्णत्तीए तहा जाव भिक्खायरियाए अडमाणे अहापज्जत्तं भत्तपाणं सम्मं पडिग्गाहेइ २ त्ता वाणियगामाओ पडिणिग्गच्छइ २ त्ता कोल्लायस्स सन्निवेसस्स अदूरसामंतेणं वीईवयमाणे बहुजणसद्दं निसामेइ, बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ ४—एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी आणंदे नामं समणोवासए पोसहसालाए अपच्छिम जाव अणवकंखमाणे विहरइ । तए णं तस्स गोयमस्स बहुजणस्स, अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म अयमेयारूवे अज्झत्थिए ४—तं गच्छामि णं आणंदं समणोवासयं पासामि, एवं संपेहेइ २ त्ता जेणेव कोल्लाए सन्निवेसे

गौतम स्वामी भिक्षार्थ भ्रमण

जेणेव आणंदे समणोवासए जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ ।

अर्थ—भगवान गौतम स्वामी वाणिज्य गांव में भिक्षा के लिये घूमते हुए प्रासुक (बेयालीश दोष रहित और एषणीय (ग्रहण करने लायक) ऐसे आहार पानी को ग्रहण किया। पीछे वाणिज्य गांवसे वापीस लौटते समय कोल्लक सन्निवेश के पास होकर निकले, उस समय बहुत लोग अन्योन्य बातें कर रहे थें, यह सुनने में आया कि—'हे देवानुप्रिय जनो! श्रमण भगवान श्रीमहावीर स्वामी का अंतेवासी आनंद श्रमणोपासक पौषधशाला में अपश्चिममारणांतिक संलेखना करके काल की इच्छा न करता हुआ रहा है, इस प्रकार लोगों के वचन सुनकर गौतम स्वामी ने विचार किया कि मैं आनंद श्रमणोपासक के पास जाउं और उसको देखूं। ऐसा विचार करके कोल्लाक सन्निवेश में जहां आनंद श्रमणोपासक की पौषधशाला थी वहां आये।

गौतम स्वामी आनंद के पास गये

सूत्रम्—तए णं से आणंदे समणोवासए भगवं गोयमं एज्जमाणं पासइ २ त्ता हट्ठ जाव हियए, भगवं गोयमं वंदइ नमंसइ २ त्ता एवं वयासी—एवं खलु भंते! अहं इमेणं उरालेणं जाव धमणिसंतए जाए, न संचाएमि देवाणुप्पियस्स अंतियं पाउब्भवित्ता णं तिक्खुत्तो मुद्धाणेणं पाए अभिवंदित्तए, तुब्भे णं भंते! इच्छाकारेणं अणभिओएणं इओ चेव एह, जा णं देवाणुप्पियाणं तिक्खुत्तो मुद्धाणेणं पाएसु वंदामि नमं-

सामि। तए णं से भगवं गोयमे जेणेव आणंदे समणोवासए तेणेव उवागच्छइ ॥ सू० १५ ॥

अर्थ—तब आनंद श्रमणोपासक भगवंत गौतमस्वामी को आते हुए देखकर हृष्ट तुष्ट और हृदयमें आनंदित हुआ और भगवान गौतमस्वामी को वंदना नमस्कार करके कहने लगा—हे भगवन् ! मैं इस उदार उग्र तप करके कृश हाडपंजर जैसा होगया हूँ। इसलिये आप देवानुप्रिय के पास आकरके आपके चरणों में नमस्कार करने को असमर्थ हूँ। तो हे भगवन् ! आप इच्छा पूर्वक यहां मेरे पास आओ तो मैं आपको मस्तक से तीन वार वंदना नमस्कार कर सकूं। तब भगवान गौतम आनंद श्रमणोपासक के पास गये ॥ सू० १५ ॥

गौतम स्वामी आनंद के पास गये

सूत्रम्——तए णं से आणंदे समणोवासए भगवओ गोयमस्स तिक्खुतो मुद्धाणेणं पाएसु वंदइ नमंसइ २ त्ता एवं वयासी—अत्थिणं भंते ! गिहिणो गिहिमज्झावसंतस्स ओहिनाणे समुप्पज्जइ ?, हंता अत्थि, जइ णं भंते ! गिहिणो जाव समुपज्जइ, एवं खलु भंते ! ममवि गिहिणो गिहिमज्झावसंतस्स ओहिनाणे समुप्पन्ने—पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दे पंच जोयणसयाइं जाव लोलुयच्चुयं नरयं जाणामि पासामि। तए णं से भगवं गोयमे आणंदं समणोवासयं एवं वयासी—अत्थि णं आणंदा ! गिहिणो जाव समुप्पज्जइ, नो चेव णं एमहालए, तं णं तुमं आणंदा ! एयस्स ठाणस्स आलोएहि जाव तवोकम्मं पडिवज्जाहि।

गौतम स्वामी का और आनंद का संवाद

अर्थ—उस समय आनंद श्रमणोपासक ने गौतम स्वामी के पैर पर मस्तक लगाकर तीन वार वंदना नमस्कार किया और कहने लगा—'हे भगवन्! गृहस्थावास में रहते हुए गृहस्थी को अवधिज्ञान हो सकता है क्या?' भगवान् गौतम स्वामी ने कहा हां, हो सकता है। तब आनन्द श्रमणोपासक ने कहा कि हे भगवन्! गृहस्थावास में रहते हुए गृहस्थी को अवधिज्ञान होता है, तो हे भगवन्! मुझे भी गृहस्थावास में रहते हुए अवधिज्ञान प्राप्त हुवा है। जिसे मैं यहां रहा हुआ पूर्व पश्चिम और दक्षिण दिशामें लवण समुद्र के पांचसौ योजन तक के क्षेत्रों को, उत्तर में चुल्लहिमवंत वर्षधर पर्वत तक, ऊपर सौधर्म देवलोक तक और नीचे रत्नप्रभा पृथ्वी के लोलुयच्चुय नरक तक के क्षेत्रों को देखता हूँ और जानता हूँ। तब भगवान् गौतम स्वामी आनंद श्रमणोपासक को कहने लगे कि—हे आनंद गृहस्थ को अवधिज्ञान तो होता है, परंतु इतना बड़ा नहीं हो सकता। इसलिये हे आनंद तुमने झूठा कहा, यह तुम्हारी भूल स्वीकार करके प्रायश्चित करो।

सूत्रम्—तए णं से आणंदे समणोवासए भगवं गोयमं एवं वयासी—अत्थी णं भंते! जिणवयणे संताणं तच्चाणं तहियाणं सब्भूयाणं भावाणं आलोइज्जइ जाव पडिवज्जिज्जइ?, नो इणट्ठे समट्ठे, जइ णं भंते! जिणवयणे संताणं जाव भावाणं नो आलोइज्जइ जाव तवोकम्मं नो पडिवज्जिज्जइ तं णं भंते! तुब्भे चेव एयस्स ठाणस्स आलोएह जाव पडिवज्जह।

अर्थ—तब आणंद श्रमणोपासक ने भगवान् गौतमस्वामी को कहा कि-हे भगवन् ! जिन वचनमें जो भाव कहे हैं वे सद्रूप हैं, तथ्यरूप हैं, और सद्भूत हैं अर्थात् जिन प्रवचनमें जिस पदार्थ का जो स्वरूप कहा है, वैसा ही बराबर देखता हूँ तो उसके लिये भी प्रायश्चित करना होगा क्या ?। भगवान गौतमने कहा कि सत्य-वात का प्रायश्चित नहीं है। आनंद श्रमणोपासक ने कहा हे भगवन ! जिन वचन में सत्यवात का प्रायश्चित नहीं है तो भगवन ! आपको ही प्रायश्चित लेना चाहिये। इसलिये आपही प्रायश्चित करें।

सूत्रम्—तए णं से भगवं गोयमे आणंदेणं समणोवासएणं एवं वुत्ते समाणे संकिए कंखिए विइगिच्छासमासन्ने आणंदस्स अंतियाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव दूइपलासे चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते गमणागमणाए पडिक्कमइ २ त्ता एसणमणेसणं आलोएइ २ त्ता भत्तपाणं पडिदंसेइ २ त्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ २ त्ता एवं वयासी—एवं खलु भंते ! अहं तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए तं चेव सव्वं कहेइ जाव तए णं अहं संकिए ३ आणंदस्स समणोवासगस्स अंतियाओ पडिणिक्खमामि २ त्ता जेणेव इहं तेणेव हव्वमागए।

अर्थ—इस प्रकार आनंद श्रमणोपासकका कथन सुन कर शंका आकांक्षा और संदेह हुआ कि गृहस्थी को

गौतम स्वामी का और आनंद का संवाद

भी इतना अवधिज्ञान होता है? इस प्रकार शंकाशील होते हुए, आनंद श्रमणोपासक के पाससे निकल कर दूतिपलाश चैत्यमें जहां श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामी विराजमान हैं वहां पधारें। और श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामी के पास गमनागमन क्रिया का प्रतिक्रमण (प्रायश्चित) किया। भिक्षा में लगे हुए दोषों की आलोचना की, आहर पानी श्रमण भगवान् को बतलाया और वंदना नमस्कार करके कहने लगे कि—हे भगवन्! आपको सब आहार पानी की हकीकत और आनंद श्रमणोपासक के साथ बनी हुई बातचित्त कह सुनाई।

आनंद के अवधि ज्ञान का निर्णय

सूत्रम्—तं णं भंते! किं आणंदेणं समणोवासएणं तस्स ठाणस्स आलोएयव्वं जाव पडिवज्जेयव्वं उदाहु मए? गोयमा इ समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी—गोयमा! तुमं चेव णं तस्स ठाणस्स आलोएहि जाव पडिवज्जाहि, आणंदं च समणोवासयं एयमट्ठं खामेहि। तए णं से भगवं गोयमे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहत्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ २ त्ता तस्स ठाणस्स आलोएइ जाव पडिवज्जइ, आणंदं च समणोवासयं एयमट्ठं खामेइ। तए णं समणे भगवं महावीरे अन्नया कयाइ बहिया जणवयविहारं विहरइ ॥ सू० १६ ॥

अर्थ—अब हे भगवन्! आनंद श्रमणोपासक प्रायश्चित करें या मैं करूं? श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामी

ने कहा कि—हे गौतम। तुम्हारे को ही प्रायाश्चित करना चाहिये। आनंद श्रमणोपासक को कहे हुए शद्बों की क्षमा मांगो। इस प्रकार श्रमण भगवान श्रीमहावीर स्वामी का वचन सुनकर विनय पूर्वक अपनी भूल स्वीकार किया और आनंद श्रमणोपासक की सत्य बात में दोष बतलाया इसकी क्षमा-याचना करके प्रायाश्चित लिया। अब श्रमण भगवान श्रीमहावीर स्वामी अन्यत्र जनपद-देश में विहार किया ॥ १६ ॥

टीका—'उरालेण' मित्यादिवर्णको मेघकुमारतपोवर्णक इव व्याख्येयः, यावदनवकाङ्क्षन् विहरतीति ॥ 'गिहमज्झावसंतस्स' त्ति गृहमध्यावसतः, गेहे वर्त्तमानस्येत्यर्थः॥ 'संताण' मित्यादय एकार्थाः शद्बाः॥ 'गोयमा इ' त्ति हे गोतम! इत्येवमामन्त्र्येति ॥ (सू० १६)

टीकार्थ—'उरालेणं' इत्यादि ज्ञाता सूत्रमें मेघकुमार के तपका वर्ण कहे अनुसार यहां आनंद श्रावक के तपका वर्णन समझना। 'गिहमज्झावसतस्स' घरमें रहे हुए। 'संताणं तच्चाणं' इत्यादि शद्ब सत्यार्थ वाचक है। 'गोयमा' हे गौतम! इस प्रकार संबोधन वाचक है ॥ १६ ॥

सूत्रम्—तए णं से आणंदे समणोवासए बहूहिं सीलव्वएहिं जाव अप्पाणं भावेत्ता वीसं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणित्ता एक्कारस य उवासगपडिमाओ सम्मं काएणं फासित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे

कप्पे सोहम्मवडिंसगस्स महाविमाणस्स उत्तरपुरच्छिमेणं अरुणे विमाणे देवत्ताए उववन्ने । तत्थ णं अत्थे गइयाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, तत्थ णं आणंदस्स वि देवस्स चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता । आणंदे भंते ! देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं ३ अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उववाज्जहिइ ?, गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ । निक्खेवो ॥ सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं पढमं अज्झयणं समत्तं ॥ सू० १७ ॥

आनंद का देवलोक गमन

अर्थ—आनंद श्रमणोपासक बहुत विशुद्ध परिणाम से आत्मा को निर्दोष करता हुआ, वीश वर्ष पर्यन्त बारह प्रकार के श्रावक धर्म को पालन करता हुआ, ग्यारह प्रतिमा को निरतिचारपने से आराधन करता हुआ अंत में एक मास की अपश्चिममारणांतिक संलेखना करके, साठ भक्त (एक मासका) अणसन करके, पापों की आलोचना करके समाधि पूर्वक काल धर्म प्राप्त होकर सौधर्म देवलोक में अरुणविमान में चार पल्योपम के आयुष्यवाला देव हुआ । तब गौतमस्वामी ने श्रमण भगवान् को पूछा कि—हे भगवन ! आनंद देव देवलोक का आयुष्य पूर्ण करके कहां जावेगा ?, तब श्रमण भगवान ने कहा कि—हे गौतम ! देवलोक से महाविदह क्षेत्र में जन्म लेकर वहां दीक्षा ग्रहण करेगा और कर्मों का क्षय करके सिद्ध बुद्ध और मुक्त होगा अर्थात् केवली होकर मोक्ष जावेगा । इस प्रकार

सातवें अंग उपासकदशासूत्र का प्रथम अध्ययन समाप्त हुआ ॥ १७ ॥

टीका—'निक्खेवओ' त्ति निगमनं यथा "एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव उवासगदसाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पणत्ते त्तिबेमि" ॥ सू० १७ ॥

टीकार्थ—'निक्खेवओ' उपसंहार, जैसे-हे जम्बू ! श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामी ने उपासकदशासूत्रके प्रथम अध्ययन का अर्थ इस प्रकार कहा है ॥ सू० १७ ॥

जरूरी सूचना—इस अध्ययन में बारम्बार 'दूतिपलाश' चैत्य का अधिकार आया है यह 'दूतिपलाश' यक्ष का मंदिर था और उसमें यक्ष की मूर्ति थी इसका विशेष विवरण 'उववाई' सूत्रानुसार जानना चाहिये। इसी तरह से आनन्द श्रावक के सम्यक्त्व सहित बारह व्रतों के अधिकार में "अरिहंत चैत्य" पाठ आया है सो उसका अरिहंत भनवान् का मंदिर और मूर्ति का अर्थ टीकाकार महाराजने बतलाया है वह प्रसंगानुसार सच्च है। अभी व्यवहार में भी प्रत्यक्ष में यही दिख रहा है सैकडों जैन मंदिर और हजारों जिनप्रतिमाएँ कालानुभाव से मिथ्यात्वियों के अधिकार में होगई हैं और उन्हों के नाम भी मिथ्यात्वी लोगोंने अपने इष्ट देव के नाम से स्थापन करदिये हैं। उन्हों को कोई भी विवेक वान समझदार जैनी श्रावक जिनेश्वर भगवान् की भक्ति के लिये वन्दन पूजन नहीं कर सकता। इस प्रकार अनादि सिद्ध और प्रत्यक्ष प्रमाणानुसार अरिहंत चैत्य का अर्थ अरिहंत भगवान् की प्रतिमा का सच्चा है तोभी स्थानक वासी लोग अपने मन्तव्य को स्थापन करने के लिये सच्चे अर्थ को उत्थापन करते हैं और अरिहंत चैत्य का अर्थ साधू करते हैं यह

जरूरी सूचना

कल्पित अर्थ किसी प्रकार यहां पर सिद्ध नहीं होसकता इसका विशेष निर्णय "सम्यक्त्व शल्योद्धार" और "श्रीजिनप्रतिमाको वन्दन पूजन करने की अनादि सिद्धी" आदि इस विषय के ग्रन्थ देख कर निर्णय कर लेना ।

जरूरी सूचना

और इस अध्ययन में शरदऋतु का गाय का घृत वापरने का आनन्द श्रावक ने नियम लिया है । शरद ऋतु आसोज कार्तिक महीना की कही जाती है यदि आसोज कार्तिक मास का बना हुआ घी साल भर रखकर खाया जावे तो उसमें जीवों की उत्पति होने से व खराब होजाने से खाने योग्य नहीं रहता और जिस के घर में ४० हजार गायों मोजूद हों और वह साल भर का पुराना घी काम में लावे यह सर्वथा अनुचित है इसलिये शरद ऋतु कहने से आसोज कार्तिक का बना हुआ घी काममें लानेका अर्थ संगत मेरी समझ में नहीं हो सकता। इसलिये शरद ऋतु कहने से यहां पर हमेशा सवेरे में ताजा बना हुआ गाय का घी काममें लाने का अर्थ करना उचित है। और आनन्द श्रावक ने पांच सौ हल आदि की मर्यादा की थी इस को देख कर कई लोग कहते हैं कि उत्कृष्ट श्रावक धर्म का आराधन करने वाले आनन्द ने पांच सौ हल आदि का आरम्भ समारम्भ का काम किया तो हमको करने में क्या हर्ज है, ? इस बात पर हमारा इतना ही कहना है कि आनन्द के वंश परम्परा का यह व्यवसाय था उसने लोभ वश अधिक कुछ भी नहीं बढाया और भरतमहाराजा आदि की तरह मोहभाव आशक्ति नहीं थी और अन्त में सब आरम्भ का त्याग करके श्रावक की ग्यारह प्रतिमा आदि उत्कृष्ट धर्म का आराधन किया जिससे उनके संसार वृद्धि न हुई और मुक्ति के अधिकारी हुए और अभी जो हल आदि कर्मादान का धन्धा करते हैं वह मोहभाव से अधिक आशक्ति और लोभान्ध से गृद्ध बनकर करते हैं उससे उनके कर्मों

का बन्ध अधिक होता है और संसार वृद्धि होती है इसलिये आनन्द श्रावक का बहाना बतला कर हल आदि कर्मादान का आरम्भ समारम्भ करना उचित नहीं है। और किसी भी जैन शास्त्र में हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखने का नहीं लिखा इस का विपेश निर्णय 'आगमानुसार मुंहपत्ति का निर्णय' और 'जाहिर उद्घोषणा नं० १–२–३' में विस्तार से लिखा है, पाठक गण हमारे यहां से उक्त ग्रन्थ मंगवा कर देख सकते हैं। श्री हिंदी जैनागम प्रकाशक सुमति कार्यालय जैन प्रेस, कोटा।

॥ इत्युपासकदशाङ्गे प्रथमानन्दाध्ययनं समाप्तम् ॥



द्वितीयं कामदेवाध्ययनम्।

सूत्रम्—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते दोच्चस्स णं भंते ! अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खलु जम्बू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था, पुण्णभद्दे चेइए, जियसत्तू राया, कामदेवे गाहावई, भद्दा भारिया, छ हिरण्णकोडीओ निहाणपउत्ताओ, छ वुड्ढिपउत्ताओ, छ पवित्थरपउत्ताओ, छ

वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं । समोसरणं । जहा आणंदो तहा निग्गओ तहेव सावयधम्मं पडिवज्जइ, सा-चेव वत्तव्वया जाव जेट्ठपुत्तं मित्तनाइं आपुच्छित्ता जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ २ त्ता, जहा आणंदो जाव समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ ॥ सू० १८ ॥

अर्थ—जंबूस्वामी ने कहा कि हे भगवन ! श्रमण भगवान् श्रीमहावीरस्वामी मोक्ष पधारें, उन्होंने सातवें उपासकदशांगसूत्र के प्रथम अध्ययन का ऐसा अर्थ कहा, यह सुना । अब हे भगवन् ! दूसरे अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?, तब आर्य सुधर्मस्वामी बोले—हे जंबू ! उस काल और उस समय में चंपा नामकी नगरी थी, उस में पूर्णभद्र यक्ष का चैत्य था । उस नगरी में जितशत्रु राजा राज्य करता था और कामदेव गाथापति अपनी धर्मपत्नी भद्रा भार्या के साथ रहता था । इस कामदेव गाथापति के पास छह हिरण्यकोटी धन भंडारमें, छह हिरण्यकोटी धन व्याज व्यापार में और छह हिरण्यकोटी धन घर खर्च के लिये था । इन के उपरांत दश हजार गौका एक व्रज, ऐसे छह व्रज थे । श्रमण भगवान श्रीमहवीरस्वामी चंपा नगरी के पूर्णभद्र यक्ष के चैत्य में पधारे जैसे आनंद श्रावक ने आकरके, वंदना नमस्कार करके, धर्मोपदेश श्रवण करके, श्रावक धर्म स्वीकार किया था । उस मुआफिक महोत्सव पूर्वक कामदेव गृहपति ने श्रमण भगवान श्रीमहावीरस्वामी के पास आकर के वंदना नमस्कार किया । पीछे धर्मोपदेश श्रवण करके श्रावक धर्म के बारह व्रतों का स्वीकार किया । पीछे आनंद श्रावक की तरह

कामदेव का अधिकार

बड़े पुत्र की और स्वजन मित्र ज्ञातिजनों की आज्ञा लेकर पौषधशाला में गया, वहां श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामी के पास स्वीकारे हुए श्रावक धर्म का पालन करता हुआ रहने लगा ॥ १८ ॥

सूत्रम्—तए णं तस्स कामदेवस्स समणोवासगस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि एगे देवे मायी मिच्छद्दिट्ठी अंतियं पाउब्भूए तए णं से देवे एगं महं पिसायरूवं विउव्वइ, तस्स णं देवस्स पिसायरूवस्स इमे एयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते ।

कामदेव के पास में एक पिशाच आया

अर्थ—पौषधशाला में प्रतिमा धारण करके रहे हुए कामदेव श्रमणोपासक के पास अर्द्धरात्रि के समय एक मायावी मिथ्यादृष्टि देव प्रगट हुआ । इस देवने एक बड़ा भारी पिशाच का रूप धारण किया, इस पिशाच के रूपका वर्णन इस प्रकार है ।

टीका—अथ द्वितीये किमपि लिख्यते 'पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि' त्ति पूर्वरात्रश्चासावपररात्रश्चेति पूर्वरात्रापररात्रः, स एव कालसमयः— कालविशेष ॥ तत्र 'इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते' त्ति वर्णकव्यासो—वर्णकविस्तरः,

टीकार्थः—अब दूसरे अध्ययन का अर्थ कुछ लिखते हैं— 'पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि' पहली रात्रि का कुछ पीछे का समय और पीछली रात्रि का कुछ पहला समय में अर्थात् मध्यरात्रि के कुछ समय में एक मायामिथ्यात्वी देव पिशाच का रूप बनाकर आया उसके स्वरूप का वर्णन करते हैं—

सूत्रम्—सीसं से गोकिलंजसंठाणसंठियं, सालिभसेल्लसरिसा से केसा कविलतेएणं दिप्पमाणा, महल्ल उट्टियाकभल्लसंठाणसंठियं निडालं, मुगुंसपुंछं व तस्स भुमगाओ फुग्गफुग्गाओ, विगयबीभच्छदंसणाओ सीसघडिविणिग्गयाइं अच्छीणि विगयबीभच्छदंसणाइं, कण्णा जह सुप्पकत्तरं चेव विगयबीभच्छदंसणिज्जा, उरब्भपुडसन्निभा से नासा, झुसिरा जमलचुल्लीसंठाणसंठिया दोऽवि तस्स नासापुडया, घोडयपुंछं व तस्स मंसूइं कविलकविलाइं विगयबीभच्छदंसणाइं।

अर्थः—पिशाचका मस्तक गौको घाँटा खानेके लिये जो वांस का बड़ा टोकरा रखा जाता है, उसको औंधा करनेसे जो आकार बनता है उसके जैसा विशाल था। चावंल के तुस के वर्ण जैसे पिंगलवर्णवाले चमकीले केश थे। मट्टी के बड़े घड़े का कपालिक (घड़े के नीचे का हिसा) के जैसे बड़ा ललाट था। न्यौला या गिलहरी के पूंछ जैसी विखरे हुए बालवाली कुटिल और भयंकर ऐसी दोनों भौंह थीं। घड़े के मुख जैसी विशाल बहुत भयंकर चमकीली दोनों आंखें थीं। अनाज फटकने के सूपके टूकडे जैसे भयंकर देखाव वाले दोनों कान थे। भेड के नाक जैसा चपटा नाक था। दो मिली हुई चूल्हीं (भट्टी) के जैसे नासिका के बड़े २ छिद्र थे। घोडेके पूंछ के बाल के जैसे बड़े कठोर और भयंकर दाढी मूँछ के बाल थे।

टीका—सीसंति-शिरः 'से' तस्य 'गोकिलञ्ज' त्ति गवां चरणार्थं यद्वंशदलमयं महद्भाजनं तद्गोकिलञ्जं डल्लेत्ति यदुच्यते तस्याधोमुखीकृतस्य यत्संस्थानं तेन संस्थितं, तदाकारमित्यर्थः, पुस्तकान्तरे विशेषणान्तरमुपलभ्यते 'विगयकप्पयनिभं' ति विकृतो योऽलञ्जरादीनां कल्प एव कल्पकः--छेदः खण्डं कर्परमिति तात्पर्यं, तन्निभं तत्सदृशमिति, क्वचित्तु 'वियडकोप्परनिभं' ति दृश्यते तच्चोपदेशगम्यं, 'सालिभसेल्लसरिसा' व्रीहिकणिशशूकसमाः 'से' तस्य 'केसा' वालाः, एतदेव व्यनक्ति--'कविलतेएणं दिप्पमाणा' पिङ्गलदीप्त्या रोचमानाः 'उट्टियाकभल्लसंठाणसंठियं' उष्ट्रिका--मृण्मयो महाभाजनविशेषस्तस्याः कभल्लं--कपालं तस्य यत्संस्थानं तत्संस्थितं, 'निडालं'ति ललाटं, पाठान्तरे 'महल्लाउट्टियाकभल्लसरिसोवमे' महोष्ट्रिकायाकभल्लसदृशमित्येव-मुल्लेखेनोपमा-उपमानवाक्यं यत्र तत्तथा, 'मुगुंसपुंछं व' भुजपरिसर्पविशिषो मुगुंसा सा च खाडहिल्लात्ति सम्भाव्यते, तत्पुच्छवत्, 'तस्ये' ति पिशाचरूपस्य 'भुमगाओ' त्ति भ्रुवौ, प्रस्तुतोपमार्थमेव व्यनक्ति-'फुग्गफुग्गाओ' त्ति परस्परासम्बद्धरोमिके विकीर्णविकीर्णरोमिके इत्यर्थः, पुस्तकान्तरे तु 'जडिलकुडिलाओ' त्ति प्रतीतं 'विगयबीभच्छदंसणाओ' त्ति विकृतं बीभत्सं च दर्शनं--रूपं ययोस्ते तथा, 'सीसघडिविणिग्गयाणि' शीर्षमेव घटी तदाकारत्वात् शीर्षघटी तस्या विनिर्गते इव विनिर्गते शिरोघटीमतिक्रम्य व्यवस्थितत्वात् 'अक्षिणी' लोचने, विकृत--बीभत्सदर्शने प्रतीतं, कर्णौ--श्रवणौ यथा शूर्पकर्त्तरमेव--शूर्पखण्डमेव नान्यथाकारौ, टप्पराकारावित्यर्थः विकृतेत्यादि तथैव।

टीकार्थः—पिशाचरूप धारी देवका शिर 'गोकिलंज' गौके खाने के लिये जो वंश के बने हुए बड़े टोकरे (डला) को उलटा करने से जैसा आकार हो उस प्रकार का शिर था, या 'विगयकप्पयनिभं' मट्टीके बड़े बरतन मटके के ठीकरा की तरह था।

॥ ९६ ॥

'सालिभसेल्लसरिसा' चावल की उम्मी की तरह कठोर कर्कश और पिंगल वर्णवाले बाल थे। 'उट्टियाकभल्लसंठाणसंठियं' मट्टी के घड़े बरतन की ठीकरी जैसा कपाल था। 'मुगुंसपुंछं' भुजपरिसर्प विशेष (गिलावरी) की पूछ जैसी छूटे २ रोम वाली जटिल और टेढी भौं थी। 'विगयबीभच्छदंसणाओ' विरूप और भयंकर रूपवाली तथा शिर से बाहर निकली हुई भयंकर आंखे थी। सूप के टूकडे के आकार वाले या छपरे के आकार वाले दोनों कान थे।

पिशाच का वर्णन

टीका:—'उरब्भपुडसन्निभा' उरभ्रः- ऊरणस्तस्य पुटं-नासापुटं तत्सन्निभा-तत्सदृशी नासा-नासिका, पाठान्तरेण-'हुरब्भपुडसंठाणसंठिया' तत्र हुरभ्रा-वाद्यविशेषस्तस्याः पुटं-पुष्करं तत्संस्थानसंस्थिता, अतिचिपिटत्वेन तदाकृतिः 'झुसिर' त्ति महारन्ध्रा 'जमलचुल्लीसंठाणसंठिया' यमलयोः-समस्थितद्वयरूपयोः चुल्ल्योर्यत्संस्थानं तत्संस्थिते द्वे अपि तस्य नासापुटे--नासिका-विवरे, वाचनान्तरे 'महल्लकुब्बसंठिया दोऽवि से कवोला' तत्र क्षीणमांसत्वादुन्नतास्थित्वाच्च 'कुब्बं' ति निम्नं क्षाममित्यर्थः,तत्संस्थितौ द्वावपि 'से' तस्य 'कपोलौ' गण्डौ तथा 'घोडय' त्ति घोटकपुच्छवद्-अश्ववालधिवत्तस्य-पिशाचरूपस्य 'श्मश्रूणि' कूर्चकेशाः, तथा 'कापिलकापिलानि' अतिकडाराणि, विकृतानीत्यादि तथैव, पाठान्तरेण 'घोडयपुंछं व तस्स कविलफरूसाओ उद्धलोमाओ दाढियाओ' तत्र परुषे-कर्कशस्पर्शे ऊर्ध्वरोमिके न तिर्यगवगते इत्यर्थः दंष्ट्रिके-उत्तरौष्ठरोमाणि।

टीकार्थः—'उरब्भपुडसन्निभा' मींढे के जैसी या हुरभ्र नाम के वाद्य के जैसी बहुत चीपटी नासिका थी। 'झुसिर' दो चूल्ही के आकार जैसे भयंकर नासिका के छिद्र थे। 'महल्लकुब्जसंठिया दोऽवि से कवोला' क्षीणमांसवाले और ऊंची निकली हुई हड्डीवाले कुबडे जैसे गंडस्थल थे।। 'घोडय' घोडे के पूंछ के बाल जैसे कठोर और कर्कश ऊंचे ऊठे हुए दाढी मूंछ के बाल थे।

सूत्रम्—उट्टा उट्टस्स चेव लंबा, फालसरिसा से दंता, जिब्भा जहा सुप्पकत्तरं चेव विगयबीभच्छदंसणिज्जा, हलकुद्दालसंठिया से हणुया, गल्लकडिल्लं च तस्स खड्डं फुट्टं कविलं फरुसं महल्लं, मुइंगाकारोवमे से खंधे, पुरवरकवाडोवमे से वच्छे, कोट्ठियासंठाणसंठिया दोऽवि तस्स बाहा, निसापाहाणसंठाणसंठिया दोऽवि तस्स अग्गहत्था, निसालोढसंठाणसंठियाओ हत्थेसु अंगुलीओ ।

अर्थ—ऊंट के जैसे लंबे २ होठ थे, लोहे की कुश या पावड़ा के जैसे लंबे २ दांत थे। सूपके जैसी भयंकर देखाववाली जीह्वा थी, हल की लकड़ी जैसी लंबी और टेढी ठोडी थी। लोहे की कडाह जैसे मध्यमें खड्डे वाले, कुत्ते के जैसे फटे हुए, बड़े कर्कश ऐसे गाल थे। मृदंग के आकारवाले स्कंध थे। नगर के दरवाजे जैसी विशाल छाती थी। अनाज भरने की कोठी के जैसी दोनों स्थूल भूजा थीं। शिला के जैसे स्थूल और विशाल हाथ थे। शिला की लोढी जैसी हाथ की अंगुलियाँ थी।

पिशाच का वर्णन

टीका—'ओष्ठौ' दशनच्छदौ' उष्ट्रस्येव लम्बौ–प्रलम्बमानौ, पाठान्तरेण 'उट्टा से घोडगस्स जहा दोऽवि लम्बमाणा' तथा फाला–लोहमयकुशाः तत्सदृशा दीर्घत्वात् 'से' तस्य 'दन्ता' दशनाः, जिह्वा यथा शूर्पकर्त्तरमेव, नान्यथाकारा, विकृतेत्यादि तदेव, पाठान्तरे 'हिंगुलुयधाउकन्दरबिलं व तस्स वयणं' इति दृश्यते, तत्र हिंगुलुको–वर्णद्रव्यं तद्रूपो धातुर्यत्र तत् तथाविधं यत्कन्दराबिलं

—गुहालक्षणं रन्ध्रं तदिव तस्य वदनं, 'हलकुद्दालं' हलस्योपरितनो भागः तत्संस्थिते—तदाकारे अतिवक्रदीर्घे 'से' तस्य 'हणुय' त्ति दंष्ट्राविशेषौ, 'गल्लकडिल्लं च तस्स' त्ति गल्ल एव—कपोल एव कडिल्लं—मण्डकादिपचनभाजनं गल्लकडिल्लं, चः समुच्चये, 'तस्य' पिशाचरूपस्य 'खड्ड' त्ति गर्ताकारं, निम्नमध्यभागमित्यर्थः, 'फुट्टं' ति विदीर्णं, अनेनैव साधर्म्येण कडिल्लमित्युपमानं कृतं, 'कविलं' ति वर्णतः 'फरुसं' ति स्पर्शतः 'महल्लं' ति महत् तथा मृदङ्गाकारेण मर्दलाकृत्या उपमा यस्य स मृदङ्गाकारोपमः 'से' तस्य स्कन्धः—अंशदेशः, 'पुरवरे' ति पुरवरकपाटोपमं 'से' तस्य वक्षः—उरःस्थलं, विस्तीर्णत्वादिति, तथा 'कोष्ठिका' लोहादिधातुधमनार्थं मृत्तिकामयी कुशूलिका तस्या यत्संस्थानं तेन संस्थितौ तस्य द्वावपि बाहू—भुजौ, स्थूलावित्यर्थः, तथा 'निसापाहाणे' त्ति मुद्गादिदलनशिला तत्संस्थितौ पृथुलत्वस्थूलत्वाभ्यां द्वावपि अग्रहस्तौ—भुजयोरग्रभूतौ, करावित्यर्थः, तथा 'निसालोढे' ति शिलापुत्रकः तत्संस्थानसंस्थिता हस्तयोरङ्गुल्यः, स्थूलत्वदीर्घत्वाभ्याम् ।

टीकार्थः—'ओट्ठा' उंट या घोड़े के होंठ के जैसे लंबे २ होठ थे। लोहे की कुश के जैसे तीक्ष्ण और लंबे २ दांत थे सूप के टूकडे के आकार वाली लंबी और बेडोल जीभ थी। 'हिंगुलुयधाउकंदरबिलं' हिंगुलु की खान के जैसा लाल वर्णवाला मुख था। 'हलकुद्दालं' हलके कुद्दाले की जैसे बहुत टेढी और लंबी दाढाएँ थीं। 'गल्लकडिल्लं' मांड आदि पकाने के बरतन के जैसे खड्ड वाले और फटे हुए मृदंग के आकार वाले लंबे स्कंध थे। 'पुरवरे' नगर के दरवाजे जैसी विशाल छाती थी। लोहादि धातु धमने की मट्टी की कोठी के जैसे दोनों स्थूल भुजाएँ थीं। 'निसापहाणे' मूंग आदि पीसने की शिला के आकार वाले विशाल और मोटे दोनों हाथ थे। 'निसालोढे' शिला की लोढी जैसी स्थूल और लंबी अँगुलियां थीं।

सूत्रम्—सिप्पिपुण्डगसंठिया से नक्खा, ण्हावियपसेवओ व्व उरंसि लंबंति दोऽवि तस्स थणया, पोट्टं अयकोट्ठओ व्व वट्टं, पाणकलंदसरिसा से नाही, सिक्कगसंठाणसंठिया से नेत्ते, किण्णपुडसंठाणसंठिया दोऽवि तस्स वसणा, जमलकोट्ठियासंठाणसंठिया दोऽवि तस्स ऊरू ।

अर्थ—सीपके संपुट जैसे ऊंचे और लंबे २ नख थे। नापित के अस्तुरा आदि रखने की थेली जैसे छाती में दोनों स्तन लटकते थे। लोहेकी कोठी जैसा गोल पेट था, पानी की कुंडी जैसी गहरी नाभि थी, छींका के आकारवाले नेत्र थे। तंदुल आदि कण भरने की गोण के जैसे दोनों वृषण थे। कोठियों के जोडे जैसे स्थूल और लंबी दोनों जांघ थीं।

पिशाच का वर्णन

टीकाः—तथा 'सिप्पिपुडं' ति शुक्तिसम्पुटस्यैकं दलं तत्संस्थानसंस्थितास्तस्य 'नक्ख' त्ति नखाः हस्ताङ्गुलिसम्बंधिनः, वाचनान्तरे तु इदमपरमधीयते—'अडयालगसंठिओ उरो तस्स रोमगुविलो' त्ति अत्र अडयालगत्ति—अट्टालकः प्राकारावयवः सम्मान्यते, तत्साधर्म्यं चोरसः क्षामत्वादिनेति, तथा 'ण्हावियपसेवओव्व' त्ति नापितप्रसेवक इव नखशोधकक्षुरादिभाजनमिव 'उरंसि' वक्षसि 'लम्बेते' प्रलम्बमानौ तिष्ठतः द्वावपि तस्य 'स्तनकौ' वक्षोजौ, तथा 'पोट्टं' जठरं अयःकोष्ठकवत्—लोहकुशूलवद्वृत्तं—वर्तुलं, तथा पानं—धान्यरससंस्कृतं जलं येन कुविन्दाश्चीवराणि पाययन्ति तस्य कलन्दं—कुण्डं पानकलन्दं तत्सदृशी गम्भीरतया 'से' तस्य नाभिः—जठरमध्यावयवः, वाचनान्तरेऽधीतं—'भग्गकडी विगयवंकपट्ठी असरिसा दोवि तस्स फिसगा' तत्र भग्नकटिर्विकृतवक्रपृष्ठः

फिसकौ–पुत्तौ, तथा 'शिक्ककं' दध्यादिभाजनानां दोरकमयमाकाशेऽवलम्बन लोकप्रसिद्धं तत्संस्थानसंस्थितं 'से' तस्य नेत्रं–मथिद-ण्डाकर्षणरज्जुः तद्वद्दीर्घतया तन्नेत्रं शेफ उच्यते, तथा 'किण्णपुडसंठाणसंठिय' त्ति सुरागोणकरूपतण्डुलकिण्वभृतगोणीपुटद्वयसंस्थानसंस्थिताविति सम्भाव्यते, द्वावपि तस्य वृषणौ–पोत्रकौ, तथा 'जमलकोट्ठिय' त्ति समतया व्यवस्थापितकुशूलिकाद्वयसंस्थान-संस्थितौ द्वावपि तस्य ऊरू–जङ्घे।

टीकार्थः—'सिप्पिपुडं' सीप के संपुट जैसे या किला के बुर्ज जैसे नख थे। 'ण्हावियपसेवओव्व' अस्तुरा आदि रखने की नाई की थेली के जैसे लटकते हुए दोनों स्तन थे 'पोट्टं' लोहे की कोठी के जैसे गोल पेट था। 'पानं' धोबी आदि का कपडे भीगोने की कुंडी जिसमें चावल का मांड आदि रखा जाता है, ऐसी कुंडी के आकार की गहरी नाभि थी। 'भग्गकडी विगयवंकपट्ठी' भग्नकटिवाले विरूप और टेढ़े दोनों नितंब थे। 'सिक्ककं' दहिं आदिके बरतनों को रखने के सींके के आकार वाले लटकता हुआ और रस्सी के जैसे लंबा लींग था। 'किण्णपुडसंठाणसंठियं' मदिरे की दो मटकी के आकार के या चावल आदि भरने की दो गोणी के आकार के लटकते हुए वृषण थे। 'जमलकोट्ठिय' धान्य भरने की कोठी के आकार के स्थूल दोनों उरू (जांघ) थीं।

सूत्रम्—अज्जुणगुट्ठं व तस्स जाणूइं कुडिलकुडिलाइं विगयबीभच्छदंसणाइं, जंघाओ कक्खडीओ लोमेहिं उवचियाओ, अहरीलोढसंठाणसंठिया दोऽवि तस्स पाया, अहरीलोढसंठाणसंठियाओ पाएसु अंगुलीओ सिप्पिपुडसंठिया से नक्खा लडहमडहजाणुए विगयभग्गभुग्गभुमए।

अर्थ—अर्जुन वृक्ष की गांठ जैसे बहुत कुटिल और महान् बीभित्स भयंकर ऐसी जानू थी। जंघा के उपर कुटिल और भयंकर कठोर ऐसी रोमावली थी। मसाला पीसने की शिला के जैसे पाँव थे। पीसने की लोढी के जैसी पाँव की अंगुलियां थीं। सीप के संपुट जैसे स्थुल नख थे। शिथिल बंधनवाले और स्थूल होने पर भी छोटे ऐसे बेडोल घूटने थे। बडी विकारवाली स्थूल और टेढ़ी भृकुटी थी।

टीका—तथा 'अज्जुणगुट्टं' त्ति अर्जुनः—तृणविशेषस्तस्य गुट्टं—स्तम्बस्तद्वत्तस्य जानुनी, अनन्तरोक्तोपमानस्य साधर्म्यं व्यनक्ति—कुटिलकुटिले—अतिवक्रे विकृतबीभत्सदर्शने, तथा 'जङ्घे' जानुनोरधोवर्तिन्यौ 'कक्खडीओ' त्ति कठिने, निर्मांसे इत्यर्थः, तथा रोमभिरुपचिते, तथा अधरी—पेषणशिला तत्संस्थानसंस्थितौ द्वावपि तस्य पादौ, तथा अधरीलोष्टः—शिलापुत्रकः तत्संस्थानसंस्थिताः पादयोरङ्गुल्यः, तथा शुक्तिपुटसंस्थिताः 'से' तस्य पादाङ्गुलिनखाः। केशाग्रान्नखाग्रं यावद्वर्णितं पिशाचरूपम्, अधुना सामान्येन तद्वर्णनायाह—'लडहमडहजाणुए' त्ति इह प्रस्तावे लडहशब्देन गन्त्र्याः पश्चाद्भागवर्ति तदुत्तराङ्गरक्षणार्थं यत्काष्ठं तदुच्यते, तच्च गन्त्र्यां श्लथबन्धनं भवति, एवं च श्लथसन्धिबन्धनत्वाल्लडह इव लडहे मडहे च स्थूलत्वाल्पदीर्घत्वाभ्यां जानुनी यस्य तत्तथा, विकृते—विकारवत्यौ भग्ने—विसंस्थुलतया भुग्ने—वक्रे भ्रुवौ यस्य पिशाचरूपस्य तत्तथा, इहान्यदपि विशेषणचतुष्टयं वाचनान्तरेऽधीयते—'मसिमूसगमहिसकालए' मषीमूषिकामहिषवत्कालकं 'भरियमेहवण्णे' जलभृतमेघवर्णं कालमेवेत्यर्थः, 'लम्बोट्ठे निग्गयदन्ते' प्रतीतमेव।

टीकार्थः—'अज्जुणगुट्ठ'-अर्जुनवृक्षके जैसे गांठवाले दोनों घुटने थे। घुटने के नीचेका भाग बहुत टेढा भयंकर रूपवाला मांस रहित रोम वाला था। 'अधरी'-दाल पीसनेकी शिलाके आकारके विशाल और स्थूल चरण थे 'अधरी लोष्ट'-शिलालोढीके आकारकी स्थूल और लंबी अंगुलियां थी। सीपके संपूट आकारवाले नख थे। इस प्रकार पिशाच रूपके केशसे लेकर पैरके नखाग्र भाग का वर्णन किया। प्रकारान्तरसे फिरभी कहते हैं—'लडहमडहजाणुए'-गाडीके पीछले भागमें नीचे लटकता हुआ काष्ठके जैसी स्थूल और छोटी जानु थी। विकरालवाली और टेढी, मसी, मुषक, भैंसाके जसी या कृष्णमेघ के जैसी काली भौं थी। लंब होठवाले और निकले हुए दांत थे।

सूत्रम्—अवदालियवयणविवरानिल्लालियग्गजीहे सरडकयमालियाए उंदुरमालापरिणद्धसुकयचिंधे नउलकयकण्णपूरं सप्पकयवेगच्छे।

अर्थ—मुखको फाडता हुआ और जीह्वा को बाहर निकालता हुआ, शरट (गिरगिट) की माला को धारण किया हुआ, ऊंदर की माला को पहना हुआ, न्यौला का कुंडल कान में लटकाया हुआ, साँप का दुपट्टा किया हुआ,

टीका—'अवदारिए' त्ति तथा 'अवदारितं' विवृतीकृतं वदनलक्षणं विवरं येन तत्तथा, तथा 'निर्लालिता' निष्काशिता अग्रजिह्वा-जिह्वाया अग्रभागो येन तत्तथा ततः कर्मधारयः, तथा शरटैः-कृकलासैः कृता मालिका-स्रक् तुण्डे वक्षसि वा येन तत्तथा, तथा उन्दुरमालया-मूषिकस्रजा परिणद्धं-परिगतं सुकृतं-सुष्ठु रचितं चिह्नं-स्वकीयलाञ्छनं येन तत्तथा तथा, नकुलाभ्यां-गभ्रुभ्यां कृते कर्णपूरे-आभरणविशेषौ येन तत्तथा, तथा सर्पाभ्यां कृतं वैकक्षम्-उत्तरासङ्गो येन तत्तथा, पाठान्तरेण 'मूसगकयभुंभलए विच्छुयकयवेगच्छे सप्पकयजण्णोवइए' तत्र भुंभलयेत्ति-शेखरः विच्छुयत्ति-वृश्चिकाः यज्ञोपवीतं-ब्राह्मणकण्ठसूत्रं, तथा

'अभिन्नमुहनयणनक्खवरवग्घचित्तकत्तिनियंसणे' अभिन्नाः-अविशीर्णा मुखनयननखा यस्यां सा तथा सा चासौ वरव्याघ्रस्य चित्रा-कर्बुरा कृत्तिश्च-चर्मेति कर्मधारयः, सा निवसनं -परिधानं यस्य तत्तथा, 'सरसरुहिरमंसावलित्तगत्ते' सरसाभ्यां रुधिरमांसाभ्यामवलिप्तं गात्रं यस्य तत्तथा।

टीकार्थ—गुफाके जैसे फटा हुआ मुख और जीभका अग्र भाग निकला हुआ था। मस्तक पर और छाती पर गिरगिट की माला धारण की थी। ऊंदर की माला अपने चिह्नरूपसे पहरी हुई थी। कानमें न्यौलाही आभूषणरूपसे पहरा हुआ था। सर्प का उत्तरासंग रखाथा। चूहे का शिरोभूषण, बीछू का अंगुठीया और सर्प की यज्ञोपवित धारण किया हुआ था। 'अभिन्नमुहनयणनक्खवरवग्घचित्तकत्तिनियंसणं' मुख आंख और नखवाले व्याघ्रचर्म को पहरा हुआ था। 'सरसरुहिरमंसावलित्तगत्ते' रुधिर और मांससे लिप्त शरीर था।

सूत्रम्—अप्फोडंते अभिगज्जंते भीममुक्कट्टहासे नाणाविहपंचवण्णेहिं लोमेहिं उवचिए एगं महं नीलुप्पलगवलगुलियअयसिकुसुमप्पगासं असिं खुरधारं गहाय जेणेव पोसहसाला जेणेव कामदेवे समणोवासए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे कामदेवं समणोवासयं एवं वयासी।

अर्थ—इस प्रकार भयंकर रूप बना करके, करस्फोट (ताल) करता हुआ, मेघ के समान गर्जारव करता हुआ, भयंकर अट्टहास करता हुआ, अनेकप्रकार के पंचवर्ण के रोमसे पुष्ट बना हुआ, एक बडी नीलकमल के वर्ण

वाली, भैंसे के सिंग के वर्णवाली, नील के समान, और नील अतसी के पुष्प समान तीक्ष्ण धारवाली तलवार हाथमें पकडकर शीघ्रही जहां पौषधशाला में कामदेव श्रमणोपासक धर्मध्यान कर रहा है वहां आया, और प्रचंड क्रोधायमान होकर कामदेव श्रमणोपासक को इस प्रकार कहने लगा।

टीका—'आस्फोटयन्' करास्फोटं कुर्वन् 'अभिगर्जन्' घनध्वनिं मुञ्चन् भीमो मुक्तः—कृतोऽट्टट्टहासो—हासविशेषो येन तत्तथा, नानाविधपञ्चवर्णैं रोमभिरुपचितं एकं महन्नीलोत्पलगवलगुलिकातसीकुसुमप्रकाशमसिं क्षुरधारं गृहीत्वा यत्र पौषधशाला यत्र कामदेवः श्रमणोपासकस्तत्रोपागच्छति स्मेति, इह गवलं—महिषशृङ्गं गुलिका—नीली अतसी—धान्यविशेषः असिः—खङ्गः क्षुरस्येव धारा यस्यातिच्छेदकत्वादसौ क्षुरधारः, 'आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चण्डिक्किए मिसीमिसीयमाणे' त्ति एकार्थाः शब्दाः कोपातिशयप्रदर्शनार्थाः।

कामदेव को देवकृत उपसर्ग

टीकार्थ—इस प्रकार भयंकर रूप धारण करके करास्फोट करता हुआ, गर्जना करता हुआ, भयंकर अट्टट्टहास करता हुआ, अनेक प्रकारके पंचवर्ण के रोमवाली नीलकमल, भैंसके सींग, नील और अतसीके फूल जैसी काले रंगकी तथा अस्तुरा के धार जैसी तीक्ष्ण धार वाली ऐसी एक बडी तलवारको हाथमें धारण करके पौषधशालामें जहां कामदेव श्रावक रहता था वहां आया और बडा क्रोधित होकर कहने लगा।

सूत्र—हं भो कामदेवा ! समणोवासया अप्पत्थियपत्थिया दुरंतपंतलक्खणा हीणपुण्णचाउद्दसिया हिरिसिरिधिइकित्तिपरिवज्जिया ! धम्मकामया पुण्णकामया सग्गकामया मोक्खकामया धम्मकंखि-

कामदेव को देवकृत उपसर्ग

या पुण्णकंखिया सग्गकंखिया मोक्खकंखिया धम्मपिवासिया पुण्णपिवासिया सग्गपिवासिया मोक्खपिवासिया ! नो खलु कप्पइ तव देवाणुप्पिया ! जं सीलाइं वयाइं वेरमणाइं पच्चक्खाणाइं पोसहोववासाइं चालित्तए वा खोभित्तए वा खंडित्तए वा भंजित्तए वा उज्झित्तए वा परिचइत्तए वा, तं जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं जाव पोसहोववासाइं न छड्डेसि न भंजेसि तो ते अहं अज्ज इमेणं नीलुप्पल जाव असिणा खंडाखंडिं करेमि, जहा णं तुमं देवाणुप्पिया ! अट्टदुहट्टवसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि, तए णं से कामदेवे समणोवासए तेणं देवेणं पिसायरूवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए अतत्थे अणुव्विग्गे अक्खुभिए अचलिए असंभंते तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए विहरइ ॥ सूत्रं १९ ॥

अर्थ—हे कामदेव श्रमणोपासक ! अप्रार्थित के प्रार्थी अर्थात् मृत्यु को चाहनेवाला ! दुरंतप्रांतलक्षणवाला (बहुत नीच लक्षणवाला) ! पुण्यहीन ! कृष्ण चतुर्दशी का जन्मा हुआ ! ह्री (लज्जा) श्री (लक्ष्मी) धृति (धैर्य) और कीर्त्ति से रहित ! धर्म को चाहनेवाला ! पुण्य को चाहनेवाला ! स्वर्ग को चाहनेवाला ! मोक्ष के इच्छुक ! धर्म की आकांक्षावाला ! पुण्य की आकांक्षावाला ! स्वर्ग की आकांक्षावाला ! मोक्षकी आकांक्षावाला ! धर्म के

पीपासु ! पुण्य के पीपासु ! स्वर्ग के पीपासु ! और मोक्षके पीपासु ! ऐसे हे देवानुप्रिय ! तुझे शीलव्रत विरमणव्रत प्रत्याख्यान पौषधोपवासव्रत से चलायमान होना, क्षुभित होना, खंडित होना, भंग होना, फेंकना, त्याग होना कल्पता नहीं है । परंतु तूँ आज तेरे शीलव्रत पौषधोपवास व्रत को न छोडेगा, न तोडेगा, तो मैं आज अभी ही यह नीलोत्पल जैसी तलवार से तेरा टुकडे २ कर डालूंगा, जिसे हे देवानुप्रिय ! तूँ दुःखी होकर आर्त्तध्यान से अकाल में मर जायगा । इस प्रकार उस मिथ्यात्वी पिशाचरूपवाले देव का वचन सुनकर कामदेव श्रमणोपासक लेशमात्र भी भय पाया नहीं, डरा नहीं, खेदित हुआ नहीं, क्षुभित हुआ नहीं, चलायमान हुआ नहीं, परंतु मौन रहकर धर्मध्यान करता हुआ रहने लगा ॥ १९ ॥

टीका—' अप्पत्थियपत्थिया ' अप्रार्थितप्रार्थक ! दुरन्तानि–दुष्टपर्यवसानानि प्रान्तानि–असुन्दराणि लक्षणानि यस्य स तथा ' हीणपुण्णचाउद्दसिय ' त्ति हीना–असम्पूर्णा पुण्या चतुर्दशीतिथिर्जन्मकाले यस्य स हीनपुण्यचतुर्दशीकः, तदामन्त्रणं, श्रीह्रीधृतिकीर्त्तिवर्जितेति व्यक्तं, तथा धर्मं–श्रुतचारित्रलक्षणं कामयते–अभिलषति यः स धर्मकामः, तस्यामन्त्रणं हे धम्मकामया !, एवं सर्वपदानि, नवरं पुण्यं–शुभप्रकृतिरूपं कर्म स्वर्गः–तत्फलं मोक्षो–धर्मफलं, काङ्क्षा–अभिलाषातिरेकः पिपासा–काङ्क्षातिरेकः, एवमेतैः पदैरुत्तरोत्तरोऽभिलाषप्रकर्ष एवोक्तः, ' नो खलु ' इत्यादि न खलु–नैव कल्पते शीलादीनि चलयितुमिति वस्तुस्थितिः, केवलं यदि त्वं तान्यद्य न चलयसि ततोऽहं त्वां खण्डाखण्डि करोमीति वाक्यार्थः, तत्र शीलानि–अणुव्रतानि, व्रतानि–दिग्व्रतादीनि, विरमणानि–रागादिवि-

रतयः, प्रत्याख्यानानि–नमस्कारसहितादीनि, पौषधोपवासान् आहारादिभेदेन चतुर्विधान्, 'चालित्तए' भङ्गकान्तरकरणतः 'क्षोभयितुं' एतत्पालनविषयं क्षोभं कर्तुं, खण्डयितुं देशतो भङ्क्तुं सर्वतः, 'उज्झितुं' सर्वस्या देशविरतेस्त्यागतः, परित्यक्तुं सम्यक्त्वस्यापि त्यागादिति, 'अट्टदुहट्टवसट्टे' त्ति आर्त्तस्य–ध्यानविशेषस्य यो दुहट्टत्ति–दुर्घटो दुःस्थगो दुर्निरोधो वशः–पारतन्त्र्यं तेन ऋतः–पीडितः आर्तदुर्घटवशार्तः, अथवा आर्तेन दुःखार्तः आर्तदुःखार्तः, तथा वशेन–विषयपारतन्त्र्येण ऋतः–परिगतो वशार्तः, ततः कर्मधारय इति ॥ अभीते इत्यादीन्येकार्थान्यभयप्रकर्षप्रदर्शनार्थानि (सू० १९)

टीकार्थ—'अप्पत्थियपत्थिया' जिसको कोई नहीं चाहना करे उसको चाहनेवाला ! दुष्ट लक्षणवाला ! 'हीणपुण्णचाउद्दसिय' कृष्ण चतुर्दशी का जन्मा हुआ हीन पुन्यवाला ! श्री ही धृति और कीर्त्ति से रहित ! ज्ञान चारित्र लक्षणवाले धर्म को चाहनेवाला ! स्वर्ग और मोक्ष को चाहने वाला ! शील आदि व्रतों से चलायमान होना उचित नहीं है लेकिन तुम शील आदि व्रतों से चलायमान न होगा अर्थात् अणुव्रतों का दिग्व्रतों का शिक्षा व्रतों का प्रत्याख्यानका चार प्रकारके पौषधोपवास का देशसे या सर्वसे भंग न करेगा तो इस तलवारसे तेरे शरीरका टूकडे २ कर देउंगा, जिसे तूँ आर्त्तध्यान करता हुआ दुःखी होकर मर जायगा ॥ १९ ॥

कामदेव को देवकृत उपसर्ग

सूत्रम्—तए णं से देवे पिसायरूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं जाव धम्मज्झाणोवगयं विहरमाणं पासइ २ त्ता दोच्चंपि तच्चंपि कामदेवं एवं वयासी–हं भो कामदेवा ! समणोवासया अपत्थियपत्थिया जइ णं तुमं अज्ज जाव ववरोविज्जसि, तए णं से कामदेवे समणोवासये तेणं देवेणं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्ते समाणे

अभीए जाव धम्मज्झाणोवगए विहरइ । तए णं से देवे पिसायरूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं जाव विहरमाणं पासइ २ त्ता आसुरत्ते तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु कामदेवं समणोवासयं नीलुप्पल जाव असिणा खंडाखंडिं करेइ । तए णं से कामदेवे समणोवासए तं उज्जलं जाव दुरहियासं वेयणं सम्मं सहइ जाव अहियासेइ ॥ सू० २० ॥

कामदेव को देवकृत उपसर्ग

अर्थ—तब पिशाचरूप धारक देव कामदेव श्रमणोपासकको निडर होकर धर्मध्यान करता हुआ देख कर दो तीन वार उसको कहने लगा—'हे कामदेव श्रमणोपासक अप्रार्थित के प्रार्थी ! इसी तलवार से तेरा टूकडे २ कर देउंगा । इस प्रकार देवने क्रोधित होकर दो तीन वार कहने पर भी कामदेव श्रमणोपासक चलायमान नहीं हुआ । तब पिशाचरूप धारक देव कामदेव श्रमणोपासक को निर्भय जान कर, शीघ्रही बहुत क्रोधित होकर और ललाट में त्रिवली भृकुटी चढाकर, नीलोत्पल जैसी तीक्ष्ण तलवार से टूकडे २ करडाला अर्थात् बहुत वार उसके शरीर पर प्रहार किये, जिससे कामदेव श्रमणोपासक के शरीर में असह्य वेदना हुई, उसको समभाव से सहन कर ली, परंतु अपने धर्मध्यान से चलायमान नहीं हुआ ॥ २० ॥

टीकाः—'तिवलियं' ति त्रिवलिकां भ्रूकुटिं–दृष्टिरचनाविशेषं ललाटे 'संहृत्य' विधायेति चलयितुमन्यथाकर्तुं, चलनं च द्विधासंशयद्वारेण विपर्ययद्वारेण च, तत्र क्षोभयितुमिति संशयतो, विपरिणमयितुमिति च विपर्ययतः ॥ (सू. २०)

टीकार्थः—' तिवलियं ' ललाट में तीन रेखा युक्त भृकुटि को चढाया हुआ था। चलायमान दो प्रकार से होता है—कार्य में शंका आदि लाना यह संशय से और दूसरा विपरीत परिणाम होजाना यह विपर्यय से चलायमान होता है ॥ २० ॥

सूत्रम्—तए णं से देवे पिसायरूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं जाव विहरमाणं पासइ २ त्ता जाहे नो संचाएइ कामदेवं समणोवासयं निग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा ताहे संते तंते परितंते सणियं सणियं पच्चोसक्कइ २ त्ता पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता दिव्वं पिसायरूवं विप्पजहइ २ त्ता एगं महं दिव्वं हत्थिरूवं विउव्वइ सत्तंगपइट्ठियं सम्मं संठियं सुजायं पुरओ उदग्गं पिट्ठओ वराहं अयाकुच्छिं अलंबकुच्छिं पलंबलंबोदराधरकरं अब्भुग्गयमउलमल्लियाविमलधवलदंतं कंचणकोसीपविट्ठदंतं आणामियचावललियसंविल्लियग्गसोण्डं कुम्मपडिपुण्णचलणं वीसइनक्खं अल्लीणपमाणजुत्तपुच्छं मत्तं मेहमिव गुलगुलेंतं मणपवणजइणवेगं दिव्वं हत्थिरूवं विउव्वइ २ त्ता जेणेव पोसहसाला जेणेव कामदेवे समणोवासए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता कामदेवं समणोवासयं एवं वयासी।

कामदेव को देवकृत उपसर्ग

अर्थः—जब पिशाचरूप धारक देवने कामदेव श्रमणोपासक को निर्भय होकर धर्मध्यान करता हुआ देखा कि—कामदेव श्रमणोपासक निग्रन्थ प्रवचन से चलायमान नहीं हुआ, क्षोभित नहीं हुआ, परिणाम में परिवर्तन

भी न हुआ, तब बहुत थक कर, शनैः २ पीछे हटकर पौषधशाला से बाहर निकला और पिशाचरूप बदल कर के एक बडा दिव्य हाथी का रूप लिया। जिसके सातों ही अंग (चार पैर, सूंड, पूंछ और इन्द्रिय) भूमि पर लगे हुए थे, सुन्दरसांगोपांग वाला था, आगे अच्छी तरह ऊंचा मस्तक वाला, पृष्ठभाग सूअर के समान पुष्ट वाला, बकरी के जैसी अलंब बलवान् कुक्षीवाला, गणपति के जैसे लंबे होंठ और लम्बी सूंड वाला, नवीन विकसित मल्लिका (बेला) की कली के जैसे स्वच्छ सफेद् और सोने की चूडी पहने हुए दांत वाला, कुछ नमाये हुए धनुष्य के जैसे चपल सूंड के अग्रभाग को संकोचता हुआ, कछुआ के जैसे प्रतिपूर्ण चरण वाला, वीस नख वाला, आलीन प्रमाण पूंछवाला, मदोमत्त मेघ अर्थात् श्रावण के मेघ के समान भयंकर गुलगुलंत अवाज करता हुआ, मन और पवन के जैसी शीघ्र गतिवाला, इस प्रकार के दिव्य हाथी का रूप बनाकर जहां पौषधशाला में कामदेव श्रमणोपासक धर्मध्यान कर रहा है वहां आया और कामदेव श्रमणोपासक को कहने लगा।

टीकाः—श्रान्तादयः समानार्थाः, ' सत्तंगपइट्ठियं ' ति सप्ताङ्गानि—चत्वारः पादाः करः पुच्छं शिश्नं चेति एतानि प्रतिष्ठितानि—भूमौ लग्नानि यस्य तत्तथा, ' सम्मं ' मांसोपचयात्संस्थितं गजलक्षणोपेतसकलांगोपाङ्गत्वात्सुजातमिव सुजातं पूर्णदिनजातं ' पुरओ ' अग्रत उदग्रं—उच्चं, समुच्छ्रितशिर इत्यर्थः, 'पृष्ठतः' पृष्ठदेशे वराहः—शूकरः स इव वराहः, प्राकृतत्वान्नपुंसकलिङ्गता, अजाया इव कुक्षिर्यस्य तदजाकुक्षि, अलम्बकुक्षि बलवत्त्वेन प्रलम्बो—दीर्घो लम्बोदरस्येव—गणपतेरिव अधरः—ओष्ठः करश्च—हस्तो यस्य

तत्प्रलम्बलम्बोदराधरकरं, अभ्युद्गतमुकुला–जातकुड्मला या मल्लिका–विचकिलस्तद्वत् विमलधवलौ दन्तौ यस्य अथवा प्राकृतत्वान्मल्लिकामुकुलवदभ्युद्गतौ उन्नतौ विमलधवलौ च दन्तौ यस्य तदभ्युद्गतमुकुलमल्लिकाविमलधवलदन्तं, काञ्चनकोशीप्रविष्टदन्तं, कोशी–प्रतिमा आनामितम्–ईषन्नामितं यच्चापं–धनुस्तद्वद्या ललिता च–विलासवती संवेल्लिता च वेल्लन्ती सङ्कोचिता वा अग्रशुण्डा–शुण्डाग्रं यस्य तत्तथा, कूर्मवत्कूर्माकाराः प्रतिपूर्णाश्चरणा यस्य तत्तथा, विंशतिनखं, आलीनप्रमाणयुक्तपुच्छमिति कठ्यम् ॥

टीकार्थ —भ्रान्त आदि शब्द समान अर्थ वाचक हैं। ' सत्तंगपइट्ठियं ' चार चरण, एक सूंड, एक पूछ और एक लिंग ये सात अंग भूमि पर लगे हुए थे। ' सम्मं ' यथा स्थान में मांस से पुष्ट और समस्त हाथी के लक्षण युक्त प्रशस्त अंगोपांग थे, आगे का कुंभस्थल ऊंचा था, पृष्ठ भाग सूअर के पीठ जैसा था, बकरी के कुक्षी के जैसी छोटी कुक्षी थी, परंतु बलवान और पुष्ट थी, गणपति के लंबे होंठ के जैसी लंबी सूंड थी, मल्लिका पुष्प की कली के जैसी उन्नत और स्वच्छ दोनों दांत थे, दांतों में सुवर्ण की चूडियां पहरी थी, कुछ नमाये हुए धनुष की तरह चपल और विलासयुक्त सूंड का अग्रभाग था, कछुए के आकार वाले चरण थे, वीस नख थे और प्रमाणयुक्त पूछ था ॥ २१ ॥

सूत्रम्—हं भो कामदेवा ! समणोवासया तहेव भणइ जाव न भंजेसि तो ते अज्ज अहं सोण्डाए गिण्हामि २ त्ता पोसहसालाओ नीणेमि २ त्ता उड्ढं वेहासं उव्विहामि २ त्ता तिक्खेहिं दंतमूसलेहिं पडिच्छामि २ त्ता अहे धरणितलंसि तिक्खुत्तो पाएसु लोलेमि जहा णं तुमं अट्टदुहट्टवसट्टे अकाले चेव

जीवियाओ ववरोविज्जसि, तए णं से कामदेवे समणोवासए तेणं देवेणं हत्थिरूवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव विहरइ, तए णं से देवे हत्थिरूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं जाव विहरमाणं पासइ २ त्ता दोच्चंपि तच्चंपि कामदेवं समणोवासयं एवं वयासी—हं भो कामदेवा ! तहेव जाव सोऽवि विहरइ, तए णं से देवे हत्थिरूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं जाव विहरमाणं पासइ २ त्ता आसुरुत्ते ४ कामदेवं समणोवासयं सोण्डाए गिण्हेइ २ त्ता उड्ढं वेहासं उव्विहइ २ त्ता तिक्खेहिं दन्तमूसलेहिं पडिच्छइ २ त्ता अहे धरणितलंसि तिक्खुत्तो पाएसु लोलेइ, तए णं से कामदेवे समणोवासए तं उज्जलं जाव अहियासेइ ॥ सूत्रं २१ ॥

अर्थ— हे कामदेव श्रमणोपासक ! यदि तूँ आज तेरे पौषधोपवासादिव्रतोंका भंग न करेगा तो अभी मैं सूँड से पकड कर, पौषधशाला से बाहर लेजाकर, ऊंचे आकाश में फेंक देउंगा और नीचे गिरते समय मेरे तीक्ष्ण दांतों के ऊपर झेलकर के नीचे भूमि पर गिरा देउंगा, तथा तीनवार पैरसे कुचल देउंगा, जिससे तूँ आर्त्तध्यान से दुःखी होकर अकाल में ही मर जायगा । इस प्रकार हस्तिरूप देवका वचन सुनकर कामदेव श्रमणोपासक लेशमात्र भी डरा नहीं, चलायमान हुआ नहीं, किन्तु धर्मध्यान में स्थिर रहा । तब हस्तिरूप धारक देवने कामदेव श्रमणोपासक को निर्भय देख कर दो तीन वार उक्त वचन कहे, तो भी कामदेव श्रमणोपासक स्थिर चित्त होकर धर्माराधन करता

रहा। तब हस्तिरूप धारक देव प्रचंड क्रोधायमान होकर कामदेव श्रमणोपासक को सूँड से पकडकर पौषधशाला से बाहर लाकरके ऊंचे आकाश में फेंक दिया और गिरते समय अपने तीक्ष्ण दांतों के ऊपर झेलकर भूमि पर पटक दिया और पैरसे तीन वार कुचला। जिससे कामदेव श्रमणोपासक को असह्य वेदना हुइ। उसको समभावसे सहन करली, परंतु धर्मध्यान से लेशमात्र भी चलायमान हुआ नहीं ॥ २१ ॥

कामदेव के देवकृत उपसर्ग

सूत्रम्—तए णं से देवे हत्थिरूवे कामदेवं समणोवासयं जाहे नो संचाएइ जाव सणियं सणियं पच्चोसक्कइ २ त्ता पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता दिव्वं हत्थिरूवं विप्पजहइ २ त्ता एवं महं दिव्वं सप्परूवं विउव्वइ उग्गविसं चंडविसं घोरविसं महाकायं मसीमूसाकालगं नयणविसरोसपुण्णं अंजणपुंज-निगरप्पगासं रत्तच्छं लोहियलोयणं जमलजुयलचंचलजीहं धरणीयलवेणिभूयं उक्कडफुडकुडिलजडिलकक्कस-वियडफडाडोवकरणदच्छं लोहागरधम्ममाणधमधमेन्तघोसं अणागलियतिव्वचंडरोसं सप्परूवं विउव्वइ २ त्ता जेणेव पोसहसाला जेणेव कामदेवे समणोवासए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता कामदेवं समणोवासयं एवं वयासी।

कामदेव को देवकृत उपसर्ग

अर्थ—हस्तिरूप धारक देव कामदेव श्रमणोपासक को किंचिन्मात्र भी चलायमान नहीं करसका, जिससे अपने आप हारकर, शनैः २ पीछे हटकर पौषधशाला से बाहर आया और एक बड़े सर्पका रूप धारण किया। वह दिव्य साँप असह्य उग्र विषवाला, अल्प समय में शरीर में व्यापक हो जाय ऐसे चंड (रौद्र) विषवाला, शीघ्रही मृत्युकारक ऐसे घोर विषवाला, बड़े अजगर जैसे शरीरवाला, मसी और मूस (धातुगालने का पात्र) के जैसे कृष्ण वर्णवाला, सामने देखने से ही प्राणी का विनाश हो जाय ऐसा दृष्टिविष वाला, महान रोशसे भरा हुआ, काजल के बड़े ढेरके जैसे प्रकाशवाला, क्रोधपूर्ण लाल नेत्रवाला, बराबर दोनों चपल जिह्वा वाला, कृष्णवर्ण का बड़ा लंबा शरीर होनेसे भूमितल की वेणी समान दिखने वाला, अन्यको पराभव करने के लिये उत्कट स्फुट अतिकुटिल जटिल निष्ठुर और विशाल ऐसा बड़ा फणाटोप करने में कुशल, लुहार की धौंकनी के जैसे धमधमायमान फुत्कार शब्द करता हुआ, अनर्गल बड़े प्रचंड रोशवाला था। ऐसे भयंकर सर्पका रूप बनाकर पौषधशाला में जहां कामदेव श्रमणोपासक धर्माराधन कर रहा था, वहां आया और कामदेव श्रमणोपासक को इस प्रकार कहने लगा।

टीका—'उग्गविसं' इत्यादीनि सर्परूपविशेषणानि कचिद्यावच्छब्दोपात्तानि क्वचित्साक्षादुक्तानि दृश्यन्ते, तत्र उग्रविषं—दुरधिसह्यविषं, चण्डविषं अल्पकालेनैव दष्टशरीरव्यापकविषत्वात्, घोरविषं मारकत्वात्, महाकायं—महाशरीरं, मषीमूषाकालकं, नयनविषेण—दृष्टिविषेण रोषेण च पूर्णं नयनविषरोषपूर्णं, अञ्जनपुञ्जानां—कज्जलोत्कराणां यो निकरः—समूहस्तद्वत्प्रकाशो यस्य तदञ्जनपुञ्जनि-

करप्रकाशं, रक्ताक्षं लोहितलोचनं, यमलयोः-समस्थयोर्युगलं-द्वयं चञ्चलचलन्त्योः-अत्यर्थं चपलयोर्जिह्वयोर्यस्य तद्यमलयुगलचञ्चलजिह्वं धरणीतलस्य वेणीव-केशबन्धविशेष इव कृष्णत्वदीर्घत्वाभ्यामिति धरणीतलवेणिभूतम् उत्कटोऽनभिभवनीयत्वात् स्फुटो-व्यक्तो भासुरतया दृश्यत्वात् कुटिलो वक्रत्वात् जटिलः केशसटायोगात् कर्कशो-निष्ठुरो नम्रताया अभावात् विकटो-विस्तीर्णो यः स्फटाटोपः-फणाडम्बरं तत्करणे दक्षं उत्कटस्फुटकुटिलजटिलकर्कशविकटस्फटाटोपकरणदक्षं, तथा 'लोहागरधम्ममाणधमधमेन्तघोसं' लोहाकरस्येव ध्मायमानस्य-भस्त्रावातेनोद्दीप्यमानस्य धमधमायमानस्य-धमधमेत्येवंशब्दायमानस्य घोषः-शब्दो यस्य तत्तथा, इह च विशेष्यस्य पूर्वनिपातः प्राकृतत्वादिति, 'अणागलियतिव्वपयण्डरोसं' अनाकलितः-अप्रमितोऽनर्गलितो वा निरोद्धुमशक्यस्तीव्रप्रचण्डः-अतिप्रकृष्टो रोषो यस्य तत्तथा ।

टीकार्थ—'उग्गविसं' सर्परूप धारकदेव सहन न होसके ऐसे तीक्ष्ण विषवाला, 'चंडविसं' थोडे समय में ही शरीर में व्यापक होजाय ऐसे विषवाला, 'घोरविसं' मृत्युकारक विषवाला, 'महाकायं' बडे शरीरवाला, मसी और मूस के जैसे कृष्णवर्णवाला, दृष्टि में भी विषसे भरे हुए परिपूर्ण रोषवाला, काजल के ढेर के जैसे चमकते हुए शरीरवाला, लाल नेत्रवाला, अत्यंत चपल ऐसी दो जिह्वावाला, और कृष्णवर्णवाला था । अत्यंत लंबा और कृष्णवर्णवाला होनेसे भूमितल की वेणी के सदृश आलूम होता था । किसी से पराभव न होनेवाला होने से उत्कट था । कृष्ण कान्तिवाला होने से दर्शनीय था, टेढी गतिवाला होने से कुटिल था, फणा के ऊपर केस की सटा होने से जटिल था, नम्र न होने से निष्ठुर था, विस्तारवाले भयंकर फणा का आडंबर करने में दक्ष होने से विकट था, धौंकनी से भट्ठी में रहे हुए लोहे को धौंकने से जिस प्रकार धम धम शब्द निकलता है, इस प्रकार फुत्कार शब्द करता था, रोकने में असमर्थ ऐसे अत्यंत क्रोधवाला था ।

कामदेव को देवकृत उपसर्ग

सूत्रम्—हं भो कामदेवा ! समणोवासया जाव न भंजेसि तो ते अज्जेव अहं सरसरस्स कायं दूरुहामि २ त्ता पच्छिमेणं भाएणं तिक्खुत्तो गीवं वेढेमि २ त्ता तिक्खाहिं विसपरिगयाहिं दाढाहिं उरंसि चेव निकुट्टेमि जहाणं तुमं अट्टदुहट्टवसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि । तए णं से कामदेवे समणोवासए तेणं देवेणं सप्परूवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव विहरइ । सोऽवि दोच्चंपि तच्चंपि भणइ, कामदेवोऽवि जाव विहरइ । तए णं से देवे सप्परूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं जाव पासइ २ त्ता आसुरुत्ते ४ कामदेवस्स समणोवासयस्स सरसरस्स कायं दूरूहइ २ त्ता पच्छिमभायेणं तिक्खुत्तो गीवं वेढेइ २ त्ता तिक्खाहिं विसपरिगयाहिं दाढाहिं उरंसि चेव निकुट्टेइ । तए णं से कामदेवे समणोवासए तं उज्जलं जाव अहियासेइ ॥ सूत्रं २२ ॥

अर्थ—हे कामदेव श्रमणोपासक ! मृत्यु को चाहने वाले ! यदि तू तेरे व्रत नियम का भंग न करेगा तो मैं अभी सरसराहट करता हुआ तेरे शरीर पर चढ जाउंगा और पच्छिम भाग पूंछ से तेरी गर्दन को गाढी तीन आंट लपेटूंगा, तथा तीक्ष्ण विषपूर्ण दाढाओं से तेरे हृदय पर काटूंगा, जिसे तू आर्त्तध्यान करता हुआ अकाल में ही मर जावेगा । ऐसे सर्प रूप धारक देव का वचन सुन कर भी कामदेव श्रमणोपासक लेशमात्र भी डरा नहीं,

किन्तु निर्भय होकर धर्मध्यान करता हुआ रहा। सर्परूपधारक देवने दो तीन वार उक्त वचन कहे लेकिन कामदेव श्रमणोपासक चलायमान हुआ नहीं। तब सर्परूपधारक देव कामदेव श्रमणोपासक को निर्भय देखकर, शीघ्र ही अत्यंत क्रोधित होकर उसके शरीर पर सरसराट करता हुआ चढ गया और गर्दन को गाढी तीन आंटे देकर तीक्ष्ण विषपूर्ण दाढों से उसके हृदय में काटा। जिससे कामदेव श्रमणोपासक को असह्य वेदना हुई, उसको समभाव से सहन करली, परन्तु धर्मध्यान से चलायमान नहीं हुआ ॥ २२ ॥

कामदेव को देवकृत उपसर्ग

टीका:—' सरसरस्स '–त्ति लौकिकानुकरणभाषा, ' पच्छिमेणं भाएणं ' ति पुच्छेनेत्यर्थः, ' निकुट्टेमि ' त्ति निकुट्टयामि प्रहण्मि ' उज्जलं ' ति उज्ज्वलां विपक्षलेशेनाप्यकलङ्कितां, विपुलां शरीरव्यापकत्वात्, कर्कशां कर्कशद्रव्यमिवानिष्टां, प्रगाढां–प्रकर्षवतीं चण्डां–रौद्रां दुःखां–दुःखरूपां, न सुखामित्यर्थः, किमुक्तं भवति–' दुरहियासं ' ति दुरधिसह्यामिति (सू० २२)

टीकार्थ—इस प्रकार के भयंकर सर्प का रूप बनाकर सर सर करता हुआ कामदेव श्रमणोपासक के पास आया शरीर पर चढा और पश्चिम भाग से पूछ में रहे हुए नखसे कंठ को दबाया और विषपूर्ण दाढों से छाती में प्रहार किया, जिससे इतनी तीव्रवेदना हुई कि जिस में सुख का लेशमात्र भी न था, शरीर में व्यापक होनेवाली, कठोर पदार्थ की तरह अनिष्ट, बहुत भयंकर और अत्यंत दुःखरूप ऐसी असह्य वेदना को कामदेव श्रावक ने निर्भय होकर सहन की ॥ २२ ॥

सूत्रम्—तए णं से देवे सप्परूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं जाव पासइ २ त्ता जाहे नो संचाएइ कामदेवं समणोवासयं निग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा

ताहे संते ३ सणियं सणियं पच्चोसक्कइ २ त्ता पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता दिव्वं सप्परूवं विप्पजहइ २ त्ता एगं महं दिव्वं देवरूवं विउव्वइ, हारविराइयवच्छं जाव दस दिसाओ उज्जोवेमाणं पभासेमाणं पासाईयं दरिसणिज्जं अभिरूवं पडिरूवं दिव्वं देवरूवं विउव्वइ २ त्ता कामदेवस्स समणोवासयस्स पोसहसालं अणुप्पविसइ २ त्ता अंतलिक्खपडिवन्ने सखिंखिणियाइं पंचवण्णाइं वत्थाइं पवरपरिहिए कामदेवं समणोवासयं एवं वयासी ।

कामदेव के पास देव आया

अर्थ—अब सर्परूपधारक देव कामदेव श्रावक को निर्भय होकर, धर्मध्यान करता हुआ देखकर विचारने लगा—'यह कामदेव श्रावक श्रमण निर्ग्रंथ प्रवचन से चलायमान हुआ नहीं, क्षुभित हुआ नहीं और विपरीत परिणामी भी नहीं हुआ'। तब थक कर शनैः २ पीछे हटकर पौषधशाला से बाहर निकला और दिव्य सर्प का रूप छोडकर एक बडा दिव्य देवरूप बनाया। पुष्पहारों से शोभायमान हृदय वाला यह देव दशों दिशाओं में प्रकाश करता हुआ, प्रभा को फैलाता हुआ, सबको आनंदित करने वाला, दर्शन के योग्य अभिरूप प्रतिरूप (कामदेव के सदृश रूपवाला) मनोहर ऐसा दिव्य देवरूप बनाकर कामदेव श्रमणोपासक की पौषधशाला में प्रवेश किया। भूमि से अधर रहा हुआ, छोटी २ घुघुरियों का मधुर शब्द करता हुआ और पंच वर्ण के वस्त्रों को पहना

देव का स्वरूप वर्णन

हुआ यह देव कामदेव श्रमणोपासक को इस प्रकार कहने लगा ।

टीकाः—'हारविराइयवच्छ' मित्यादौ यावत्करणादीदं दृश्यं— 'कडगतुडियथम्भियभुयं अङ्गदकुण्डलमट्ठगण्डतलकण्णपीढधारं विचित्तहत्थाभरणं विचित्तमालामउलिं कल्लाणगपवरवत्थपरिहियं कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणधरं भासुरबोन्दिं पलम्बवणमालधरं दिव्वेणं वण्णेणं दिव्वेणं गन्धेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं सङ्घयणेणं दिव्वेणं संठाणेणं दिव्वाए इड्ढीए दिव्वाए जुईए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेसाए' त्ति कण्ठ्यं नवरं कटकानि—कङ्कणविशेषाः तुटितानि—बाहुरक्षकास्ताभिरतिबहुत्वात्स्तंभितौ—स्तब्धीकृतौ भुजौ यस्य तत्तथा, अङ्गदे च—केयूरे कुण्डले च प्रतीते, मृतष्टगण्डले—घृष्टगण्डे ये कर्णपीठाभिधाने कर्णाभरणे ते च धारयति यत्तत्तथा, तथा विचित्रमालाप्रधानो मौलिः—मुकुटं मस्तकं वा यस्य तत्तथा, कल्याणकम्—अनुपहतं प्रवरं वस्त्रं परिहितं येन तत्तथा, कल्याणकानि—प्रवराणि—माल्यानि कुसुमानि अनुलेपिनानि च धारयति यत्तत्तथा, भास्वरबोन्दीकं—दीप्तशरीरं, प्रलम्बा या वनमाला—आभरणविशेषस्तां धारयति यत्तत्तथा, दिव्येन वर्णेन युक्तमिति गम्यते, एवं सर्वत्र नवरं ऋद्ध्या—विमानवस्त्रभूषणादिकया युक्तया—इष्टपरिवारादियोगेन प्रभया—प्रभावेन छायया—प्रतिबिम्बेन अर्चिषा—दीप्तिज्वालया तेजसा—कान्त्या लेश्यया-आत्मपरिणामेन, उद्योतयत्—प्रकाशयत्—प्रभासयत्—शोभयदिति, प्रासादीयं चित्ताह्लादकं दर्शनीयं यत्पश्यच्चक्षुर्न श्राम्यति अभिरूपं—मनोज्ञं प्रतिरूपं—द्रष्टारं द्रष्टारं प्रतिरूपं यस्य 'विकुर्व्य'—वैक्रियं कृत्वा 'अन्तरिक्षप्रतिपन्नः' आकाशस्थितः 'सकिङ्किणीकानि' क्षुद्रघण्टिकोपेतानि ।

देव का स्वरूप

टीकार्थः—'हारविराइयवच्छं' हारसे सुशोभित वक्षस्थलवाला इत्यादि, उपसर्ग करने वाले देवके दिव्यरूप का वर्णन करते हैं—'कडग' कंकण 'तुडिय' बेरखा और 'अंगद' केयूर आदि आभूषण दोनों हाथों में बंधे हुए थे, 'कुंडलमट्ठगंडतलकण्णपीढधारं' कानों में कुंडल और कर्णपीठको धारण किये थे, 'विचित्तहत्थाभरणं' हाथों में अनेक प्रकार के आभरण पहरे थे, 'विचित्तमालामउलिं' मुकटमें अनेक प्रकार के पुष्पों की माला पहरी थी, 'कल्लाणगपवरवत्थपरिहियं' पवित्र दिव्य वस्त्रों को धारण किये थे, 'कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणधरं' दिव्य पुष्प और विलेपन को धारण किये थे, 'भासुरबोंदिं' दिव्य शरीरवाला था, 'पलंबवणमालधरं' लंबी वनमाला को धारण करनेवाला, दिव्य वर्णवाला, दिव्य गंधवाला, दिव्य स्पर्शवाला, दिव्य संघयणवाला, दिव्य संठाणवाला, दिव्य विमान, वस्त्र, आभूषण आदि ऋद्धिवाला, दिव्य द्युतिवाला, दिव्य प्रभावाला, दिव्य छायाघाला, दिव्य अर्चिवाला, दिव्य तेजवाला, दिव्य लेश्यावाला, 'उज्जोवेइ' दश दिशाओं को प्रकाशित करनेवाला था, देखनेवाले के चित्तको आनन्द करनेवाला अर्थात् अविच्छिन्न देखनेवाले को भिन्न २ रूप दिखानेवाला, इस प्रकार के देवरूप धारण करके आकाश में रहकर कटिमें बंधीहुई घूघुरु को वजाता हुआ कहने लगा।

सूत्रम्—हं भो कामदेवा समणोवासया ! धन्नेसि णं तुमं देवाणुप्पिया ! सपुण्णे कयत्थे कयलक्खणे सुलद्धे णं तव देवाणुप्पिया ! माणुस्सए जम्मजीवियफले, जस्स णं तव निग्गंथे पावयणे इमेयारूवा पडिवत्ती लद्धा पत्ता अभिसमन्नागया। एवं खलु देवाणुप्पिया ! सक्के देविंदे देवराया जाव सक्कंसि सीहासणंसि चउरासीईए सामाणियसाहस्सीणं जाव अन्नेसिं च बहूणं देवाण य देवीण य मज्झगए एवमाइक्खइ ४ एवं खलु देवा ! जंबूद्दीवे दीवे भारहे वासे चंपाए नयरीए कामदेवे समणोवासए पोसहसालाए पोसहियबंभयारी जाव

दब्भसंथारोवगए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ, नो खलु से सक्का केणइ देवेण वा दाणवेण वा जाव गंधव्वेण वा निग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा ।

देवकृत कामदेव की स्तुति

अर्थ—हे कामदेव श्रमणोपासक ! तुम धन्य हो, कृतपुण्य हो, कृतार्थ हो, सुभलक्षणवाले हो, तुमने यह मनुष्य भव प्राप्त करके तुम्हारा जन्म और जीवन सफल किया है कि तुम्हारे को निर्ग्रंथ प्रवचनमें इस प्रकारकी दृढ़ और निश्चल धर्म प्राप्ति हुई है। एकवार देवेन्द्र देवराज इंद्र सिंहासन पर बैठे हुए चौरासी हजार सामानिक देव और दूसरे बहुत से देव देवियों की परिषदा के मध्य इस प्रकार बोले—' हे देवो ! इस जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में चंपा नामक नगरी में रहा हुआ कामदेव श्रमणोपासक पौषधशाला में ब्रह्मचर्य युक्त पौषधोपवासव्रत लेकर दर्भ के संथारे पर बैठा हुआ श्रमण भगवान श्रीमहावीर स्वामी के पास से ग्रहण की हुई धर्मप्रज्ञप्ति को पालन कर रहा है। उसको कोई भी देव दानव यक्ष राक्षस किंनर किंपुरुष महोरग या गंधर्व निर्ग्रंथ के प्रवचन से चलायमान करने क्षुभित करने या विपरीत परिणामी करने समर्थ नहीं है।'

सूत्रम्—तए णं अहं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो एयमट्ठं असद्दहमाणे ३ इहं हव्वमागए, तं अहो णं

देवाणुप्पिया ! इड्ढी ६ लद्धा ३, तं दिट्ठा णं देवाणुप्पिया ! इड्ढी जाव अभिसमन्नागया, तं खामेमि णं देवाणुप्पिया ! खमंतु मज्झ देवाणुप्पिया ! खंतुमरहंति णं देवाणुप्पिया नाइं भुज्जो करणयाए त्तिकट्टु पायवडिए पंजलिउडे एयमट्ठं भुज्जो भुज्जो खामेइ २ त्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए, तए णं से कामदेवे समणोवासए निरुवसग्गं तिकट्टु पडिमं पारेइ ॥ सू० ॥ २३ ॥

देवने कामदेव से उपसर्ग की क्षमा मांगी

अर्थ—शक्र देवेन्द्र देवराज इंद्र के इस प्रकार के वचनों की श्रद्धा न करता हुआ मैं सहन न कर सका, इसलिए तुमको चलायमान करने के लिए और इंद्र के वचन को असत्य निष्फल करने के लिये मैं यहां आया और तुमको क्षुभित करने के लिये मैं ने ही ऐसा घोर उपसर्ग आपको किया, किन्तु तुम धर्म की श्रद्धा से लेशमात्र भी चलायमान न हुए और धर्म में स्थिर रहे, धन्य है तुम्हारे मनुष्य जन्म को कि निर्ग्रन्थ प्रवचन की प्राप्ति तुम्हें हुई है । इंद्र ने जो तुम्हारी धर्म के दृढ़ श्रद्धा की प्रशंसा की यह यथार्थ है । तो हे देवानुप्रिय ! मैं ने जो आपका अपराध किया उसको मैं बार बार क्षमाता हूँ, आप मेरे अपराध को क्षमा करें । आप पूज्य हैं, बड़े हैं, आपको क्षमा करना योग्य है, अब फिर ऐसा अपराध न करूँगा, ऐसा कहता हुआ वह देव कामदेव श्रमणोपासक के चरणों में गिरा और बार बार हाथ जोड़कर क्षमा मांग कर, जिस दिशा से आया था उसी दिशा में वापिस देवलोक में

गया। अब कामदेव श्रमणोपसक ने उपसर्ग की समाप्ति हुई जानकर प्रतिमा को पारा अर्थात् पूर्ण किया ॥ २३ ॥

टीकाः—'सक्के देविन्दे' इत्यादौ यावत्करणादिदं दृश्यं 'वज्जपाणी पुरन्दरे सयक्कऊ सहस्सक्खे मघवं पागसासणे दाहिणड्ढलोगाहिवई बत्तीसविमाणसयसहस्साहिवई एरावणवाहणे सुरिन्दे अरयम्बरवत्थधरे आलइयमालमउडे नवहेमचारुचित्तचञ्चलकुण्डलविलिहिज्जमाणगण्डे भासुरबोन्दी पलम्बवणमाले सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडिंसए विमाणे सभाए सोहम्माए' त्ति, शक्रादिशब्दानां च व्युत्पत्त्यर्थभेदेन भिन्नार्थता द्रष्टव्या, तथाहि--शक्तियोगाच्छक्रः, देवानां परमेश्वरत्वाद्देवेन्द्रः, देवानां मध्ये राजमानत्वात्--शोभमानत्वाद्देवराजः, वज्रपाणिः—कुलिशकरः, पुरं—असुरादिनगरविशेषस्तस्य दारणात्पुरन्दरः, तथा क्रतुशब्देनेह प्रतिमा विवक्षिताः, ततः कार्तिकश्रेष्ठित्वे शतं क्रतूनाम्—अभिग्रहविशेषाणां यस्यासौ शतक्रतुरिति चूर्णिकारव्याख्या, तथा पञ्चानां मन्त्रिशतानां सहस्रमक्ष्णां भवतीति तद्योगादसौ सहस्राक्षः, तथा मघशब्देनेह मेघा विवक्षिताः ते यस्य वशवर्तिनः सन्ति स मघवान्, तथा पाको नाम बलवांस्तस्य रिपुः तच्छासनात्पाकशासनः, लोकस्यार्द्धम्—अर्द्धलोको दक्षिणो योऽर्द्धलोकः तस्य योऽधिपतिः स तथा, ऐरावणवाहणे--एरावतो--हस्ती स वाहनं यस्य स तथा, सुष्ठु राजन्ते ये ते सुरास्तेषामिन्द्रः--प्रभुः सुरेन्द्रः, सुराणां—देवानां वा इन्द्रः सुरेन्द्रः, पूर्वत्र देवेन्द्रत्वेन प्रतिपादितत्वात्, अन्यथा वा पुनरुक्तपरिहारः कार्यः, अरजांसि-निर्मलानि अम्बरम्—आकाशं तद्वदच्छत्वेन यानि तान्यम्बराणि तानि च वस्त्राणि च २ तानि धारयति यः स तथा, आलगितमालम्—आरोपितस्रग् मुकुटं यस्य स तथा, नवे इव नवे हेम्नः—सुवर्णस्य सम्बन्धिनी चारुणी—शोभने चित्रे—चित्रवती चञ्चले ये कुण्डले ताभ्यां विलिख्यमानौ गण्डौ—कपोलौ यस्य स तथा, शेषं प्रागिवेति, 'सामाणि-

स्साहस्सीण ' मिह यावत्करणादिदं दृश्यं ' तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं चउण्हं लोगपालाणं अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाहिवईणं चउण्हं चउरासीणं आयरक्खदेवसाहसीणं' ति, तत्र त्रयस्त्रिंशाः-पूज्या महत्तरकल्पाः, चत्वारो लोकपालाः पूर्वादिदिगधिपतयः सोमयमवरुणवैश्रवणाख्याः, अष्टौ अग्रमहिष्यः-प्रधानभार्याः, तत्परिवारः प्रत्येकं पञ्चसहस्राणि, सर्वमीलने चत्वारिंशत्सहस्राणि, तिस्रः परिषदः—अभ्यन्तरा मध्यमा बाह्या च, सप्तानीकानि--पदातिगजाश्वरथवृषभभेदात्पञ्च साङ्ग्रामिकाणि, गन्धर्वानीकं नाट्यानीकं चेति सप्त, अनीकाधिपतयश्च सप्तैवं--प्रधानः पत्तिः प्रधानो गज एवमन्येऽपि, आत्मरक्षा--अङ्गरक्षास्तेषां चतस्रः सहस्राणां चतुरशीत्यः आख्याति सामान्यतो भाषते विशेषतः, एतदेव प्रज्ञापयति प्ररूपयतीति पदद्वयेन क्रमेणोच्यत इति, 'देवेण वे' त्यादौ यावत्करणादेवं द्रष्टव्यं ' जक्खेण वा रक्खसेण वा किन्नरेण वा किम्पुरिसेण वा महोरगेण वा गन्धव्वेण वा ' इति ॥ ' इड्ढी ' इत्यादि यावत्करणादिदं दृश्यं ' जुई जसो बलं वीरियं पुरिसक्कारपरक्कमे ' त्ति ॥ ' नाइं भुज्जो करणयाए' न–नैव, आइंतिनिपातो वाक्यालङ्कारे अवधारणे वा, भूयःकरणतायां–पुनराचरणे न प्रवर्तिष्ये इति गम्यते ॥ (सू. २३)

इन्द्र का स्वरूप

टीकार्थ:— ' सक्के देविंदे ' शक्र, देवेन्द्र, वज्रपाणि, पुरंदर, शतक्रतु, सहस्राक्ष, मघव, पाकशासन, दक्षिणार्द्धलोकाधिपति बत्तीस लाख विमानका अधिपति, ऐरावण वाहन, सुरेन्द्र, स्वच्छवस्त्रके धारक, माला से युक्त मुकुटवाले, गंडस्थल पर नवीन सुवर्ण के सुंदर और चमकीले कुंडल के धारक, तेजस्वी शरीरवाले, लंबी वनमाला को धारण करनेवाले इत्यादि स्वनाम धन्य सौधर्मेन्द्र अपने सौधर्मदेवलोक में सौधर्मावतंसनामके विमान में सौधर्मनामकी सभा में बैठे थे। शक्र इत्यादि शब्दों की व्युत्पत्ति भेद से भिन्न २ अर्थ होते हैं—शक्तिवाला होने से शक्र, देवों में परम ऐश्वर्यवान् होने से देवेन्द्र, देवों में अधिक शोभायमान होने से देवराज, हाथ में वज्रको

धारण करनेवाला होने से वज्रपाणि, असुर आदिके नगर को विदारण करनेवाला होने से पुरंदर, क्रतु याने प्रतिमा (अभिग्रहविशेष) कार्तिक शेठके भवमें पांचवीं प्रतिमा सौ वार वहन किया था इसलिये शतक्रतु, पांच सौ मंत्रीके हजार आंख होने से सहस्राक्ष, जिसको मेघ आधीन है इसलिये मघवान्, पाक नामक बलवान् शत्रुको शासित करने से पाकशासन दक्षिणार्द्ध लोक का अधिपति होने से दक्षिणार्द्धलोकाधिपति, ऐरावण हाथी का वाहन होने से ऐरावण वाहन, सुरों का इन्द्र सुरेन्द्र, आकाशकी तरह निर्मल वस्त्रको धारण करने वाला होने से अरजस्वरवस्त्रधर, मुकुटमें मालाओं को धारण करनेवाला होने से आलगितमाल मुकुट, नवीन सुवर्णके सुंदर और चमकीले कुंडलों से विलिख्यमान गंडस्थल होने से नवहेमचारुचित्तचंचलकुंडलविलिख्यमानगंड इत्यादि नाम कहे जाते हैं। 'सामाणियसाहस्सीणं' तेत्तीस हजार सामानिक देव, पूर्व आदि दिशाओं के अधिपति सोम यम वरुण और कुबेर ये चार लोकपाल, प्रत्येक पांच २ हजार के परिवारवाली आठ पटराणी, अभ्यंतर मध्य और बाह्य ये तीन परिषदा के देव, पैदल हाथी घोडा रथ और वृषभ की पांच संग्राम सेना तथा गंधर्व और नाट्य ये दो विनोद सेना कुल सात सेना के अधिपति, चौरासी २ हजार के परिवारवाले चार अंगरक्षक देव, इत्यादि सब परिषदा बैठी थी, उस समय शक्रेन्द्र बोले कि यक्ष राक्षस किन्नर किंपुरुष महोरग या गंधर्व देव भी कामदेव श्रमणोपासक को अपने व्रतों से चलायमान नहीं कर सकता। इसलिये शक्रेन्द्र के वचन को अन्यथा करने के लिये मैंने आपको घोर उपसर्ग किये, परंतु आप चलायमान नहीं हुए। इसलिये हे 'इड्ढी' ऋद्धिवाले! द्युतिवाले! यश वाले! बलवाले! वीर्यवाले! और पुरिसत्कारपराक्रमवाले! मैं आपसे क्षमा मांगता हूँ और 'नाइं भुज्जोकरणयाए' अब फिर कभी आपको उपसर्ग करने के लिये प्रवृत्ति न करूंगा ॥ २३ ॥

इन्द्र का स्वरूप

सूत्रम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ, तए णं कामदेवे समणोवासए इमीसे कहाए जाव लद्धट्ठे समाणे एवं खलु समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ, तं सेयं खलु मम

समणं भगवं महावीरं वंदित्ता नमंसित्ता तओ पडिणियत्तस्स पोसहं पारित्तए त्तिकट्टु एवं संपेहेइ २ त्ता सुद्धाप्पावेसाइं वत्थाइं जाव अप्पमहग्घ० जाव मणुस्सवग्गुरापरिक्खित्ते सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता चंपं नगरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ २ त्ता जेणेव पुण्णभद्दे चेइए जहा संखो जाव पज्जुवासइ। तए णं समणे भगवं महावीरे कामदेवस्स समणोवासयस्स तीसे य जाव धम्मकहा समत्ता ॥ सू० ॥ २४ ॥

कामदेव भगवान् को वंदनार्थ गया

अर्थ—उस काल और उस समय में श्रमण भगवान श्रीमहावीर स्वामी चंपा नगरी के पूर्णभद्रयक्ष के चैत्य में पधारे। तब कामदेव श्रमणोपासक श्रमण भगवान् के पधारने का समाचार सुनकर, बड़ा आनंदित होकर विचार ने लगा कि—"श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामी का विचरना कल्याण दायक है, इसलिये मैं भी श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामी को वंदना नमस्कार करके धर्मकथा श्रवण करूं, वहां से वापिस आकरके पीछे पौषधव्रत पारना अच्छा है"। ऐसा विचार करके, शुद्ध पवित्र वस्त्रो को धारन करके, स्वजन संबंधि बड़े समूह के साथ अपने घर से निकला और चंपा नगरी के मध्य में होकर जैसे शंख श्रमणोपासक श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वंदना करने के लिये पूर्णभद्रयक्ष के चैत्य में गया था, वैसे कामदेव श्रमणोपासक भी बड़े आडंबर के साथ पूर्णभद्र यक्ष के चैत्य में गया। वहां श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामी को वंदना नमस्कार करके आई हुई परिषदा

॥१२७॥

में बैठा। तब श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामी ने परिषदा के सामने एवं कामदेव श्रमणोपासक के सामने धर्म कथा कहा ॥ २४ ॥

टीका:—'जहा सङ्खे' त्ति तथा शङ्ख श्रावको भगवत्यामभिहितस्तथाऽयमपि वक्तव्यः, अयमभिप्रायः—अन्ये पञ्चविधमभिगमं सचित्तद्रव्यव्युत्सर्गादिकं समवसरणप्रवेशे विदधति, शङ्खः पुनः पौषधिकत्वेन सचेतनादिद्रव्याणामभावात्तन्न कृतवान्, अयमपि पौषधिक इति शङ्खेनोपमितः॥ यावत्करणादिदं द्रष्टव्यं—'जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पायाहिणं करेइ २ त्ता वन्दइ नमंसइ २ त्ता नच्चासन्ने नाइदूरे सुस्सूसमाणे नमंसमाणे अभिमुहे पञ्जलिउडे पज्जुवासइ' त्ति॥ 'तएणं समणे ३ कामदेवस्स समणोवासयस्स तीसे य' इत आरम्भ औपातिकाधीतं सूत्रं तावद्वक्तव्यं यावद्धर्मकथा समाप्ता परिषच्च प्रतिगता, तच्चैवं सविशेषमुपदर्श्यते 'तएणं समणे भगवं महावीरे कामदेवस्स समणोवासयस्स तीसे य महइमहालियाए—तस्याश्च महातिमहत्या इत्यर्थः। 'इसिपरिसाए मुणिपरिसाए जइ परिसाए' तत्र पश्यन्तीति ऋषयः अवध्यादिज्ञानवन्तः, मुनयो—वाचंयमाः, यतयो—धर्मक्रियासु प्रयतमानाः, 'अणेगसयवंदाए' अनेकशतप्रमाणानि वृन्दानि यस्यां सा तथा 'अणेगसयवन्दपरिवाराए' अनेकशतप्रमाणानि यानि वृन्दानि तानि वृन्दानि परिवारो यस्य सा तथा, तस्याः धर्मं परिकथयतीति सम्बन्धः।

टीकार्थः—'जहा संख' शंखश्रावकका अधिकरा भगवती सूत्र में है। उसमें लिखा है कि "समवसरणमें प्रवेश करते समय पांच प्रकार के * अभिगम को करता है, उस समय शंख श्रावक पौषध व्रतवाला था, जिसे उसके पास सचित्त आदि द्रव्य का अभाव होनेसे

*—भगवान के समवसरण में एवं मंदिरमें प्रवेश करने की विधि को अभिगम कहते हैं, यह पाच प्रकार का है—१ सचित्त द्रव्य का त्याग, २ अचित का ग्रहण, ३ मन की एकाग्रता, ४ उत्तरासंग का रखना और ५ मूर्त्ति देखते ही हाथ जोडकर नमस्कार करना।

कामदेव भगवान् की सेवा करता है

सचित्त द्रव्यका त्यागरूप अभिगम नहीं किया" इस प्रकार यह कामदेव श्रावक भी पौषधव्रतवाला है, जिसे इसको शंख श्रावक की उपमा दी गई है। अब कामदेव श्रमणोपासक जहां पूर्णभद्र चैत्यमें श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामी पधारे हैं वहां गया, वहां जाकर श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामी को तीनवार प्रदक्षिणा देकर वंदना नमस्कार किया, पीछे बहुत नजदीक नहीं और बहुत दूर नहीं इस प्रकार समीपमें सुश्रुषाकरता हुआ और नमस्कार करता हुआ हाथ जोडकर बैठा। तब श्रमण भगवान् श्रीमहावीरस्वामी ने कामदेव श्रावक के और अन्य परिषदा के सामने धर्म कथा कही, यहां से धर्मकथा समाप्त सुनकर परिषदा वापिस चली गई वहां तक का अधिकार औपपातिक सूत्र में कहा है—श्रमण भगवान श्रीमहावीरस्वामी कामदेव श्रमणोपासकके आगे तथा अत्यन्त बड़ी परिषदाके सामने, हजारों के समुहवाले अवधिज्ञानी ऋषिपरिषदा के सामने, वाणी को संयममें रखनेवाले मुनियों की परिषदा के सामने और धर्म में प्रवर्त्तमान ऐसे यतिपरिषदा के सामने धर्मकथा कहते हैं।

टीकाः—किम्भूतो भगवान् ?—'ओहबले अइब्बले महब्बले' ओघबलः—अव्यवच्छिन्नबलः अतिबलः—अतिक्रान्ताशेषपुरुषामरतिर्यग्बलः, महाबलः—अप्रमितबलः, एतदेव प्रपंच्यते—'अपरिमियबलविरियतेयमाहप्पकंतिजुत्ते' अपरिमितानि यानि बलादीनि तैर्युक्तो यः स तथा, तत्र बलं—शारीरः प्राणः वीर्य-जीवप्रभवः तेजो दीप्तिः माहात्म्यं-महानुभावता कान्तिः-काम्यता 'सारयनवमेहथणियमहुरनिग्घोसदुन्दुभिसरे' शरत्कालप्रभवाभिनवमेघशब्दवन्मधुरो निर्घोषो यस्य दुन्दुभेरिव च स्वरो यस्य स तथा, 'उरेवित्थडाए' उरसि विस्तृतया उरसो विस्तीर्णत्वात् सरस्वत्येति सम्बन्धः, 'कण्ठे पवट्टियाए' गलविवरस्य वर्तुलत्वात्, 'सिरे सङ्किलाए' मूर्धनि सङ्कीर्णया, आयामस्य मूर्ध्नि स्खलितत्वात्, 'अगरलाए' व्यक्तवर्णयेत्यर्थः, 'अमम्मणाए' अनवखंच्यमानयेत्यर्थः, 'सव्वक्खरसन्निवाइयाए' सर्वाक्षरसंयोगवत्या 'पुण्णरत्ताए' परिपूर्णमधुरया 'सव्वभासाणुगामिणीए' सरस्सईए-भणित्या 'जोयणनीहारिणा सरेणं' योजनाति

ऋामिणा शब्देन, 'अद्धमागहाए भासाए भासइ अरहा धम्म परिकहेइ,' अर्धमागधी भाषा यस्यां 'रसोर्लशौ मागध्या' मित्यादिकं मागधभाषालक्षणं परिपूर्णं नास्ति, भाषते सामान्येन भणति, किंविधो भगवान् ?-अर्हन् पूजितो पूजोचितः, अरहस्यो वा सर्वज्ञत्वात्, कं? 'धम्मं' श्रद्धेयज्ञेयानुष्ठेयवस्तुश्रद्धाज्ञानानुष्ठानरूपं। तथा परिकथयति अशेषविशेषकथनेनेति। तथा 'तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाणं अगिलाए धम्ममाइक्खइ' न केवलं ऋषिपर्षदादीनां, ये वन्दनाद्यर्थमागतास्तेषां च सर्वेषामार्याणाम्-आर्यदेशोत्पन्नानामनार्याणां-म्लेच्छाना-मग्लान्या अखेदेनेति।

भगवान् की धर्म देशना

टीकार्थः—भगवान कैसे हैं ? जिनका कमी नाश न हो ऐसे बलवाले, मनुष्य देव और तिर्यंच के बलों का अतिक्रमण कर सके इस प्रकार के बलवाले, अथाग बलवाले, अपरिमित वलवान शरीरवाले, अपरिमित वीर्यवाले, अपरिमित तेजवाले, अपरिमित महात्म्य वाले, अपरिमित कीर्तिवाले, शरदऋतु के मेघ की ध्वनि जैसे मधुर ध्वनिवाले, दुंदुमी के अवाज जैसे स्वरवाले हैं। भगवान की ध्वनि का स्वरूप—हृदय की विशालता होने से वाणी की विशालता थी, कंठ वर्त्तुल होने से वाणी वर्तुल थी, मस्तक में संकीर्ण होनेवाली-व्यक्तवर्णवाली, स्पष्ट उच्चारवाली, सब प्रकार के अक्षरों के संयोगवाली, परिपूर्ण माधुर्यवाली, सब भाषारूपमें परिणत होनेवाली, एक योजनतक आवाज फेलानेवाली इस प्रकार की अर्द्धमागधी भाषा में तीर्थंकर भगवान धर्मोपदेश करते हैं। भगवान् कैसे हैं ? रागादि शत्रुओं को जीतनेवाले होने से अर्हन् हैं, पूजनीय और सर्वज्ञ हैं। धर्म क्या है ? जो श्रद्धा करने योग्य हो उसपर श्रद्धा करना, जानने योग्य को जानना और आदरणीय योग्य का स्वीकार करना यह धर्म है। धर्मकथा फक्त ऋषिपरिषदा के सामने नहीं परंतु आर्यदेशवासी आर्य और अनार्य लोगों के सामने भी धर्मकथा कही।

टीकाः—'साऽवि य णं अद्धमागहा भासा तेसिं आरियमणारियाणं अप्पणो भासाए परिणामेणं परिणमइ' स्वभाषापरिणा-

मेनेत्यर्थः, धर्मकथामेव दर्शयति–' अत्थि लोए अत्थि अलोए एवं जीवा अजीवा बन्धे मोक्खे पुण्णे पावे आसवे संवरे वेयणा निज्जरा ' एतेषामस्तित्वदर्शनेन शून्यज्ञाननिरात्माद्वैतैकान्तक्षणिकनित्यवादिनास्तिकादिकुदर्शननिराकरणात् परिणामिवस्तुप्रतिपादनेन सकलैहिकामुष्मिकक्रियाणामनवद्यत्वमावेदितं, तथा 'अत्थि अरहन्ता चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा नरगा नेरइया तिरिक्खजोणिया तिरिक्खजोणिणीओ माया पिया रिसओ देवा देवलोया सिद्धी सिद्धा परिणिव्वाणे परिणिव्वुया ' सिद्धिः-कृतकृत्यता परिनिर्वाणं-सकलकर्मकृतविकारविरहादतिस्वास्थ्यं एवं सिद्धपरिनिर्वृतानामपि विशेषोऽवसेयः, तथा--अत्थि पाणाइवाए मुसावाए अदिण्णादाणे मेहुणे परिग्गहे, अत्थि कोहे माणे माया लोभे पेज्जे दोसे कलहे अब्भक्खाणे पेसुन्ने अरइरई परपरिवाए मायामोसे मिच्छादंसणसल्ले, अत्थि पाणाइवायवेरमणे जाव कोहविवेगे जाव मिच्छादंसणसल्लविवेगे, किं बहुना ? सव्वं अत्थिभावं अत्थित्ति वयइ, सव्वं नत्थिभावं नत्थित्ति वयइ, सुचिण्णा कम्मा सुचिण्णफला भवन्ति ' सुचरिताः–क्रियादानादिकाः सुचीर्णफलाः–पुण्यफला भवन्तीत्यर्थः, ' दुच्चिण्णा कम्मा दुच्चिण्णफला भवन्ति, ' फुसइ पुण्णपावे ' बध्नात्यात्मा शुभाशुभकर्मणी, न पुनः साङ्ख्यमतेनेव न बध्यते, ' पच्चायन्ति जीवा ' प्रत्याजायन्ते उत्पद्यन्ते इत्यर्थः, सफले कल्लाणपावए ' इष्टानिष्टफलं शुभाशुभं कर्मेत्यर्थः, ' धम्ममाइक्खइ ' अनन्तरोक्तं ज्ञेयश्रद्धेयज्ञानश्रद्धानरूपमाचष्टे इत्यर्थः,

टीकार्थः—अब धर्मकथा कहते हैं—लोक और अलोक है, तथा जीव अजीव बंध मोक्ष पुण्य पाप आश्रव संवर वेदना और निर्जरा भी है। इन्हों का होना कहने से बौद्ध चार्वाक और नास्तिक आदि के मतोंका का निराकरण कर दिया। परिणामिक नित्य वस्तुओंका प्रतिपादन करने से समस्त यह लोक और परलोक संबंधि क्रियाओंकी सफलता सूचन किया। एवं अरिहंत, चक्रवर्ती, बलदेव-वासुदेव, नरक, नारकी के जीव, तिर्यंचयोनिके, तिर्यंचयोनि जीव, माता, पिता, ऋषि, देव, देवलोक, सिद्धि (मोक्ष) और परिनिर्वाणपदमें

निर्वाण पाये हुये सिद्ध हैं। तथा प्राणातिपात (हिंसा), मृषावाद (झूठ बोलना), अदत्तादान (चोरी), मैथुन और परिग्रह हैं। एवं क्रोध, मान, माया (कपट), लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, (असत्य दोषारोपण), पैशुन्य (चुगली), अरति (शोक), रति (हर्ष), परपरिवाद (निंदा), माया मृषावाद (कपट पूर्वक झूठ बोलना) और मिथ्यादर्शनशल्य (मिथ्यात्व के सेवन करने) का परिणाम हैं। एवं प्राणातिपात की निवृत्ति से परिग्रहनिवृत्ति तक पांच की निवृति हैं और क्रोध के त्याग से मिथ्यादर्शनत्याग तक सबका त्याग है। जिस पदार्थ का अस्तित्व है वह है, जो पदार्थ नहीं है वह नहीं है। अच्छे शुभ कर्मों का फल पुण्य है, दुष्टकर्मों का फल पाप है अर्थात् शुभाशुभकर्मों को करने वाला आत्मा क्रमशः पुण्य और पाप को बांधता है। शांख्यमतवाला आत्मा फिर उत्पन्न नहीं होता और शुभाशुभकर्मों को भी बांधता नहीं है ऐसा मानते हैं।

टीकाः—तथा ‘ इणमेव निग्गन्थे पावयणे सच्चे ’ इदमेव—प्रत्यक्षं नैर्ग्रन्थं प्रवचनं--जिनशासनं सत्यं—सद्भूतं कषादिशुद्धत्वात्सुवर्णवत् ‘ अणुत्तरे ’ अविद्यमानप्रधानतरं ‘ केवलिए ’ अद्वितीयं ‘ संसुद्धे ’ निर्दोषं ‘ पडिपुण्णे ’ सद्गुणभृतं ‘ नेयाउए ’ नैयायिकं न्यायनिष्ठं ‘ सल्लगत्तणे ’ मायादिशल्यकर्त्तनं ‘ सिद्धिमग्गे ’ हितप्राप्तिपथः ‘ मुत्तिमग्गे ’ अहितविच्युतेरुपायः, ‘ निज्जाणमग्गे ’ सिद्धिक्षेत्रावाप्तिपथः ‘ परिनिव्वाणमग्गे ’ कर्माभावप्रभवसुखोपायः, ‘सव्वदुक्खप्पहीणमग्गे ’ सकलदुःखक्षयोपायः, इदमेव--प्रवचनं फलतः प्ररूपयति-‘इत्थं ठिया जीवा सिज्झंति’ निष्ठितार्थतया ‘बुज्झन्ति’ केवलितया ‘मुच्चन्ति’ कर्मभिः ‘परिणिव्वायन्ति’ स्वथीभवन्ति, किमुक्तं भवति ?--सव्वदुक्खाणमन्तं करेन्ति, एगच्चा पुण एगे भयन्तारो, एकार्च्या—अद्वितीयपूज्याः संयमानुष्ठाने वा असदृशी अर्चा--शरीरं येषां ते एकार्चाः, ते पुनरेके केचन ये न सिध्यन्ति ते भक्तारो—निर्ग्रन्थप्रवचनसेवका भदन्ता वा--भट्टारका भयत्रातारो वा, ।

टीकार्थः—इस प्रकार धर्म को समझ करके उसमें श्रद्धा करना धर्म है। निर्ग्रंथ जिन शासन सत्य, प्रधानतर, अद्वितीय शुद्ध, सद्गु-

णों से भरा हुआ, न्यायनिष्ठ, मायादि शल्य को काटने वाला, सिद्धि के मार्ग रूप, मुक्ति के मार्गरूप, निर्वाण के मार्गरूप, कर्मों के अभाव रूप सुख के साधन और समस्त दुःखों के क्षय का साधन है। जिन प्रवचन का महात्म्य है कि-निर्ग्रथ जिन शासन में रहा हुआ जीव सिद्ध पद को पाता है, कृतार्थ तथा बोध पाता है और केवली होकर कर्मों से मुक्त होता है, मोक्ष में स्थिर होता है। कोई निर्ग्रंथ प्रवचन का सेवक-भदंत-भट्टारक-भयत्राता-सिद्धिपद को नहीं पावे तो—

टीकाः--पुव्वकम्मावसेसेणं अन्नतरेसु देवलोगेसु देवत्ताए उववत्तारो भवन्ति महिड्ढिएसु महज्जुइएसु महाजसेसु महाबलेसु महाणुभावेसु महासुक्खेसु दूरङ्गएसु चिरट्ठिइएसु, ते णं तत्थ देवा भवन्ति माहिड्ढिया जाव चिरट्ठिइया हारविराइयवच्छा कडगतुडियथम्भियभुया अङ्गदकुण्डलमट्ठगण्डतलकण्णपीढधारा विचित्तहत्थाभरणा विचित्तमालामउलीमउडा--विदीप्तानि विचित्राणि वा 'मउली' त्ति मुकुटविशेषः कल्लाणपवरवत्थपरिहिया कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणधरा भासुरबोन्दी पलम्बवणमालाधरा दिव्वेणं वण्णेणं दिव्वेणं गन्धेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं सङ्घयणेणं दिव्वेणं संठाणेणं दिव्वाए इड्ढीए दिव्वाए जुईए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेसाए दस दिसाओ उज्जोएमाणा पभासेमाणा गइकल्लाणा ठिइकल्लाणा आगमेसिभद्दा पासाईया दरसणीज्जा अभिरूवा पडिरूवा, तमाइक्खइ यदेतत् धर्मफलं तदाख्याति।

टीकार्थः—पूर्व कर्मों का अवशेष रहने से देवलोक में महा ऋद्धिवाला, महाद्युति वाला, महायशवाला, महाबल वाला, महाप्रभावबाला, महासुखवाला, महाशरीरवाला, महाआयुष्य वाला, हारसे सुशोभित वक्षस्थल वाला, कंकण और बेरखे से सुशोभित भुजावाला, कान में कुंडल और कर्णपीठ को धारण करने वाला, अनेक प्रकार के आभूषणों से सुशोभित हाथ वाला, अनेक प्रकार की मालाओं से सुशोभित मुकटों को धारण करनेवाला, निर्मल वस्त्र को पहरनेवाला, पवित्र-माला और विलेपनको धारण करनेवाला, दीप्तशरीर वाला,

लंबी वनमाला को धारण करनेवाला, दिव्यवर्णवाला, दिव्यगंधवाला, दिव्यस्पर्शवाला, दिव्यसंघयणवाला, दिव्यसंठाणवाला, दिव्यऋद्धिवाला, दिव्यद्युतिवाला, दिव्यप्रभाववाला, दिव्यछायावाला, दिव्यअर्चिवाला, दिव्यतेजवाला, दिव्यलेश्यावाला, दश दिशाओं को उद्योत करनेवाला, दिव्यबोलनेवाला, कल्याणकारक गतिवाला, कल्याणकारक स्थितिवाला आगामी भव भी कल्याणकारकवाला, चित्तको आनंद दायक दर्शनवाला, देखनेवालेके लिये अभिरूप और प्रतिरूपवाला देव उत्पन्न होता है।

टीकाः--तथा 'एवं खलु चउहिं ठाणेहिं जीवा नेरइयत्ताए कम्मं पकरेन्ति, 'एव' मिति वक्ष्यमाणप्रकारेणेति, नेरइयत्ताए कम्मं पकरेत्ता नेरइएसु उववज्जन्ति, तंजहा—महारम्भयाए महापरिग्गहयाए पञ्चेन्दियवहेणं कुणिमाहारेणं' 'कुणिमं' ति मांसं, एवं च एएणं अभिलावेणं तिरिक्खजोणिएसु माइमल्लयाए अलियवयणेणं उक्कञ्चणयाए वञ्चणयाए तत्र माया वञ्चनबुद्धिः उत्कञ्चनं मुग्धवञ्चनप्रवृत्तस्य समीपवर्तिविदग्धचित्तरक्षणार्थं क्षणमव्यापारतया अवस्थानं, वञ्चनं-प्रतारणं ॥ मणूसेसु पगइभद्दयाए पगइविणीययाए साणुक्कोसयाए अमच्छरियाए, प्रकृतिभद्रकता—स्वभावत एवापरोपतापिता, अनुक्रोशो--दया ॥ देवेसु सरागसंजमेणं संजमासंजमेणं अकामनिज्जराए बालतवोकम्मेणं, तमाइक्खइ ॥ यदेवमुक्तरूपं नारकत्वादिनिबन्धनं तदाख्यातीत्यर्थः ॥ तथा ॥ जह नरया गम्मन्ती जे नरया जा य वेयणा नरए। सारीरमाणसाइं दुक्खाइं तिरिक्खजोणीए ॥ १ ॥ माणुस्सं च अणिच्चं वाहिजरामरणवेयणापउरं। देवे य देवलोए देविहिं देवसोक्खाइं ॥ २ ॥ देवांश्च देवलोकान् देवेषु देवसौख्यान्याख्यातीति ॥ नरगं तिरिक्खजोणिं माणुसभावं च देवलोगं च। सिद्धिं च सिद्धिवसहिं छज्जीवणियं परिकहेइ ॥ ३ ॥ जह जीव बज्झन्ती मुच्चन्ती जह य सङ्किलिस्सन्ति। जह दुक्खाणं अन्तं करेन्ति केई अपडिबद्धा ॥ ४ ॥ अट्टा अट्टियचित्ता जह जीवा दुक्खसागरमुवेन्ति। जह वेरग्गमुवगया कम्मसमुग्गं विहाडेन्ति ॥ ५ ॥ आर्ताः—शरीरतो

दुःखिताः आर्तितचित्ताः-शोकादिपीडिताः, आर्त्ताद्वा ध्यानविशेषादार्त्तितचित्ता इति। जह रागेण कडाणं कम्माणं पावओ फलविवागो।
जह य परिहीणकम्मा सिद्धा सिद्धालयमुवेन्ति ॥ ६ ॥

टीकार्थः—जीव चार प्रकार के महारंभ करने से नरक गतिका आयुष्य बांधता है-महा आरंभ करनेवाला, महापरिग्रह रखनेवाला, पंचेन्द्रिय जीवोंका वध करनेवाला और मांस खानेवाला जीव नरक में उत्पन्न होता है। भद्र जीवों को ठगने के लिये कपट पूर्वक झूठ बोलनेवाला प्राणी तिर्यंच योनिमें उत्पन्न होता है। जो प्राणी स्वाभाविक भद्र प्रकृतिवाला, स्वाभाविक विनयवाला, स्वभावसे ही दयावान् और स्वभावसे ही ईर्ष्या रहित हो वह प्राणी मनुष्यगति में उत्पन्न होता है। सरागसंयमसे श्रावकव्रतसे अकाम निर्जरासे और बालतपसे प्राणी देवगतिमें उत्पन्न होता है। जो प्राणी नरकमें उत्पन्न होता है वह नरक की घोर वेदना को सहन करता है। तिर्यंचयोनिमें उत्पन्न होनेवाला जीव शारीरिक और मानसिक दुःखों को सहन करता है। अनित्य ऐसा मनुष्यभवमें उत्पन्न होकर व्याधि वृद्धावस्था और मृत्यु की अत्यंत वेदनाको सहना है और देवलोक में उत्पन्न होनेवाला जीव दिव्य सुखोंका अनुभव करता है। नरकगति तिर्यंचयोनि मनुष्यभव देवलोक सिद्धि और सिद्धवसति ये छह जीवनिकाय हैं। कितनेक जीव कर्मों को बांधता है, कोई कर्मों को छोड़ता है और कोई दुःखोंका अनुभव करता है। कोई अप्रतिबद्ध प्राणी दुःखों का अंत करता है, कोई जीव शरीरसे या आर्त्तध्यान विशेष से दुःखी होकर दुःख सागरमें गिरता है। कोई जीव वैराग्य प्राप्तकरके कर्मों के समुह को नाश करता है। कोई जीव रागसे किये हुए कर्मों के फलको पाता है। तथा जिनके कर्मोंका क्षय होगया है ऐसे सिद्धके जीव सिद्धिपदको प्राप्त करते हैं।

टीकाः—अथानुष्ठेयानुष्ठानलक्षणं धर्ममाह-'तमेव धम्मं दुविहमाइक्खियं' येन धर्मेण सिद्धाः सिद्धालयमुपयान्ति स एव धर्मो द्विविध आख्यात इत्यर्थः, जहा आगारधम्मं च अणगारधम्मं च, अणगारधम्मो इह खलु सव्वओ सर्वान् धनधान्यादिप्रकारानाश्रित्य

‘सव्वत्ताए’ सर्वात्मना, सर्वैरात्मपरिणामैरित्यर्थः, अगाराओ अणगारियं पव्वइयस्स सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, एवं मुसावायाओ अदिण्णादाणमेहुणपरिग्गहराईभोयणाओ वेरमणं, अयमाउसो! अणगारसामाइए धम्मे पण्णत्ते, एयस्स धम्मस्स सिक्खाए उवट्ठिए निग्गन्थे वा निग्गन्थी वा विहरमाणे आणाए आराहए भवइ।

टीकार्थः—आचरणकरने योग्य धर्म से सिद्ध के जीव सिद्धिपदको प्राप्त करते हैं, यह धर्म दो प्रकार से है—एक गृहस्थधर्म और दूसरा साधुधर्म है। सब प्रकारसे धन धान्य आदिके व्यापार से निवृत्त होना, अर्थात् प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह और रात्रिभोजन ये छहों से सर्वथा निवृत्त होना साधु धर्म है। हे आयुष्यमान् अणगार! सामायिकरूप धर्म को प्राप्त करके उस धर्म की शिक्षा में रहे हुए साधु या साध्वी निर्ग्रन्थ प्रवचन की आज्ञा के आराधक हैं।

भगवान् की धर्म देशना

टीकाः—अगारधम्मं दुवालसविहं आइक्खइ, तंजहा—पञ्चाणुव्वयाइं तिण्णि गुणव्वयाइं चत्तारि सिक्खावयाइं, पंच अणुव्वयाइं तंजहा—थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमणं एवं मुसावायाओ अदिण्णादाणाओ सदारसन्तोसे इच्छापरिमाणे, तिण्णि गुणव्वयाइं तंजहा—अणट्ठादण्डवेरमणं दिसिव्वयं उवभोगपरिभोगपरिमाणं, चत्तारि सिक्खावयाइं तंजहा—सामाइयं देसावगासियं पोसहोववासो अतिहिसंविभागो, अपच्छिममारणन्तियसंलेहणाझूसणाआराहणा, अयमाउसो! आगारसामाइए धम्मे पण्णत्ते, एयस्स धम्मस्स सिक्खाए उवट्ठिए समणोवासए समणोवासिया वा विहरमाणे आणाए आराहए भवइ।

टीकार्थः—गृहस्थ धर्म बारह प्रकारसे है— पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इस तरह बारह प्रकारके गृहस्थ धर्म हैं। स्थूल प्राणातिपातविरमण, स्थूल मृषावादविरमण, स्थूल अदत्तादानविरमण, स्वदारासंतोष और इच्छापरिमाण ये पांच अणुव्रत हैं।

अनर्थदंडविरमण, दिशाव्रत और उपभोग परिभोग का परिमाण ये तीन गुणव्रत हैं। सामायिक देशावकाशिक पौषधोपवास और अतिथिसंविभाग ये चार शिक्षाव्रत हैं। तथा अंतमें अपश्चिममरणांतिक संलेषणा की आराधना है। हे आयुष्मान्! इन बारह प्रकारके श्रावक धर्म में रहे हुए श्रावक या श्राविका निर्ग्रन्थ प्रवचन के आराधक हैं।

टीका:—तए णं सा महइमहालिया मणुसपरिसा समणस्स भगवओ महावीरस्स अन्तिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियया उट्ठाए उट्ठेइ २ त्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण करेइ २ त्ता वन्दइ नमंसइ २ त्ता अत्थेगइया मुण्डा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया, अत्थेगइया पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवन्ना, अवसेसा णं परिसा समणं भगवं महावीरं वन्दित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—सुयक्खाए णं भन्ते! निग्गन्थे पावयणे, एवं सुपण्णत्ते, भेदतः, सुभासिए वचनव्यक्तितः, सुविणीए सुष्ठु शिष्येषु विनियोजनात्, सुभाविए—तत्त्व-भणनात्, अणुत्तरे भन्ते! निग्गन्थे पावयणे, धम्मं णं आइक्खमाणा उवसमं आइक्खइ, क्रोधादिनिग्रहमित्यर्थः, उवसमं आइक्खमाणा विवेगं आइक्खइ, बाह्यग्रन्थत्यागमित्यर्थः, विवेगं आइक्खमाणा वेरमणं आइक्खइ, मनोनिवृत्तिमित्यर्थः, वेरमणं आइक्खमाणा अकरणं पावाणं कम्माणं आइक्खइ, धर्ममुपशमादिस्वरूपं ब्रूथेति हृदयं, नत्थि णं अण्णे कोइ समणे वा माहणे वा जे एरिसं धम्ममाइक्खित्तए, प्रभुरिति शेषः, किमङ्ग पुण एत्तो उत्तरतरं?, एवं वंदित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगयत्ति ॥ (सू. २४)

भगवान् की धर्म देशना

टीकार्थ:—इस प्रकार की श्रमण भगवान् श्रीमहावीरस्वामी के पाससे धर्मदेशना को सुनकर महान् बड़ी मनुष्य परिषद् हर्षित हुई और खड़ी होकर श्रमण भगवान् श्रीमहावीरस्वामी को तीन वार प्रदक्षिणा पूर्वक वंदना नमस्कार किया। कितनेक भव्यजीव धर्म-

देशना सुनकर अणगार (साधु) हुए, कितनेक भव्यजीवोंने पांच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रतरूप बारह प्रकारके गृहस्थ धर्म का स्वीकार किया, कितनेक भव्यजीव श्रमण भगवान् श्रीमहावीरस्वामी को वंदना नमस्कार करके कहने लगे—हे भगवंत ! आपने निर्ग्रन्थ प्रवचन की प्ररूपणा अच्छे वचनों से पदार्थों का भेद बतलाते हुए तत्त्वों का कथन कहा। एवं आपने क्रोधादिकषायों का निग्रहरूप, बाह्यपरिग्रह का त्यागरूप, मनोनिवृत्तिरूप और पापकर्मों का अकर्मरूप धर्म को कहा। कोई भी श्रमण या श्रावक इस प्रकारके धर्म को कहने में समर्थ नहीं हो सकते तो दूसरे समर्थ कैसे हो सकते हैं?। इस प्रकार प्रशंसा करती हुई पर्षदा जिस दिशासे आई थी उसी दिशामें वापीस चली ग ॥२४॥

सूत्रम्—कामदेवाइ ! समणे भगवं महावीरे कामदेवं समणोवासयं एवं वयासी—से नूणं कामदेवा ! तुब्भं पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि एगे देवे अंतिए पाउब्भूए। तए णं से देवे एगं महं दिव्वं पिसायरूवं विउव्वइ २ त्ता आसुरुत्ते ४ एगं महं नीलुप्पल जाव असिं गहाय तुमं एवं वयासी—हं भो कामदेवा ! जाव जीवियाओ ववरोविज्जसि, तं तुमं तेणं देवेणं एवंवुत्ते समाणे अभीए जाव विहरासि एवं वण्णगरहिया तिण्णिवि उवसग्गा तहेव पडिउच्चारेयव्वा जाव देवो पडिगओ, से नूणं कामदेवा अट्ठे समट्ठे ?, हंता अत्थि।

भगवान् की धर्म देशना

अर्थ—अब परिषदा के सामने श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामी कामदेव श्रमणोपासकको इस प्रकार कहने लगे—' हे कामदेव ! अर्द्ध रात्रि के समय तेरे पास एक देव प्रगट हुआ था, उस देव ने एक बड़ा पिशाच का

रूप बनाकर, बड़ा क्रोधायमान होकर एक बड़ी नीलोत्पल जैसी तलवार ग्रहण करके कहन लगा कि–हे कामदेव ! यदि तूं व्रत नियम आदि को न तोड़ेगा तो तेरे को आज इसी तलवार से जीवित रहित कर देउँगा । इस प्रकार के वचना से एवं तलवार के प्रहार से भी तूं किञ्चिन्मात्र भी चलायमान न हुआ आर धर्म ध्यान में स्थिर रहा । इस प्रकार हाथी और सर्प के उपसर्गों को और देव क्षमा मांगकर वापिस अपने स्थान गया इत्यादि सब कह सुनाया । पीछे कामदेव को संबोधन करक श्रमण भगवान् ने पूछा कि हे कामदेव ! क्या यह मेरा कहना सचा है ? । तब कामदेव श्रमणोपासक ने कहा–हे भगवन् ! आपका कहा हुआ सब यथार्थ सचा है।

भगवान् का साधु-साध्वियों को उपदेश

सूत्रम्—अज्जो इ समणे भगवं महावीरे बहवे समणे निग्गंथे य निग्गंथीओ य आमंतेत्ता एवं वयासी–जइ ताव अज्जो ! समणोवासगा गिहिणो गिहमज्झावसंता दिव्वमाणुसतिरिक्खजोणिए उवसग्गे सम्मं सहंति जाव आहियासेंति, सक्का पुण्णाइं अज्जो, समणेहिं निग्गंथेहिं दुवालसंगं गणिपिडगं अहिज्जमाणेहिं दिव्वमाणुसतिरिक्खजोणिए सम्मं सहित्तए जाव आहियासित्तए, तओ ते बहवे समणा निग्गंथा य निग्गंथीओ य समणस्स भगवओ महावीरस्स तहत्ति एयमट्ठं विणए णं पडिसुणंति । तए णं से कामदेवे समणोवासए हट्ठ जाव समणं भगवं महावीरं पसिणाइं पुच्छइ अट्ठमादियइ, समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो वंदइ

भगवान् का साधु-साध्वियों को उपदेश

नमंसइ २ त्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए । तए णं समणे भगवं महावीरे अन्नया कयाइ चपाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ॥ सू० २५ ॥

अर्थ—पीछे हे आर्यो ! इस प्रकार संबोधन करके बहुतसे श्रमण निर्ग्रंथ और निर्ग्रंथियों को बुलवा कर श्रमण भगवान श्रीमहावीर स्वामीने कहा कि–हे आर्यो ! घर में रहते हुए गृहस्थ श्रमणोपासक भी अपना व्रत पालन करने के लिये देव, मनुष्य और तिर्यंचों के किये हुए उपसर्गों को अच्छी तरह समभाव से सहन करते हैं, चलायमान नहीं होते, किन्तु अपना व्रत पालने में दृढ रहते हैं । तो हे आर्यो ! तुम श्रमण निर्ग्रंथ और निर्ग्रंथियों द्वादश गणिपिटकका अध्ययन करने वाले हैं । जिसे अपना आचार पालने के लिये देव, मनुष्य या तिर्यंच के उपसर्गों को समभाव से सहन करने चाहिये, किञ्चिन्मात्र भी चलायमान नहीं होना चाहिये । इस प्रकारके श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामी का कथन निर्ग्रंथ और निर्ग्रंथियोंने विनय पूर्वक स्वीकार किया । पीछे कामदेव श्रमणोपासक हृष्ट तुष्ट और आनंदित होकर श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वंदना नमस्कार करके कितनेक प्रश्नों को पूछकर उनका उत्तर बराबर समझ लिया । पीछे श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामी को तीन वार वंदना नमस्कार करके जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में वापीस अपने घर गया । तथा श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामी भी चंपानगरी से निकल कर अन्यत्र देशमें विहार कर गये ॥ २५ ॥

टीका—'अट्ठे समट्ठे' त्ति अस्त्येषोऽर्थ इत्यर्थः, अथवा अर्थः—मयोदितं वस्तु समर्थः—सङ्गतः, हन्ता इति कोमलामन्त्रणवचनं, 'अज्जो' त्ति आर्या इत्येवमामन्त्र्यैवमवादीदिति, 'सहन्ति' त्ति यावत्करणादिदं दृश्यं—खमन्ति तितिक्खन्ति, एकार्थाश्चैते, विशेषव्याख्यानमप्येषामस्ति तदन्यतोऽवसेयमिति ॥ (सू. २५)

टीकार्थः—'अट्ठे समट्ठे' मैंने पदार्थों के अनुकूल अर्थ को कहा। 'हंता' यह पद कोमल आमंत्रणवाचक है। 'अज्जो' आर्य! इस प्रकार का आमंत्रण वाची है। सहंति खमंति और तितिक्खंति ये पदों एकही अर्थवाले हैं, परंतु उत्तरोत्तर कुछ विशेषता को बतलाते हैं॥ २५॥

कामदेवका अनशन

सूत्रम्—तए णं से कामदेवे समणोवासए पढमं उवासगपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। तए णं से कामदेवे समणोवासए बहूहिं जाव भावेत्ता वीसं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणित्ता एक्कारस उवासगपडिमाओ सम्मं काएणं फासेत्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडिंसयस्स महाविमाणस्स उत्तरपुरच्छिमेणं अरुणाभे विमाणे देवत्ताए उववन्ने। तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता कामदेवस्सऽवि देवस्स चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। से णं भंते! कामदेवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गमिहिइ? कहिं उववज्जिहिइ?,

गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ। निक्खेवो ॥ सू० २६ ॥

॥ सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं बीअं अज्झयणं समत्तं ॥

कामदेव का देवलोक गमन

अर्थः—अब कामदेव श्रमणोपासक प्रथम उपासकप्रतिमा को स्वीकार करके आनंद श्रावक की तरह रहने लगा। इस प्रकार वीस वर्ष तक श्रमणोपासक के व्रतों का पालन किया और श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं को भी अच्छी तरह पूर्ण किया। अंतमें एक मास की अपश्चिम-मारणांतिक-संलेखना करके आत्मा को समभाव में रखता हुआ; साठ भक्त अर्थात् एक मास का अणसन करके, आलोचना एवं प्रायश्चित करके समाधि पूर्वक काल धर्म प्राप्त करके, सौधर्म देवलोक में ईशान दिशामें रहा हुआ अरूणाभ नामक महाविमान में चार पल्योपम के आयुष्यवाला देव हुआ। गौतम स्वामीने पूछा कि—'हे भगवन ! कामदेवता देवलोक से आयुष्य का क्षय, भव का क्षय और स्थिति का क्षय करके वहां से च्यव कर कहां जायगा ?' तब श्रमण भगवान श्रीमहावीरस्वामीने कहा कि—'हे गौतम ! कामदेवता देव का आयुष्य पूर्ण करके महाविदेह क्षेत्र में जन्मेगा ! वहां से सिद्ध बुद्ध और मुक्त होगा ॥ २६ ॥

टीका—'निक्खेवओ' त्ति निगमनवाक्यं वाच्यं, तच्चेदं–एवं खलु जम्बू ! समणेणं जाव सम्पत्तेणं दोच्चस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्तेत्ति बेमि ॥ (सू. २६)

टीकार्थः—'निक्खेवओ' उपसंहार करते हैं—सुधर्मस्वामी ने कहा हे जम्बू ! श्रमण भगवान श्रीमहावीर स्वामीने दूसरे अध्ययन का अर्थ इस प्रकार कहा है ॥ २६ ॥

॥ इति सातवें अंग उपासक दशांगसूत्र का दूसरा अध्ययन संपूर्ण ॥ २ ॥



* अथ तृतीयमध्ययनम् *

सूत्रम्—उक्खेवो तइयस्स अज्झयणस्स–एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणारसी नामं नयरी, कोट्ठए चेइए, जियसत्तू राया । तत्थ णं वाणारसीए नगरीए चुलणीपिया नामं गाहावई परिवसइ, अड्ढे जाव अपरिभूए, सामा भारिया, अट्ठ हिरणकोडीओ निहाणपउत्ताओ अट्ठ वुड्ढिपउत्ताओ अट्ठ पवि-

त्थरपउत्ताओ अट्ठ वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं जहा आणंदो राईसर जाव सव्वकज्जवट्टावए यावि होत्था, सामी समोसढे, परिसा निग्गया, चूलणीपियावि जहां आणंदो तहा निग्गओ, तहेव गिहिधम्मं पडिवज्जइ, गोयमपुच्छा तहेव सेसं जहा कामदेवस्स जाव पोसहसालाए पोसहिए बंभचारी समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ ॥ सू० २७ ॥

चूलणीपिता का वर्णन

अर्थः—अब तीसरे अध्ययन का उपोद्घात कहते हैं—श्रीजंबूस्वामी गणधर श्रीसुधर्मस्वामी को बोले कि–'हे भगवन्! श्रमणभगवान् श्रीमहावीरस्वामी मोक्ष पधारें, उन्होंने उपासक दशा सूत्र के दूसरे अध्ययन का जो अर्थ कहा, वह आपने मेरे को सुनाया। अब तीसरे अध्ययन का क्या अर्थ कहा है?' तब आर्यश्रीसुधर्मस्वामी बोले–हे जंबू! उस काल और उस समय में वाणारसी नामकी नगरी थी, वहां कोष्टकयक्ष का चैत्य था, और वहां जितशत्रु राजा राज्य कर रहा था। तथा उसी वाणारसी नगरी में चूलणीपिता नामका बड़ी समृद्धि वाला गृहपति रहता था, उसको श्यामा नामकी भार्या थी तथा उसके पास आठ हिरण्यकोटी धन भंडार में, आठ हिरण्यकोटी धन व्यापार में और आठ हिरण्यकोटी धन घर खर्च के लिये था। इसके उपरांत दश हजार गौका एक व्रज ऐसे आठ व्रज भी थे। जिस प्रकार आनंदश्रावक अपना स्वजन वर्ग का सलाहकार एवं आधार-

भूत था, उसी प्रकार चूलणीपिता भी सलाहकार एवं आधारभूत था। एक समय श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी वाणारसी नगरी के कोष्टकयक्ष के चैत्य में पधारे, परिषद् बंदन करने आई, चूलणीपिता भी आनंद श्रमणोपासक की तरह महा आडंबर पूर्वक वंदन करने आया और धर्मोपदेश श्रवण करके गृहस्थ धर्म (बारह व्रत) का स्वीकार किया। पीछे गौतम स्वामी ने पूछा कि हे भगवन् ! यह चूलणीपिता श्रमणोपासक दीक्षा लेवेगा उत्तर में आनंद श्रमणोपासक की तरह कह दिया, इत्यादि वर्णन प्रथम अध्ययन से जानना। पीछे चूलणीपिता श्रमणोपासक कामदेव श्रावक की तरह बारह व्रत स्वीकार करके प्रतिमा को वहन करता हुआ, पौषधशाला में पौषधव्रत लेकर, ब्रह्मचर्य पूर्वक श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी के पास से ग्रहण की हुई धर्मप्राप्ति का पालन करता हुआ रहने लगा ॥ २७ ॥

चूलणीपिता का वर्णन

टीका:—अथ तृतीयं व्याख्यायते, तच्च सुगममेव, नवरं 'उक्खेवो' ति उपक्षेपः-उपोद्घातः तृतीयाध्ययनस्य वाच्यः, स चायम्—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया जाव सम्पत्तेणं उवासगदसाणं दोच्चस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते तच्चस्स णं भंते ! अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ? इति, कण्ठ्यश्चायम् ॥ तथा क्वचित्कोष्ठकं चैत्यमधीतं क्वचिन्महाकामवनमिति, श्यामा नाम भार्या (सू० २७)

टीकार्थः—अब तीसरे अध्ययन का अर्थ कहते हैं—'उक्खेवो' उपोद्घात—जंबूस्वामी ने कहा हे भगवन् ! निर्वाणपद को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी ने उपासक दशा सूत्र के दूसरे अध्ययन का अर्थ इस प्रकार कहा। अब हे भगवन् ! तीसरे अध्ययन का अर्थ श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामीने किस प्रकार कहा ? इत्यादि पूर्ववत् समझना। कहीं श्रमण भगवान् श्रीमहावीर

स्वामी के पधारने का स्थान कोष्ठक नामक यक्ष का चैत्य और कहीं महाकामवन नाम का उद्यान बतलाया है। श्यामा नामकी चूलणीपिता की स्त्री थी ॥ २७ ॥

सूत्रम्—तए णं तस्स चुलणीपियस्स समणोवासयस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि एगे देवे अंतियं पाउब्भूए तए णं से देवे एगं नीलुप्पल जाव असिं गहाय चुलणीपियं समणोवासयं एवं वयासी—हं भो चुलणीपिया! समणोवासया जहा कामदेवो जाव न भज्जासि तो ते अहं अज्ज जेट्ठं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेमि २ त्ता तव अग्गओ घाएमि २ त्ता तओ मंससोल्ले करेमि २ त्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेमि २ त्ता तव गायं मंसेण य सोणिएण य आयंचामि, जहा णं तुमं अट्टदुहट्टवसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जासि, तए णं से चुलणीपिया समणोवासए तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव विहरइ।

अर्थः—एक दिन चूलणीपिता श्रमणोपासक को ध्यान से चलायमान करने के लिये, उसके पास मध्यरात्रिके समय एक मायावी और मिथ्यादृष्टि देव बड़ा भयंकर पिशाच का रूप लेकर आया और हाथ में निलोत्पल जैसी तलवार लेकर, भृकुटी चढाकर, क्रोधपूर्वक चूलणीपिता श्रमणोपासक को कहने लगा—"हे दूरंत प्रांत लक्षणवाले! अप्रार्थित के प्रार्थी! ह्री श्री धृति और कीर्त्ति से रहित! मोक्ष के अभिलाषी चूलणीपिता श्रमणोपासक! जो

तूं तेरे शीलव्रत और गुणव्रतों को नहीं छोडेगा तो मैं आज तेरे बडे पुत्रको तेरे घरसे लाकर तेरे सामने उसका वध करूंगा और उसके मांसके टुकडे २ करके गरम तेल की कडाही में तलूंगा और यही मांस लोहू तेरे शरीर पर छींटकुंगा, जिसे तूँ आर्त्तध्यान करता हुआ दुःखी होकर अकालमें ही मृत्यु पावेगा।" इस प्रकार देवने कहा, परंतु चूलणीपिता श्रमणोपासक डरा नहीं, चलायमान हुआ नहीं और अपना धर्मध्यान में स्थिर रहा।

टीका:—'तओ मंससोल्ले' त्ति त्रीणि मांसशूल्यकानि शूले पच्यन्ते इति शूल्यानि, त्रीणि मांसखण्डानीत्यर्थः, 'आदाणभरियंसि' त्ति आदाणम्—आद्रहणं यदुदकतैलादिकमन्यतरद्रव्यपाकायाग्नावुत्ताप्यते तद्भृते, 'कडाहंसि' त्ति कटाहे--लोहमयभाजनविशेषे, आद्रहयामि--उत्क्वाथयामि 'आयञ्चामि' त्ति आसिञ्चामि ॥

टीकार्थः—'तओ मंससोल्ले' मांस के तीन २ टूकडे को शूली पर पकाना। 'आदाणभरियंसि' भरे हुए पाणी तेल या अन्य कोई द्रव्य को पकाने के लिये 'कडाहंसि' लोहेकी बडी कडाही को अग्नि पर गरम करना। 'आयंचामि' तेल में भुंजे हुए तेल युक्त मांसके टूकडे को शरीर पर छींटकुंगा।

सूत्रम्—तए णं से देवे चुलणीपियं समणोवासयं अभीयं जाव पासइ २ त्ता दोच्चंपि तच्चंपि चुलणीपियं समणोवासयं एवं वयासी—हं भो चुलणीपिया समणोवासया! तं चेव भणइ, सो जाव विहरइ। तए णं से देवे चुलणीपियं समणोवासयं अभीयं जाव पासित्ता आसुरुत्ते ४ चुलणीपियस्स समणोवासयस्स जेट्ठं पुत्तं

गिहाओ नीणेइ २ त्ता अग्गओ घाएइ २ त्ता तओ मंससोल्लए करेइ २ त्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेइ २ त्ता चुलणीपियस्स समणोवासयस्स गायं मंसेण य सोणियेण य आयंचइ, तए णं से चुलणीपिया समणोवासए तं उज्जलं जाव अहियासेइ ।

अर्थः—जब उस मिथ्यात्वी देवने चूलणीपिता श्रमणोपासक को निर्भय देखा, तब दो तीन वार ऊपर मुजब कहा। तो भी श्रमणोपासक धर्मध्यान से चलायमान हुआ नहीं। जिसे अत्यंत क्रोधित होकर, चूलणीपिता श्रमणोपासकके बड़े पुत्रको घरसे लाकर, उसके सामने ही मारडाला और उसके मांसके टूकडे २ करके तेलकी गरम कडाही में डालकर भूँजे, तथा चूलणीपिता श्रमणोपासक के शरीर पर वे गरम २ मांस के टूकडे डाले जिसे चूलणीपिता श्रमणोपासक के शरीर में बडी तीव्र वेदना हुई, उसको समभावसे शांति पूर्वक सहन करली, परंतु अपना व्रत नियम से लेशमात्र भी चलायमान नहीं हुआ।

सूत्रम्—तए णं से देवे चुलणीपियं समणोवासयं अभीयं जाव पासइ २ त्ता दोच्चंपि चुलणीपियं समणोवासयं एवं वयासी—हं भो चूलणीपिया समणोवासया ! अपत्थियपत्थया जाव न भज्जसि तो ते अहं अज्ज मज्झिमं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेमि २ त्ता तव अग्गओ घाएमि जहा जेट्ठं पुत्तं तहेव भणइ तहेव करेइ, एवं तच्चंपि कणीयसं जाव अहियासेइ ।

अर्थः—तब वह देव चूलणीपिता श्रमणोपासक को निर्भय देखकर उसको दूसरी वार भी क्रोधित होकर कहने लगा कि—हे चूलणीपिता श्रमणोपासक ! अप्रार्थित के प्रार्थी जो तूँ आज तेरे व्रतों का भंग न करेगा तो मैं तेरे मध्यम पुत्र को तेरे घरसे लाकर तेरे सामने मार डालूंगा और उसके मांस के टूकडे २ बना कर तेलकी गरम कडाही में भून कर, वही लोहू मांस तेरे शरीर पर छींटकुंगा। इस प्रकार तीन वार कहने पर भी चूलणीपिता श्रमणोपासक अपने व्रत नियमों से चलायमान हुआ नहीं। तब मध्यम पुत्रको लाकर उसके शरीर के टूकडे २ कर डाले और तेलकी कडाही में भून कर वही लोहू मांस चूलणीपिता के शरीर पर छींटके, जीससे उसको तीव्र वेदना हुई, उसको समभावसे सहन करली, परंतु धर्मध्यानसे चलायमान हुआ नहीं। तब इसी प्रकार सबसे छोटे पुत्रको भी मार कर, शरीर के टूकडे २ कर तेलकी कडाही में भूंजे, और चूलणीपिता श्रमणोपासक के शरीर पर छींटके, जिससे तीव्र वेदना हुई, उसको भी सहन करली, परंतु धर्मध्यानसे लेशमात्र भी चलायमान नहीं हुआ।

चूलणी-पिता को उपसर्ग

सूत्रम्—तए णं से देवे चुलणीपियं समणोवासयं अभीयं जाव पासइ २ त्ता चउत्थं पि चुलणीपियं समणोवासयं एवं वयासी—हं भो चुलणीपिया समणोवासया ! अपत्थियपत्थिया ४ जइ णं तुमं जाव न भज्जसि तओ अहं अज्ज जा इमा तव माया भद्दा सत्थवाही देवयगुरुजणणी दुक्करदुक्करकारिया तं ते साओ

इसको पकड लेना चाहिये ।'

सूत्रम्—तिकट्टु उद्धाइए, सेऽवि य आगासे उप्पइए, तेणं च खंभे आसाइए, महया महया सद्देणं कोलाहले कए । तए णं सा भद्दा सत्थवाही तं कोलाहलसद्दं सोच्चा निसम्म जेणेव चुलणीपिया समणोवासए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता चुलणीपियं समणोवासयं एवं वयासी—किण्णं पुत्ता ! तुमं महया महया सद्देणं कोलाहले कए । तए णं से चुलणीपिया समणोवासए अम्मयं भद्दं सत्थवाहिं एवं वयासी ।

५ अर्थः—इस प्रकार विचार करके देवको पकडने के लिये उठा, इतने में वह देव शीघ्र ही आकाशमें उड गया और चूलणीपिता के हाथमें एक मात्र खंभा आया । जिससे उसने बडे २ शब्दों से कोलाहल किया । यह कोलाहल शब्द सुनकर भद्रा सार्थवाही ऊठ कर चूलणीपिता श्रमणोपासक के पास आयी और कहने लगी—हे पुत्र ! बडे २ शब्दो से तूं क्यों कोलाहल करता है ? तब चूलणीपिता श्रमणोपासक अपनी माता भद्रा सार्थवाहिनी को कहने लगा ।

सूत्रम्—एवं खलु अम्मो ! न जाणामि केवि पुरिसे आसुरुत्ते ५ एगं महं नीलुप्पल जाव असिं गहाय ममं एवं वयासी-हं भो चुलणीपिया समणोवासया ! अपत्थियपत्थिया ४ जइ णं तुमं जाव ववरो-

विज्जासि। अहं तेणं पुरिसेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव विहरामि। तए णं से पुरिसे ममं अभीयं जाव विहरमाणं पासइ २ त्ता ममं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी–हं भो चुलणीपिया समणोवासया! तहेव जाव गायं आयंचइ। तए णं अहं तं उज्जलं जाव अहियासेमि। एवं तहेव उच्चारेयव्वं सव्वं जाव कणीयसं जाव आयंचइ। अहं तं उज्जलं जाव अहियासेमि। तए णं से पुरिसे ममं अभीयं जाव पासइ २ त्ता ममं चउत्थंपि एवं वयासी–हं भो चुलणीपिया समणोवासया! अपत्थियपत्थया जाव न भज्जसि तो ते अज्ज जा इमा माया गुरु जाव ववरोविज्जासि। तए णं अहं तेणं पुरिसेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव विहरामि।

चूलणी-पिता चलायमान

अर्थ—हे माता! मैं नहीं जानता हूँ कि कोई अनजान अनार्य पुरुष क्रोधित होकर, निलोत्पल जैसी तीक्ष्ण तलवार हाथ में लेकर मेरे को कहने लगा कि—'हे चुलणीपिता श्रमणोपासक! अप्रार्थित के प्रार्थी तूँ आज तेरे व्रतों को न छोड़ेगा तो मैं तेरे बड़े पुत्र को तेरे सामने मारकर उसके मांस को तेल की कडाही में उबाल कर तेरे शरीर पर छींटकूंगा, जिसे तूँ आर्त्तध्यान पूर्वक दुःखी होकर अकाल में ही मर जायगा। ऐसा उसका वचन सुनकर मैं डरा नहीं, किन्तु धर्मध्यान में लवलीन रहा। मेरे को निर्भय जानकर फिर उस अनार्य पुरुषने दो तीन बार उक्त वचन कहे तो भी मैं लेशमात्र भी चलायमान नहीं हुआ। तब इसने जैसा कहा वैसा किया—मेरे ज्येष्ठ,

मध्यम और कनिष्ठ तीनों पुत्रों को मेरे सामने मारकर उनका मांस तेल की कडाही में उबाल कर मेरे शरीर पर छींटका, जिसे मेरे को असह्य वेदना हुई, उसको समभावसे सहन कर ली. तो भी मैं धर्मध्यान से चलायमान न हुआ। तब उस पुरुषने मेरे को निर्भय जानकर चौथी बार कहने लगा—हे चूलणीपिता श्रमणोपासक! अप्रार्थित के प्रार्थी अब भी तूँ तेरे व्रतनियमों को न छोडेगा तो तेरे लिये असह्य दुःख सहन करने वाली तेरी माता भद्रा सार्थवाहिनी को भी तेरे सामने मारकर उसके मांस को तेलकी कडाही में उबालकर तेरे शरीर पर छींटकुंगा। जिससे तूँ असह्यवेदना सहन करता हुआ अकाल में ही मर जायगा। इस प्रकार कहने पर भी मैं ध्यान से चलायमान नहीं हुआ।

सूत्रम्—तए णं से पुरिसे दोच्चंपि तच्चंपि ममं एवं वयासी-हं भो चुलणीपिया समणोवासया! अज्ज जाव ववरोविज्जसि। तए णं तेणं पुरिसेणं दोच्चंपि तच्चंपि ममं एवं वुत्तस्स समाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए ५ अहो णं इमे पुरिसे अणारिए जाव समायरइ। जेणं ममं जेट्ठं पुत्तं साओ गिहाओ तहेव जाव कणीयसं जाव आयंचइ। तुब्भेऽवि य णं इच्छइ साओ गिहाओ नीणेत्ता मम अग्गओ धाएत्तए, तं सेयं खलु ममं एयं पुरिसं गिण्हित्तएत्तिकट्टु उद्धाइए। सेऽवि य आगासे उप्पइए। मएऽवि य खंभे आसा-

इए महया महया सद्देणं कोलाहले कए ।

अर्थ—तब यही वचन दो तीन वार मुझे कहे, तब मेरे को विचार हुआ कि—यह पुरुष अनार्य है, अनार्य पाप करने वाला है, इसने मेरे तीनों पुत्रों को मेरे सामने मारडाले और इन्होंके मांस को तेल की कड़ाही में उबाल कर मेरे शरीर पर छींटके । अब चौथी वार मेरे लिये असह्य कष्ट सहन करने वाली मेरी माता भद्रा सार्थवाहिनी को भी मारने के लिये तैयार हुआ है । इसलिये इस पुरुष को पकड़ लेना चाहिये । ऐसा विचार करके मैं उसको पकडने के लिये उठा, इतने में वह पुरुष आकाश में उड गया और मेरे हाथ में एक खंभा आया, जिससे मैंने बडे २ शब्दोंसे कोलाहल किया ।

चूलणीपिता को अपनी माता का उपदेश

सूत्रम्—तए णं सा भद्दा सत्थवाही चुलणीपियं समणोवासयं एवं वयासी–नो खलु केई पुरिसे तव जाव कणीयसं पुत्तं साओ गिहाओ निणेइ २ त्ता तव अग्गओ घाएइ । एस णं केइ पुरिसे तव उवसग्गं करेइ । एस णं तुमे विदरिसणे दिट्ठे, तं णं तुमं इयाणिं भग्गव्वए भग्गनियमे भग्गपोसहे विहरसि । तं णं तुमं पुत्ता ! एयस्स ठाणस्स आलोएहि जाव पडिवज्जाहि । तए णं चुलणीपिया समणोवासए अम्मगाए भद्दाए सत्थवाहीए तहत्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ २ त्ता तस्स ठाणस्स आलोएइ जाव पडिवज्जइ ॥ सू० २८ ॥

अर्थ—तब माता भद्रा सार्थवाहिनी चूलणीपिता श्रमणोपासक को कहने लगी कि—हे पुत्र ! कोई भी पुरुषने तेरे कोई भी पुत्र को घरसे लाकर तेरे सामने मारा नहीं है, एवं कोई भी पुरुष तेरे को दुःख देने के लिये यहां आया नहीं है। तुमने कोई भयानक दृश्य देखा है या कोई मिथ्यात्वी देवी देवने तेरी परीक्षा करने के लिये ऐसा भयानक दृश्य बतलाया होगा। जिसे तूँ तेरे व्रत नियम पौषध से चलायमान हुआ है। इसलिये हे पुत्र ! तूँ इन दोषों का प्रायश्चित करके और व्रत पौषध को फिर स्वीकार करके जिस प्रकार धर्मध्यान में रहता था उसी प्रकार रह। इस प्रकार के माता भद्रा सार्थवाहिनी के वचनों को चूलणीपिता श्रमणोपासकने विनय पूर्वक स्वीकार किये और अपने भंग किये हुए व्रतों का प्रायाश्चित करके एवं व्रतों को फिर स्वीकार करके पहले की तरह रहने लगा ॥ २८ ॥

टीकाः—'एस णं तए विदरिसणे दिट्ठे' त्ति एतच्च त्वया विदर्शनं-विरूपाकारं विभीषिकादि दृष्टम्-अवलोकितमिति, 'भग्गव्वए' त्ति भग्नव्रतः, स्थूलप्राणातिपातविरतेर्भावतो भग्नत्वात्, तद्विनाशार्थं कोपेनोद्धावनात् सापराधस्यापि व्रताविषयीकृतत्वात्, 'भग्ननियमः' कोपोदयेनोत्तरगुणस्य क्रोधाभिग्रहरूपस्य भग्नत्वात्, 'भग्नपौषधः' अव्यापारपौषधभङ्गत्वात्, 'एयस्स' त्ति द्वितीयार्थत्वात् षष्ठयाः, एतमर्थमालोचय-गुरुभ्यो निवेदय, यावत्करणात् पडिकमाहि-निवर्त्तस्व, निन्दाहि-आत्मसाक्षिकां कुत्सां कुरु, गरिहाहि-गुरुसाक्षीकां कुत्सां विधेहि, विउट्टाहि-वित्रोटय तद्भावानुबन्धच्छेदं विधेहि, विसोहेहि-अतिचारमलक्षालनेन अकरणयाए अब्भुट्ठेहि-

तदकरणाभ्युपगमं कुरु, 'अहारिहं तवोकम्मं पायच्छित्तं पडिवज्जाहि' त्ति प्रतीतं, एतेन च निशीथादिषु गृहिणं प्रति प्रायश्चित्तस्याप्रतिपादनान्न तेषां प्रायश्चित्तमस्तीति ये प्रतिपद्यन्ते तन्मतमपास्तं, साधूद्देशेन गृहिणोऽपि प्रायश्चित्तस्य जीवितव्यवहारानुपातित्वात् (सू. २८)

टीकार्थः—'एस णं तए विदरिस णे दिट्ठे' अपनी भद्रानामक माता ने कहा कि तुमने भयंकर स्वरूप देखा है, जिसे तुम भग्नव्रत वाले हुए हो। स्थूल प्राणातिपात विरमण को तुमने भावसे भंग किया है, भयंकर स्वरूप को क्रोधपूर्वक मारने दोडा जिससे व्रतका भंग हुआ क्योंकि अपराधी को भी मारना व्रतका विषय नहीं है, इसलिये 'भग्ननियम' क्रोधके उदयसे उत्तरगुणका भंग हुआ, एवं 'भग्नपौषध' अव्यापारपौषध व्रतका भी भंग हुआ, इसलिये उसकी आलोचना करो और गुरु के आगे पापों को निवेदन करके उसका प्रायश्चित करो आत्मसाक्षी से उस पापकी निंदा करो तथा गुरु के आगे विशेष निंदा करो, अतिचाररूपमलको साफ करके व्रतको शुद्ध करो, फिर दोष न लगे ऐसा करो, यथार्थ तपकर्मरूप प्रायश्चित लेओ। मूल सूत्रमें गृहस्थी को प्रायश्चित का अधिकारी बतलाया है, इसलिये निशीथ आदि सूत्रोंमें जो गृहस्थी के लिये प्रायश्चित का अधिकारी कहा नहीं है यह मान्यता व्यर्थ होजाती है। साधु की तरह गृहस्थी भी प्रायश्चित का अधिकारी है ऐसा जीतव्यवहार सूत्र में कहा है ॥ २८ ॥

सूत्रम्—तए णं से चुलणीपिया समणोवासए पढमं उवासगपडिमं उवसंपाज्जित्ता णं विहरइ। पढमं उवासगपडिमं अहासुत्तं जहा आणंदो जाव एक्कारसवि। तए णं से चुलणीपिया समणोवासए तेणं उरालेणं जहा कामदेवो जाव सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडिंसगस्स महाविमाणस्स उत्तरपुरच्छिमेणं अरुणप्पभे विमाणे देवत्ताए उववन्ने चत्तारि पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता। महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ ५ निक्खेवो ॥ सू० २९ ॥

चूलणीपिता को अपनी माता का उपदेश

सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं तइयं अज्झयणं समत्तं ॥ ३ ॥

अर्थ—अब चूलणीपिता श्रमणोपासक प्रथम उपासक प्रतिमा को ग्रहण करके रहने लगा। इस प्रकार आनंद श्रमणोपासक की तरह क्रमशः ग्यारह प्रतिमाओं की अच्छी तरह आराधना की। अंतमें चूलणीपिता कामदेव श्रमणोपासक की तरह अपश्चिममारणांतिक संलेषणा करके, समाधि पूर्वक कालधर्म प्राप्तकर सौधर्म देवलोक में सौधर्म नामके बड़े विमान की ईशान कोणमें अरुणप्रभ नामके विमान में देव हुआ। वहां चूलणीपिता देव चार पल्योपम का आयुष्य भोगकर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध बुद्ध और मुक्त होंगे ॥ २९ ॥

चूलणीपिता देवलोक गया

॥ इति श्री उपासकदशासूत्र का तीसरा अध्ययन संपूर्ण ॥ ३ ॥

---

* अथ चतुर्थमध्ययनम् *

सूत्रम्—उक्खेवओ चउत्थस्स अज्झयणस्स एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणारसी नामं नयरी, कोट्ठए चेइए, जियसत्तू राया, सुरादेवे गाहावई अड्ढे छ हिरण्णकोडीओ जाव छ वया दसगोसा-

हस्सिएणं वएणं, धन्ना भारिया, सामी समोसढे, जहा आणंदो तहेव पडिवज्जइ गिहिधम्मं, जहा कामदेवो जाव समणस्स भगवओ महावीरस्स धम्मपण्णत्तिं उवसंपाजित्ता णं विहरइ ॥ सू० ३० ॥

अर्थ—अब चौथे अध्ययन का उपोद्घात कहते हैं—हे जम्बू! उस काल और उस समय में वाराणसी नामकी नगरी थी, उस के कोष्ठक वन नाम के उद्यान में कोष्ठक नाम के यक्षका चैत्य था। उस नगरी में जित-शत्रु नाम का राजा राज्य करता था, तथा सुरादेव नाम का समृद्धिवाला गृहपति अपनी धन्ना भार्या के साथ रहता था। उसके पास छह हिरण्यकोटी धन भंडार में, छह हिरण्यकोटी धन व्यापार में और छह हिरण्यकोटी धन घर खर्च के लिये था। तथा दश हजार गौका एक व्रज, ऐसे छह व्रज थे। उस वाराणसी नगरी के कोष्ठक यक्षके चैत्य में एक समय श्रमण भगवान् श्रीमहावीरस्वामी पधारे। पर्षदा वंदन के लिये आई, एवं सुरादेव गृहपति भी बड़े आडंबर के साथ वंदन के लिये आया श्रमण भगवान से धर्मकथा सुनकर पर्षदा वापीस गई। और सुरादेव गृहपतिने आनंद श्रमणोपासक की तरह गृहस्थी के बारह व्रतों का स्वीकार किया। पीछे आनंद और कामदेव श्रावक की तरह श्रमण भगवान श्रीमहावीरस्वामी के पाससे लिये हुए व्रतों को पालनकरने के लिये सुरादेव श्रमणोपासक अपनी पौषधशाला में जाकर ब्रह्मचर्य पूर्वक धर्मध्यान करने लगा ॥ ३० ॥

टीकाः—अथ चतुर्थमारभ्यते, तदपि सुगमं नवरं चैत्यं कोष्ठकं, पुस्तकान्तरे काममहावनं, धन्या च भार्या (सू० ३०)

टीकार्थः—अब चतुर्थ अध्ययनका अर्थ अधिक सरल ही है। इस अध्ययन में कोष्ठक नामका चैत्य बतलाया है, उसी जगह अन्य ग्रंथो में महाकामवन नामका उद्यान बतलाया है। सुरादेव श्रमणोपासक की धन्या नामकी स्त्री थी ॥ ३० ॥

सूत्रम्—तए णं तस्स सुरादेवस्स समणोवासयस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि एगे देवे अंतियं पाउब्भवित्था से देवे एगं महं नीलुप्पल जाव असिं गहाय सुरादेवं समणोवासयं एवं वयासी—हं भो सुरादेवा समणोवासया! अपत्थियपत्थिया ४ जइ णं तुमं सीलाइं जाव न भंजसि तो ते जेट्ठं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेमि २ त्ता तव अग्गओ घाएमि २ त्ता पंच सोल्लए करेमि आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेमि २ त्ता तव गायं मंसेण य सोणिएण य आयंचामि जहा णं तुमं अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि। एवं मज्झिमयं, कणीयसं, एक्केक्के पंच सोल्लया, तहेव करेइ, जहा चुलणीपियस्स, नवरं एक्केक्के पंच सोल्लया।

अर्थः—एक दिन सुरादेव श्रमणोपासक के पास मध्यरात्रि के समय एक मायावी मिथ्यादृष्टि देव व्रतसे चलायमान करने के लिये आया। और हाथमें नीलोत्पल जैसी तीक्ष्ण तलवार लेकर सुरादेव श्रमणोपासक को क्रोध पूर्वक कहने लगा कि—हे सुरादेव श्रमणोपासक! अप्रार्थितके प्रार्थी! जो तूं आज तेरे शीलव्रतादिकों को

भंग नहीं करेगा, तो मैं तेरे बडे पुत्रको तेरे सामने लाकर मार डालूंगा और उसके लोहू मांस के पांच २ टूकडे करके, तेलसे भरी कडाही में उबाल कर तेरे शरीर पर छींटकूंगा, जिससे तूँ असह्य दुःख सहन करता हुआ आर्त्त-ध्यान पूर्वक अकाल में ही मर जायगा। इस प्रकार दो तीन वार कहने पर भी सुरादेव श्रमणोपासक अपने व्रत नियमों से चलायमान न हुआ, तब चूलणीपिता श्रमणोपासक के तीनों पुत्रों की तरह सुरादेव श्रमणोपासक के ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ ये तीनों पुत्रों को मार डाले और उनके लोहू मांस को तेलकी कडाही में उबाल कर सुरादेव श्रावक के शरीर पर छींटके। जिससे उसको असह्य वेदना हुई, उसको समभाव से सहन करली। परंतु धर्मध्यान से लेशमात्र भी चलायमान न हुआ।

सुरादेव को उपसर्ग

सूत्रम्—तए णं से देवे सुरादेवं समणोवासयं चउत्थंपि एवं वयासी–हं भो सुरादेवा! समणोवासया! अपत्थियपत्थिया ४ जाव न परिच्चयसि तो ते अज्ज सरीरंसि जमगसमगमेव सोलस रोगायंके पक्खिवामि तं जहा–सासे कासे जाव कोढे जहा णं तुमं अट्टदुहट्ट जाव ववरोविज्जसि। तए णं से सुरादेवे समणोवासए जाव विहरइ। एवं देवो दोच्चंपि तच्चंपि भणइ जाव ववरोविज्जसि।

अर्थ:—जब सुरादेव श्रमणोपासक धर्मध्यान से चलायामन हुआ नहीं, तब वह मायावी देव चौथी वार कहने लगा कि—हे सुरादेव श्रमणोपासक ! अप्रार्थित के प्रार्थी अब भी तूँ तेरे व्रतोंका भंग न करेगा तो मैं आज तेरे शरीर में एक साथ सोलह प्रकार के रोगों को प्रक्षेप करूंगा। जिससे तूँ असह्य वेदना सहन करता हुआ आर्त्तध्यान पूर्वक दुःखी होकर अकाल में ही मर जायगा। ऐसा वचन सुनकर सुरादेव श्रमणोपासक लेशमात्र भी चलायमान हुआ नहीं, तब देवने उक्त वचन दो तीन वार कहे।

टीका:—'जमगसमगं' ति यौगपद्येनेत्यर्थः, 'सासे' इत्यादौ यावत्करणादिदं दृश्यं–सासे १ कासे २ जरे ३ दाहे ४ कुच्छिसूले ५ भगन्दरे ६। अरिसा ७ अजीरए ८ दिट्ठी ९ मुद्धसूले १० अकारए ११ ॥ १ ॥ अच्छिवेयणा १२ कण्णवेयणा १३ कण्डू १४ उदरे १५ कोढे १६ ॥' अकारकः—अरोचकः ॥ (सू. ३१)

टीकार्थः—'जमगसमगं' एक साथ श्वास १, खांसी २, ज्वर ३, दाह ४, कुक्षीशूल ५, भगंदर ६, बवासीर ७, अजीर्ण ८, दृष्टी शूल ९, मस्तकशूल १०, अरोचक ११, आंखकी वेदना १२, कानकी वेदना १३, खाज १४, उदररोग १५ और कोढ १६ ये सोलह प्रकारके रोग उत्पन्न किये ॥ ३१ ॥

सूत्रम्—तए णं तस्स सुरादेवस्स समणोवासयस्स तेणं देवेणं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्तस्स समाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए ४ अहो णं इमे पुरिसे अणारिए जाव समायरइ। जेणं ममं जेट्ठं पुत्तं जाव कणीयसं

जाव आयंचइ । जेऽवि य इमे सोलह रोगायंका तेऽवि य इच्छइ मम सरीरगंसि पक्खिवित्तए । तं सेयं खलु ममं एयं पुरिसं गिण्हित्तए त्तिकट्टु उद्धाइए, सेऽवि य आगासे उप्पइए, तेण य खंभे आसाइए महया महया सद्देणं कोलाहले कए ।

अर्थः—देवका उक्त वचन दो तीन वार सुन कर सुरादेव श्रमणोपासक विचारने लगा कि—"यह कोई अनार्य पुरुष है, अनार्य पाप करने वाला है, इसने मेरे तीनों पुत्रों को मेरे सामने मारडाले, अब मेरे शरीर में सोलह प्रकार के रोग एक साथ प्रक्षेप करना चाहता है, इसलिये इस अनार्य को पकडलेना अच्छा है।" ऐसा विचार करके देवको पकडने के लिये उठा, इतने में वह देव तत्काल आकाश में उडगया और सुरादेव श्रमणोपासक के हाथ में एक खंभा आया, जिसे उसने बडा कोलाहल शब्द किया ।

सुरादेव को उपसर्ग

सूत्रम्—तए णं सा धन्ना भारिया कोलाहलं सोच्चा निसम्म जेणेव सुरादेवे समणोवासए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता एवं वयासी—किण्णं देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं महया महया सद्देणं कोलाहले कए ?, तए णं से सुरादेवे समणोवासए धन्नं भारियं एवं वयासी॥ एवं खलु देवाणुप्पिए ! केऽवि पुरिसे तहेव कहइ जहा चुलणीपिया । धन्नाऽवि पडिभणइ जाव कणीयसं । नो खलु देवाणुप्पिया ! तुब्भं केऽवि पुरिसे सरीरंसि

जमगसमगं सोलस रोगायंके पक्खिवइ, एस णं केऽवि पुरिसे तुब्भं उवसग्गं करेइ ! सेसं जहा चुलणीपियस्स तहा भणइ । एवं सेसं जहा चुलणीपियस्स निरवसेसं जाव सोहम्मे कप्पे अरुणकंते विमाणे उववन्ने। चत्तारि पलिओवमाइं ठिई । महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ ५ । निक्खेवो ॥ सू० ॥ ३१ ॥

॥ सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं चउत्थं अज्झयणं समत्तं ॥ ४ ॥

सुरादेव को उपसर्ग

अर्थः—कोलाहल शब्द सुनकर उसकी धन्या भार्या सुरादेव श्रमणोपासक के पास आई और कहने लगी कि—'हे देवानुप्रिय ! आपने बडे २ शब्दों से कोलाहल क्यों किया ?' तब सुरादेव श्रमणोपासक ने धन्ना भार्या को बीती हुई सब हकीकत कह सुनाई । तब धन्या भार्या बोली कि—" यहां कोई पुरुष आया नहीं है, किसी ने भी आपके पुत्रों को मारे नहीं हैं। एवं काई भी आपके शरीर में सोलह प्रकारके रोग प्रक्षेप नहीं कर सकता। आपने कोई भयानक दृश्य देखा होगा। जिससे आप अपने व्रत नियमों से चलायमान हुए हैं। इसलिये उसकी आलोचना प्रायश्चित करके और व्रतों को फिर स्वीकार करके, जैसे रहते थे वैसे धर्मध्यान में स्थिर रहो।" सुरादेव श्रमणोपासक ने अपनी धन्या भार्या की बात विनय पूर्वक स्वीकार ली और चूलणीपिता की तरह प्रायश्चित लेकर पहले की तरह धर्मध्यान में रहने लगा। पीछे चूलणीपिता श्रमणोपासक की तरह सुरादेव श्रमणोपासक ने श्रावक

की ग्यारह प्रतिमाओं का अच्छी तरह आराधन किया, तथा अंत में अपश्चिममारणांतिक संलेखना करके, समाधिपूर्वक कालधर्म प्राप्त किया और सौधर्म देवलोक में अरुणकांत नाम के विमान में चार पल्योपमके आयुष्यवाला देव हुआ। वहां से च्यव कर महाविदेह क्षेत्रमें जन्म लेकर सिद्ध बुद्ध और मुक्त होंगे ॥ ३१ ॥

॥ इति श्री उपासकदशा का चौथा अध्ययन संपूर्णम् ॥ ४ ॥

❋ अथ पंचममध्ययनम् ❋

---

५ चुल्लशतक का अधिकार

सूत्रम्—एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं आलभिया नामं नगरी, संखवणे उज्जाणे, जियसत्तू राया, चुल्लसयए गाहावई अड्ढे जाव छ हिरण्णकोडीओ जाव छ वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं बहुला भारिया सामी समोसढे, जहां आणंदो तहा गिहिधम्मं पडिवज्जइ सेसं जहा कामदेवो जाव धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ॥ सू० ॥ ३२ ॥

अर्थः—अब पांचवें अध्ययनका उपोद्घात कहते हैं—हे जंबू ! उस काल उस समयमें आलभिका नाम की नगरी थी। वहां शंखवन नाम का उद्यान था। उस नगरी में जितशत्रु राजा राज्य करता था और चुल्लशतक नामका बडी ऋद्धिवाला गृहपति अपनी बहुला भार्या के साथ रहता था। उसके पास छह हिरण्यकोटी धन भंडारमें, छह हिरण्यकोटी धन व्यापार में और छह हिरण्यकोटी धन घर खर्च के लिये था। तथा दश हजार गोका एक व्रज ऐसे छह व्रज भी थे। एक समय श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामी विहार करते हुए शंखवन उद्यान में पधारे। पर्षदा और चुल्लशतक गृहपति भी वंदन के लिये गये। भगवान् का धर्मोपदेश श्रवण करके चुल्लशतक गृहपतिने आनंद श्रमणोपासक की तरह गृहस्थधर्म का स्वीकार किया। पीछे कामदेव श्रमणोपासककी तरह अपनी पौषधशाला में जाकर ब्रह्मचर्य पूर्वक धर्मध्यान करने लगा ॥ ३२ ॥

सूत्रम्—तए णं तस्स चुल्लसयगस्स समणोवासयस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि एगे देवे अंतिअं जाव असिं गहाय एवं वयासी–हं भो चुल्लसयगा समणोवासया ! जाव न भंजसि तो ते अज्ज जेट्ठं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेमि, एवं जहा चुलणीपियं। नवरं एक्केक्के सत्त मंससोल्लया जाव कणीयसं जाव आयंचामि। तए णं से चुल्लसयए समणोवासए जाव विहरइ।

अर्थः—एक दिन मध्यरात्रि के समय चुल्लशतक श्रमणोपासक के पास व्रतसे चलायमान करने के लिये एक मायावी मिथ्यात्वी देव आया और हाथ में नीलोत्पल जैसी तलवार लेकर कहने लगा–हे चुल्लशतक श्रमणोपासक ! आज तूँ तेरे व्रत नियमों को भंग न करेगा तो मैं इसी तलवार से तेरे ज्येष्ठ, मध्यम और कानिष्ठ ये तीनों पुत्रों को तेरे घर से लाकर, तेरे सामने मार डालूंगा और उनके शरीर के सात २ टूकडे करके तेलकी कडाही में उबालकर तेरे शरीर पर छींटकूंगा, जिससे तूँ असह्य वेदना सहन करता हुआ दुःखी होकर आर्त्तध्यान पूर्वक अकालमें ही मर जायगा। इस प्रकार दो तीन वार उक्त वचन कहे, जब चुल्लशतक श्रमणोपासक अपने धर्मध्यान से चलायमान हुआ नहीं, तब देवने उसके तीनों पुत्रों को उसके सामने मार डाले और प्रत्यक के शरीर के सात २ टूकडे करके तेल की कड़ाही में उबाले और चुल्लशतक के शरीर पर छींटके जिससे उसको असह्य वेदना हुई, उसको समभाव से सहन कर लीं, परन्तु अपने धर्मध्यान से चलायमान हुआ नहीं।

सूत्रम्—तए णं से देवे चुल्लसयगं समणोवासयं चउत्थंपि एवं वयासी–हं भो चुल्लसयगा ! समणोवासया ! जाव न भंजसि तो ते अज्ज जाओ इमाओ छ हिरण्णकोडीओ निहाणपउत्ताओ छ वुड्ढिपउत्ताओ छ पवित्थरपउत्ताओ ताओ साओ गिहाओ नीणेमि २ त्ता आलभियाए नयरीए सिंघाडग जाव पहेसु सव्वओ

समंता विप्पइरामि । जहा णं तुमं अट्टदुहट्टवसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि । तए णं से चुल्लसयए समणोवासए तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव विहरइ । तए णं से देवे चुल्लसयगं समणोवासयं अभीयं जाव पासित्ता दोच्चंपि तच्चंपि तहेव भणइ जाव ववरोविज्जसि ।

अर्थः—तब वह देव चुल्लशतक श्रमणोपासक को चौथी वार कहने लगा कि—हे चुल्लशतक श्रमणोपासक ! अब भी तूँ तेरे व्रत नियमों का भंग न करेगा तो तेरा छह हिरण्यकोटी धन भंडार के, छह हिरण्यकोटी धन व्यापार के और छह हिरण्यकोटी धन घर खर्च के लिये जो धन है, वह सब तेरे घरसे लाकर आलभिका नगरी से बाहर लेजाकर बिखेर देउंगा । जिससे तूँ आर्त्तध्यान करता हुआ अकालमें ही मर जायगा, इस प्रकार देवका वचन सुनकर भी चलायमान न हुआ, तब देवने दो तीन वार उक्त वचन कहे ।

सूत्रम्—तए णं तस्स चुल्लसयगस्स समणोवासयस्स तेणं देवेणं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्तस्स समाणस्स अयमेयारुवे अज्झत्थिए ४—अहो णं इमे पुरिसे अणारिए जहा चुलणीपिया तहा चिंतेइ जाव कणीयसं जाव आयंचइ । जाओऽवि य णं इमाओ ममं छ हिरण्णकोडीओ निहाणपउत्ताओ छ वुड्ढिपउत्ताओ छ पवित्थरपउत्ताओ ताओऽवि य णं इच्छइ ममं साओ गिहाओ नीणेत्ता आलभियाए नयरीए सिंघाडग

जाव विप्पडरित्तए । तं सेयं खलु ममं एयं पुरिसं गिण्हित्तए त्तिकट्टु उद्धाइए जहा सुरादेवो तहेव भारिया पुच्छइ तहेव कहेइ ॥ सू० ३३ ॥

चुलशतक को उपसर्ग

अर्थः—देवका उक्त वचन दो तीन वार सुनकर चुलशतक श्रमणोपासक विचारने लगा कि—"यह कोई अनार्य पुरुष है, अनार्य पाप करनेवाला है, इसने मेरे तीनों पुत्रों को मेरे आगे मारडाले, अब मेरा छह हिरण्य-कोटी धन भंडार में, छह हिरण्यकोटी धन व्यापार में और छह हिरण्यकोटी धन घर खर्च के लिये है, उसको भी अब आलंभिका नगरी के बाहर बिखेर देना कहता है, इस लिये अब इसको पकड लेना अच्छा है।" ऐसा विचार करके चूलणीपिता की तरह देवको पकडने के लिये उठा, उतने में वह देव आकाश में उड गया और हाथ में एक खंभा आया। जिससे उसने बड़ा कोलाहल मचा दिया। यह कोलाहल सुन कर उसकी बहुला भार्या उठ कर वहां आयी और कोलाहल करने का कारण पूछा। तब चुलशतक श्रमणोपासक ने उसको अपनी बीती हुई सब बात कह सुनाई। यह सुन कर धन्या भार्या की तरह बहुला भार्या ने भी कहा कि—यहां कोई आया नहीं है, तेरे तीनों पुत्र कुशल हैं, आपने कोई भयानक दृश्य देखा होगा, जिससे आप अपना व्रत नियमों से चलायमान होगये हैं, इसलिये इसका प्रायश्चित करो और फिर व्रत ग्रहण करके पूर्ववत् धर्मध्यान में लवलीन रहो। चुलशतक श्रमणोपासक ने अपनी बहुला भार्या की बात विनय पूर्वक स्वीकार ली और प्रायश्चित लेकर फिर पौषधोपवास व्रत

लिया और पहले की तरह धर्मध्यान में रहने लगा ॥ ३३ ॥

सूत्रम्—सेसं जहा चुलणीपियस्स जाव सोहम्मे कप्पे अरुणसिट्ठे विमाणे उववन्ने, चत्तारि पलिओवमाइं ठिई। सेसं तहेव जाव महाविदेहे वासे सिज्झिहिई ॥५॥ निक्खेवो ॥ सू० ३४ ॥

॥ इइ सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं पंचमं अज्झयणं समत्तं ॥

अर्थः—आनंद श्रमणोपासक की तरह चुल्लशतक श्रमणोपासक ने भी ग्यारह प्रतिमाओं की अच्छी तरह आराधना की और अंतमें अपश्चिम मारणांतिक संलेखना करके समाधि पूर्वक कालधर्म प्राप्त किया और अरुणसिद्ध विमान में देव भवमें उत्पन्न हुआ। वहां चार पल्योपम का आयुष्य पूर्ण करके वहाँ से च्यव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा और सिद्ध बुद्ध और मुक्त होवेगा ॥ ३४ ॥

॥ इति श्री उपासकदशा सूत्र का पांचवाँ अध्ययन संपूर्ण ॥ ५ ॥



चुल्लशतक देवलोक में गया

॥ अथ षष्ठमध्ययनम् ॥



सूत्रम्—छट्ठस्स उक्खेवओ–एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं कंपिल्लपुरे नयरे सगस्संबवणे उज्जाणे जियसत्तू राया कुंडकोलिए गाहावई पूसा भारिया छ हिरणकोडीओ निहाणपउत्ताओ छ वुड्ढिपउत्ताओ छ पवित्थरपउत्ताओ छ वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं । सामी समोसढे, जहा कामदेवो तहा सावयधम्मं पडिवज्जइ सच्चेव वत्तव्वया जाव पडिलाभेमाणे विहरइ ॥ सू० ३५ ॥

अर्थः—अब छट्ठे अध्ययन का उपोद्घात कहते हैं--हे जम्बू ! उस काल और उस समय में कंपिलपुर नाम का नगर था और वहां सहस्राम्रवन नामका उद्यान था। उस नगर में जितशत्रु राजा राज्य करता था, तथा कुंडकोलिक नाम का बड़ी ऋद्धिवाला गाथापति अपनी पुषा नामकी भार्या के साथ रहता था। उसके पास छह हिरण्यकोटी धन भंडार में, छह हिरण्यकोटी धनव्यापार में और छह हिरण्यकोटी धन घर खर्च के लिये था। इसके उपरांत दश हजार गौका एक व्रज ऐसे छह व्रज भी थे। एक दिन श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामी विहार करते

हुए कंपिलपुर के सहस्राम्रवन नाम के उद्यान में पधारे। पर्षदा वंदन करने गई, कुंडकोलिक गाथापति भी अपने स्वजन वर्ग के साथ वंदन करने गया। श्रमण भगवान् की धर्मदेशना सुनकर, कामदेव श्रमणोपासक की तरह कुंडकोलिक गाथापतिने भी श्रावक धर्म का स्वीकार किया। पीछे उन व्रतोंका पालन करता हुआ तथा श्रमण निर्ग्रंथ निर्ग्रंथियों को दान देता हुआ रहने लगा ॥ ३५ ॥

सूत्रम्—तए णं से कुंडकोलिए समणोवासए अन्नया कयाइ पुव्वावरण्हकालसमयंसि जेणेव असोगवणिया जेणेव पुढविसिलापट्टए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता नाममुद्दगं च उत्तरिज्जगं च पुढविसिलापट्टए ठवेइ २ त्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ।

अर्थः—एक दिन कुंडकोलिक श्रमणोपासक मध्याह्न (दोपहर) के समय जहाँ अशोकवनिका नामक बगीचामें पृथ्वी शिलापट्ट (शिला) था वहां आया और उस शिला के ऊपर अपनी नामांकित मुद्रिका और उत्तरीय (दुपट्टा) वस्त्र को रख कर श्रमण भगवान श्रीमहावीर के पास ग्रहण की हुई धर्मप्रज्ञप्ति को स्वीकार करके रहने लगा।

सूत्रम्—तए णं तस्स कुंडकोलियस्स समणोवासयस्स एगे देवे अंतियं पाउब्भवित्था। तए णं से

देवे नाममुद्दं च उत्तरिज्जं च पुढविसिलापट्टयाओ गेण्हइ २ त्ता सखिंखिणिं अंतलिक्खपडिवन्ने कुंडकोलियं समणोवासयं एवं वयासी—हं भो कुंडकोलिया ! समणोवासया ! सुंदरी णं देवाणुप्पिया गोसालस्स मंखलि· पुत्तस्स धम्मपण्णत्ती—नत्थि उट्ठाणे इ वा कम्मे इ वा बले इ वा वीरिए इ वा पुरिसक्कारपरक्कमे इ वा नियया सव्वभावा, मंगुलीणं समणस्स भगवओ महावीरस्स धम्मपण्णत्ती—अत्थि उट्ठाणे इ वा जाव परक्कमे इ वा अणियया सव्वभावा।

कुंडकोलिक का और देव का विवाद

अर्थः—उस समय कुंडकोलिक समणोपासक के पास एक देव ने आकर पृथ्वीशिलापट्ट के उपर रखे हुए नाममुद्रिका और उत्तरीय वस्त्र को उठा लिये और घूंघरू का शब्द करता हुआ आकाश में रह कर कुंडकोलिक श्रमणोपासक को कहने लगा—"हे कुंडकोलिक श्रमणोपासक ! देवानुप्रिय मंखलिपुत्र गोशाला की धर्मप्रज्ञप्ति अच्छी है अर्थात् उनका कहा हुआ धर्म बहुत सुंदर है, क्योंकि उसमें उत्थान (उत्साह), कर्म, बल, वीर्य या पुरुषाकार पराक्रम नहीं है, सब पदार्थ नियत हैं, अर्थात् दैवयोग से जो होने वाला है वह होता है, ऐसा नियत भाव है। जो नहीं होने वाला है वह नहीं होता और जो होने वाला है वह विना परिश्रमसे ही हो जाता है। यदि न होने वाला होतो हाथ में रहा हुआ भी नाश हो जाता है। किंतु श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामी का कहा

हुआ धर्म अच्छा नहीं है, क्योंकि उस में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषाकार पराक्रम माने हैं, सब भाव अनियत हैं अर्थात् कोई कार्य विना किये नहीं हो सकता ऐसा अनियत भाव है।"

टीकाः—अथ षष्ठे किमपि लिख्यते—'धम्मपण्णत्ति' त्ति श्रुतधर्मप्ररूपणा दर्शनं—मतं सिद्धान्त इत्यर्थः, उत्थानं—उपविष्टः सन् यदूर्ध्वीभवति कर्म—गमनादिकं बलं—शारीरं वीर्यं—जीवप्रभवं पुरुषकारः—पुरुषत्वाभिमानः पराक्रमः—स एव सम्पादितस्वप्रयोजनः, 'इति' उपदर्शने 'वा' विकल्पे, नास्त्येतदुत्थानादि जीवानां, एतस्य पुरुषार्थाप्रसाधकत्वात्, तदसाधकत्वं च पुरुषकारसद्भावेऽपि पुरुषार्थसिद्ध्यनुपलम्भात्, एवं च नियताः सर्वभावा—यैर्यथा भवितव्यं ते तथैव भवन्ति, न पुरुषकारबलादन्यथा कर्तुं शक्यन्ते इति, आह च—"प्राप्तव्यो नियतिबलाश्रयेण योऽर्थः, सोऽवश्यं भवति नृणां शुभोऽशुभो वा। भूतानां महति कृतेऽपि हि प्रयत्ने, नाभाव्यं भवति न भाविनोऽस्ति नाशः। १॥" तथा "न हि भवति यन्न भाव्यं भवति च भाव्यं विनाऽपि यत्नेन। करतलगतमपि नश्यति यस्य तु भवितव्यता नास्ति ॥ २॥" इति 'मङ्गुली' त्ति असुन्दरा धर्मप्रज्ञप्तिः—श्रुतधर्मप्ररूपणा, किंस्वरूपाऽसावित्याह—अस्तीत्यादि, अनियताः सर्वे भावाः—उत्थानादेर्भवन्ति तदभावाच्च भवन्तीतिकृत्वेत्येवंस्वरूपाः।

टीकार्थः—अब छट्ठे अध्ययन का अर्थ लिखते हैं—'धम्मपण्णत्ति' श्रुतरूप धर्म की प्ररूपणा, दर्शन याने मत-सिद्धांत, उत्थान-उठना, कर्म-गमनादिक कार्य, बल-शारीरिक बल, वीर्य-आत्मबल, पुरुषाकार-कार्य करने की प्रवृत्ति अर्थात् कार्य में उत्साह, पराक्रम-काम करके जिसने बतलाया है। कुण्डकोलिक को देवने कहा कि "उत्थान कर्म बल वीर्य पुरुषाकार पराक्रम नहीं है, क्योंकि कार्य की सिद्धि के लिये उत्थानादि करने पर भी कार्य सिद्धि होती नहीं है, जिसे मालूम होता है कि सब पदार्थ नियत हैं अर्थात् जो होनेवाला है वह अवश्य

होता है, उसको पुरुषकार पराक्रम से अन्यथा करने के लिये कोई समर्थ नहीं है। कहा है कि—मनुष्यों को जो कुछ शुभाशुभ होनेवाला है वह अवश्यमेव होता है, बड़ा परिश्रम करने पर भी जो नहीं होनेवाला है वह नहीं होता और जो होनहार है उसको कोई मिटा नहीं सकते वह अवश्यमेव होगा। जो नहीं होनेवाला है वह नहीं होगा और जो होनेवाला है वह बिना परिश्रम करने पर भी हो जाता है, किन्तु सब पदार्थ अनियत हैं अर्थात् उत्थान आदि से कार्य की सिद्धि होती है यदि उत्थान आदि न होते तो कार्य सिद्धि भी नहीं होती। इस प्रकार अनियतिवाद की धर्म प्ररूपणा बतलाई वह अच्छी नहीं है।

कौलिक का और देव का विवाद

सूत्रम्—तए णं से कुंडकोलिए समणोवासए तं देवं एवं वयासी—जइ णं देवा! सुंदरी गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स धम्मपण्णत्ती नत्थि उट्ठाणे इ वा जाव नियया सव्वभावा। मंगुली णं समणस्स भगवओ महावीरस्स धम्मपण्णत्ती अत्थि उट्ठाणे इ वा जाव अणियया सव्वभावा। तुमे णं देवा! इमा एयारूवा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुई दिव्वे देवाणुभावे किणा लद्धे किणा पत्ते किणा अभिसमन्नागए, किं उट्ठाणेणं जाव पुरिसक्कारपरक्कमेणं उदाहु अणुट्ठाणेणं अकम्मेणं जाव अपुरिसक्कारपरक्कमेणं?।

अर्थः—तब कुंडकोलिक श्रमणोपासक देव को कहने लगा—हे देव! यदि उत्थान आदि से रहित और सब भाव की नियतता को बतलाने वाली मंखलिपुत्र गोशाला की धर्मप्रज्ञप्ति सुंदर हो, तथा श्रमण भगवान श्रीमहावीर स्वामी की उत्थान आदि से युक्त सब भावों की अनियतता को बतलाने वाली धर्मप्रज्ञप्ति असुंदर हो तो

हे देव ! तुमने इस प्रकार की दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवप्रभाव किस प्रकार प्राप्त किये ? उत्थानादिक से प्राप्त किये या अनुत्थानादिक से प्राप्त किये ?।

सूत्रम्—तए णं से देवे कुडकोलियं समणोवासयं एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया ! मए इमेयारूवा दिव्वा देविड्ढी ३ अणुट्ठाणेणं जाव अपुरिसक्कारपरक्कमेणं लद्धा पत्ता अभिसमन्नागया ।

अर्थः—तब देव ने कुंडकोलिक श्रमणोपासक को प्रत्युत्तर दिया कि—हे देवानुप्रिय ! मुझे इस प्रकार की दिव्य देवऋद्धि आदि विना उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकर, पराक्रम किये प्राप्त हुई है ।

कुंडकोलिक का और देव का विवाद

सूत्रम्—तए णं से कुंडकोलिए समणोवसए तं देवं एवं वयासी—जई णं देवा ! तुमे इमा एयारूवा दिव्वा देविड्ढी ३ अणुट्ठाणेणं जाव अपुरिसक्कारपरक्कमेणं लद्धा पत्ता अभिसमन्नागया । जेसि णं जीवा णं नात्थि उट्ठाणे इ वा पत्ते किं न देवा ? अह णं देवा ! तुमे इमा एयारूवा दिव्वा देविड्ढी ३ उट्ठाणेणं जाव परक्कमेणं लद्धा पत्ता अभिसमन्नागया तो जं वदासि—सुंदरी णं गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स धम्मपण्णत्ती—नत्थि उट्ठाणे इ वा जाव नियया सव्वभावा । मंगुली णं समणस्स भगवओ महावीरस्स धम्मपण्णत्ती—आत्थि उट्ठाणे इ वा जाव आणियया सव्वभावा तं ते मिच्छा ।

अर्थः—तब कुंडकोलिक श्रमणोपासक ने देवको कहा कि—हे देव ! तुमने इस प्रकार की दिव्य देवऋद्धि विना उत्थान आदिसे प्राप्त की है, तो जो जीव उत्थान आदि नहीं करते वे तेरे जैसी दिव्य देवऋद्धि क्यों नहीं प्राप्त करते ?; इसलिये हे देव ! तुमने जो यह दिव्य देवऋद्धि प्राप्त की है वह उत्थान आदि से की है, तो भी तूँ बोलता है कि-मंखलिपुत्र गोशाले की विना उत्थान आदि की सब भावों की नियतता को बतलानेवाली धर्मप्रज्ञप्ति अच्छी है और उत्थान आदि से युक्त सब भावों की अनियतता को बतलानेवाली श्रमण भगवान् श्री महावीरस्वामी की धर्मप्रज्ञप्ति अच्छी नहीं है, इस प्रकार तेरा कहना मिथ्या है।

कुंडकोलिक का और देवका विवाद

टीकाः— ततोऽसौ कुण्डकोलिकः तं देवमेवमवादित्—यदि गोशालकस्य सुन्दरो धर्मो नास्ति कर्मादीत्यतो नियताः सर्वभावा इत्यवंरूपो, मङ्कुलश्च महावीरधर्मः अस्ति कर्मादीत्यनियताः सर्वभावा इत्येवंस्वरूपः, तन्मतमनूद्य कुण्डकोलिकस्तन्मतदूषणाय विकल्पद्वयं कुर्वन्नाह—'तुमे ण' मित्यादि, पूर्ववाक्ये यदीति पदोपादानादेतस्य वाक्यस्यादौ तदेति पदं द्रष्टव्यं इति, त्वयाऽयं दिव्यो देवर्घ्यादिगुणः केन हेतुना लब्धः ? किमुत्थानादिना 'उदाहु' त्ति आहोश्वित् अनुत्थानादिना ?, तपोब्रह्मचर्यादीनामकरणेनेति भावः, यद्युत्थानादेरभावेनेति पक्षो गोशालकमताश्रितत्वाद् भवतः तदा येषां जीवानां नास्त्युत्थानादि–तपश्चरणकरणमित्यर्थः 'ते' इति जीवाः किं न देवाः ?, पृच्छतः अयमभिप्रायः-यथा त्वं पुरुषकारं विना देवः संवृत्तः स्वकीयाभ्युपगमतः एवं सर्वजीवा ये उत्थानादिवर्जितास्ते देवाः प्राप्नुवन्ति, न चैतदेवमिष्टमित्युत्थानाद्यपलापपक्षे दूषणं, अथ त्वयेयं ऋद्धिरुत्थानादिना लब्धा ततो यद्वदसि–सुन्दरा गोशालक-

कुंडकोलिक का और देवका विवाद

प्रज्ञप्तिरसुन्दरा महावीरप्रज्ञप्तिः इति तत्ते—तव मिथ्यावचनं भवति, तस्य व्यभिचारादिति ॥

टीकार्थः—तब कुंडकोलिक ने देवको कहा कि—वह गोशाले की धर्मप्रज्ञप्ति सुंदर नहीं है, क्योंकि वह उत्थान आदि सब पदार्थ नियत मानता है और श्रमण भगवान श्रीमहावीर स्वामी की धर्मप्रज्ञप्ति सुंदर है, क्योंकि वे उत्थान आदि सब पदार्थों को अनियत मानते हैं। फिर भी कुंडकोलिक गोशाले के मतका दूषण बतलाता हुआ और शंका करता हुआ देवको कहता है कि—हे देव! तूँ यह दिव्य-ऋद्धिवाला देव किस प्रकार हुआ? क्या उत्थान आदि से या अनुत्थान आदि से? अर्थात् तपश्चर्या ब्रह्मचर्य आदि को नहीं करने से हुआ या करने से हुआ? यदि गोशाले के मत से उत्थान आदि के अभाव से देवऋद्धि को प्राप्त किया, तो जो प्राणी तपश्चर्या आदि नहीं करते हैं, वे प्राणी देव क्यों नहीं होते हैं? अर्थात् तूं पुरुषाकार पराक्रम को विना किये अपने आप देव हुआ तो उत्थान आदि को नहीं करने वाले सब जीव देव होने चाहियें, किन्तु ऐसा नहीं होता है। तूने दिव्य ऋद्धि उत्थान आदि से प्राप्त की है तो क्यों ऐसा कहता है कि गोशाले की धर्मप्रज्ञप्ति सुंदर है और श्रमण भगवान श्रीमहावीर स्वामी की धर्मप्रज्ञप्ति सुंदर नहीं है। इसलिये इस प्रकार तुम्हारा कहना मिथ्या है।

सूत्रम्—तए णं से देवे कुंडकोलिएणं समणोवासएणं एवं वुत्ते समाणे संकिए जाव कलुससमावन्ने नो संचाएइ कुंडकोलियस्स समणोवासयस्स किंचि पामोक्खमाइक्खित्तए। नाममुद्दयं च उत्तरिज्जयं च पुढविसिलापट्टए ठवेइ २ त्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

अर्थः—कुंडकोलिक श्रमणोपासक का ऐसा वचन सुनकर देव शंकित हो गया और चित्त भ्रमित हो गया

जिससे कुंडकोलिक श्रमणोपासक को कुछ भी प्रत्युत्तर न देसका, किंतु देव स्वयं पराजित हो गया। जिससे कुंडकोलिक श्रमणोपासक की नामांकित मुद्रिका और उसका उत्तरीय वस्त्र को वापीस पृथ्वीशिलापट्ट के उपर रख कर जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में वापीस चला गया।

टीकाः—ततोऽसौ देवस्तेनैवमुक्तः सन् 'शङ्कितः' संशयवान् जातः किं गोशालकमतं सत्यमुत महावीरमतं !, महावीरमतस्य युक्तितोऽनेन प्रतिष्ठितत्वाद्, एवंविधविकल्पवान् संवृत्त इत्यर्थः, काङ्क्षितो–महावीरमतमपि साध्वेतद् युक्त्युपेतत्वादिति विकल्पवान् संवृत्त इत्यर्थः, यावत्करणाद्भेदमापन्नो–मतिभेदमुपागतो, गोशालमतमेव साध्विति निश्चयादपोढत्वात्, तथा कलुषसमापन्नः–प्राक्तननिश्चयविपर्ययलक्षणं, गोशालकमतानुसारिणां मतेन मिथ्यात्वं प्राप्त इत्यर्थः, अथवा कलुषभावं जितोऽहमनेनेति खेदरूपमापन्न इति 'नो संचाएइ' त्ति न शक्नोति 'पामोक्खं' ति प्रमोक्षम्–उत्तरमाख्यातुं–भणितुमिति ॥ (सू. ३६)

टीकार्थः—इस प्रकार कुण्डकोलिफ श्रमणोपासक का वचन सुनकर देव शंकित हो गया कि गोशालेका मत सत्य है या श्रमण भगवान श्रीमहावीर स्वामी का मत सत्य है ! अर्थात् महावीर स्वामी का मत युक्तिवाला होने से अच्छा है, इस प्रकार की मान्यतावाला हो गया। गोशाले का मत ही सत्य यह माग्यता हठ जाने से मतिभेद हो गया, तथा पहले के निश्चय का विपर्यास हो जाने से अर्थात् गोशाले के मतवालों के मतसे मिथ्यात्व प्राप्त हुआ, या कुंडकोलिक श्रमणोपासकने जीत लिया इसलिये कलुषित मनवाला हो गया और उत्तर देने में असमर्थ वन गया ॥ ३६ ॥

सूत्रम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे। तए णं से कुंडकोलिए समणोवासए इमीसे

कहाए लद्धट्ठे हट्ठ जहा कामदेवो तहा निग्गच्छइ जाव पज्जुवासइ धम्मकहा ॥ सू. ३६ ॥

अर्थः—उस काल और उस समय में श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामी वहां पधारे। श्रमण भगवान का आगमन सुनकर कुंडकोलिक हृष्ट तुष्ट और आनंदित हुआ और जिस प्रकार कामदेव श्रावक दर्शन करने आया था, उसी प्रकार यह भी स्वजन वर्ग के साथ दर्शन करने आया। तब सभासमक्ष श्रमण भगवान श्रीमहावीर स्वामी ने धर्मोपदेश दिया ॥ ३६ ॥

सूत्रम्—कुंडकोलिया इ समणे भगवं महावीरे कुंडकोलियं समणोवासयं एवं वयासी—से नूण कुंडकोलिया ! कल्लं तुब्भ पुव्वावरण्हकालसमयंसि असोगवणियाए एगे देवे अंतियं पाउब्भवित्था। तए णं से देवे नाममुद्दं च तहेव जाव पडिगए। से नूणं कुंडकोलिया ! अट्ठे समट्ठे ?। हंता अत्थि। तं धन्ने सि णं तुमं कुंडकोलिया ! जहा कामदेवो।।

अर्थः—पीछे हे कुंडकोलिक ! ऐसा संबोधन करके श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामी ने कुंडकोलिक श्रमणोपासकको कहा—हे कुंडकोलिक ! तुम्हारे पास कल मध्याह्न के समय अशोकवनिका नामके बगीचे में एक देव आया था, उसको तुमने वाद विवाद में निरुत्तर किया। इत्यादि जो देवके साथ चर्चा हुई थी वह कह सुनाई

आर पूछा कि हे कुंडकोलिक! क्या यह सत्य है?। कुंडकोलिक श्रमणोपासक ने उत्तर दिया—हे भगवन्! जो आपने कहा, वह सब सत्य है। तब श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामी बोले—हे कुंडकोलिक! तुम धन्यवाद के पात्र हो। इत्यादि जिस प्रकार कामदेव श्रमणोपासक की प्रशंसा की थी, उसी प्रकार सभा समक्ष कुंडकोलिक श्रमणोपासक की प्रशंसा की।

श्री महावीर स्वामी द्वारा कुंडकोलिक की प्रशंसा

सूत्रम्—अज्जो इ समणे भगवं महावीरे समणे निग्गंथे य निग्गंथीओ य आमंतित्ता एवं वयासी जइ ताव अज्जो गिहिणो गिहिमज्झावसंता णं अन्नउत्थिए अट्ठेहि य हेऊहि य पसिणेहि य कारणेहि य वागरणेहि य निप्पट्ठपसिणवागरणे करेंति। सक्का पुणाइं अज्जो समणेहिं निग्गंथेहिं दुवालसंगं गणिपिडगं अहिज्जमाणेहिं अन्नउत्थिया अट्ठेहि य जाव निप्पट्ठपसिणवागरणा करित्तए। तए णं समणा निग्गंथा य निग्गंथीओ य समणस्स भगवओ महावीरस्स तहत्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेंति। तए णं से कुंडकोलिए समणोवासए समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ २ त्ता पसिणाइं पुच्छइ २ त्ता अट्ठमादियइ २ त्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडियए। सामी बहिया जणवयविहारं विहरइ ॥ सू. ३७॥

अर्थः—पीछे हे आर्यो! ऐसा संबोधन करके श्रमण भगवान श्रीमहावीर श्रमण निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों

को बुलवाकर कहने लगे—हे आर्यो ! घरमें रहनेवाला ऐसा गृहस्थ भी अन्यतीर्थियों को अर्थ हेतु और प्रश्नों द्वारा निरुत्तर कर सकता है। तो हे आर्यो ! तुम्हें द्वादश गणिपिटक का अध्ययन करनेवाले एवं उनके अर्थको जाननेवाले हैं, जिसे अवश्यमेव अन्यतीर्थियों को अर्थ हेतु और प्रश्नोद्वारा निरुत्तर कर ही सकते हैं। यही श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामी की बात श्रमण निर्ग्रंथ और निर्ग्रन्थियों ने विनय पूर्वक स्वीकार ली। पीछे कुंडकोलिक श्रमणोपासक श्रमण भगवान श्रीमहावीर स्वमी को वंदना नमस्कार करके, एवं कितनेक प्रश्न पूछकर, तथा उनके अर्थ को भी अच्छी तरह समझकर जिस दिशासे आया था, उसी दिशामें वापीस अपने घर गया। श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामी भी वहां से निकल कर अन्यत्र जनपद विहार में विचरने लगे ॥ ३७ ॥

श्री महावीर स्वामी का कुंडकोलिक के साथ वार्तालाप

टीका:—'गिहमज्झावसन्ता णं' ति गृहं-अध्यावसन्तो, णमिति वाक्यालङ्कारे अन्ययुथिकान् 'अर्थैः' जीवादिभिः सूत्राभिधेयैर्वा हेतुभिश्च-अन्वयव्यतिरेकलक्षणैः प्रश्नैश्च परप्रश्ननीयपदार्थैः कारणैः-उपपत्तिमात्ररूपैः व्याकरणैश्च-परेण प्रश्नितस्योत्तरदानरूपैः, 'निप्पट्ठपसिणवागरणे' त्ति निरस्तानि स्पष्टानि-व्यक्तानि प्रश्नव्याकरणानि येषां ते निःस्पष्टप्रश्नव्याकरणाः, प्राकृतत्वाद्वा निष्पिष्टप्रश्नव्याकरणास्तान् कुर्वन्ति, 'सक्का पुण' त्ति शक्या एव, हे आर्याः ! श्रमणैरन्ययूथिका निःस्पष्टप्रश्नव्याकरणाः कर्तुम् (सू. ३७)

॥ इति षष्ठं विवरणतः समाप्तम् ॥

टीकार्थः—'गिहमज्झावसंता' घरमें रहे हुए श्रमणोपासकने अन्य दर्शनियों को जीवादिके स्वरूप से, सूत्रों के विषयों से,

हेतुओं से पूछे हुए प्रश्नोंके उत्तर प्रत्युत्तर करके निरुत्तर कर दिये। हे आर्य! इस प्रकार श्रमणगण भी अन्य दर्शनियों को निरुत्तर करने के लिये समर्थ हों ॥ ३७ ॥

सूत्रम्—तए णं तस्स कुंडकोलियस्स समणोवासयस्स बहूहिं सील जाव भावेमाणस्स चोद्दस्स संवच्छराइं वइक्कंताइं पण्णरसमस्स संवच्छरस्स अंतरा वट्टमाणस्स अन्नया कयाइ जहा कामदेवो तहा जेट्ठपुत्तं ठवेत्ता तहा पोसहसालाए जाव धम्मपण्णत्ति उवसंपज्जित्ता णं विहरइ। एवं एक्कारस उवासगपडिमाओ तहेव जाव सोहम्मे कप्पे अरुणज्झए विमाणे जाव अंतं काहिइ ॥ निक्खेवो ॥ सू. ३८ ॥

॥ सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं छट्ठं अज्झयणं समत्तं ॥

कुंडकोलिक देवलोक में गया

अर्थः—अब कुंडकोलिक श्रमणोपासक ने अपना शीलव्रत और गुणव्रतों का पालन करते हुए चौदह वर्ष व्यतीत किये। पंद्रहवें वर्ष के बीच में कामदेव श्रमणोपासक की तरह अपना ज्येष्ठ पुत्र को घरका सब कारोबार सोंप कर, तथा उसकी अनुमति लेकर अपनी पौषधशालामें गया, वहां श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामी के पास ग्रहण की हुई धर्मप्रज्ञप्ति स्वीकार करके रहने लगा। श्रावक की ग्यारह उपासक प्रतिमाओं की अच्छी तरह अराधना की। अंत में अपाश्चिममारणांतिकसंलेखणा करके समाधि पूर्वक कालधर्म प्राप्त करके सौधर्म देवलोकमें अरुणध्वज विमान में देव हुआ, वहां कुंडकोलिक देव चार पल्योपम का आयुष्य पूर्ण करने बाद वहां से च्यव करके महाविदेह क्षेत्रमें

जन्मेगा, वहां सिद्ध बुद्ध और मुक्त होगा ॥ ३८ ॥

॥ इति श्री उपासकदशा सूत्र का छठा अध्ययन संपूर्ण ॥ ६ ॥

* सातवां अध्ययन *

सूत्रम—सत्तमस्स उक्खेवो । पोलासपुरे नामं नयरे, सहस्संबवणे उज्जाणे, जियसत्तू राया । तत्थ णं पोलासपुरे नयरे सद्दालपुत्ते नामं कुंभकारे आजीविओ वासए परिवसइ, आजीवियसमयंसि लद्धट्ठे गहियट्ठे पुच्छियट्ठे विणिच्छियट्ठे अभिगयट्ठे अट्ठिमिंजपेमाणुरागरत्ते य अयमाउसो ! आजीवियसमए अट्ठे अयं परमट्ठे सेसे अणट्ठेत्ति आजीवियसमएणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

अर्थ:—अब सातवां अध्ययन का उपोद्घात कहते हैं—उस काल उस समय में पोलासपुर नामका नगर था, उस नगर के बाहर सहस्राम्रवन नामका उद्यान था, तथा उस नगर में जितशत्रु नामका राजा राज्य कर रहा

था, यही पोलासपुर नगरमें आजीविकों का उपासक अर्थात् गोशाले का शिष्य एक सद्दालपुत्र नामका कुंभकार (कुम्हार) रहता था। उसने आजीविक धर्म को प्राप्त करके अर्थ को ग्रहण किया था, संदेह था वह पूछ करके निःसंदेह हुआ था, विशेष ज्ञाता हुआ था, उसके हाड और मज्जा आजीविक धर्म के प्रेमानुराग से रंगे हुए थे, तथा दूसरों को संबोधन करके कहता था कि हे आयुष्यमान्! आजीविकों का जो धर्म है, यही सचा अर्थ है और यही परमार्थ है, दूसरे सब धर्म अनर्थ कारक हैं। इस प्रकार आजीविक धर्म से अपनी आत्मा को भावित करता हुआ रहता था।

टीका—सप्तमं सुगममेव, नवरं 'आजीविओवासए' त्ति आजीविकाः-गोशालकशिष्याः तेषामुपासकः आजीविकोपासकः; लब्धार्थः श्रवणतो गृहीतार्थो बोधतः पृष्टार्थः संशये सति विनिश्चितार्थ उत्तरलाभे सति,

सद्दालपुत्र का व्यवसाय

टीकार्थ—अब सातवां अध्ययन का उपोद्घात सुगम है। 'आजीविओवासए' आजीविक अर्थात् गोशाले के शिष्य (साधु), उनके जो उपासक (सेवक) थे, वे आजीविकोपासक कहलाते थे। उनमें से यह एक सद्दालपुत्र नामका कुंभकार था। उसने गोशालेके उपदेशको श्रवण करके, विचार पूर्वक मनन करके, अपनी मति अनुसार प्रश्नकरके, एवं प्रश्नोत्तर से संशय को हटाकरके आजीविक मतको ग्रहण किया था।

सूत्रम्—तस्स णं सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स एक्का हिरण्णकोडी निहाणपउत्ता एक्का वुड्ढिपउत्ता एक्का पवित्थरपउत्ता एक्के वए दसगोसाहस्सिएणं वएणं। तस्स णं सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स

अग्गिमित्ता नामं भारिया होत्था । तस्स णं सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स पोलासपुरस्स नगरस्स बहिया पंच कुंभकारावणसया होत्था । तत्थ णं बहवे पुरिसा दिण्णभइभत्तवेयणा कल्लाकल्लिं बहवे करए य वारए य पिहडए य घडए य अद्धघडए य कलसए य अलिंजरए य जंबूलए य उट्टियाओ य करेंति, अन्ने य से बहवे पुरिसा दिन्नभइभत्तवेयणा कल्लाकल्लिं तेहिं बहूहिं करएहि य जाव आट्टियाहि य रायमग्गंसि वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति ॥ सू० ३९ ॥

सद्दालपुत्र का व्यवसाय

अर्थ—उस सद्दालपुत्र आजीविकोपासक के पास एक हिरण्यकोटि धन भंडार में, एक हिरण्यकोटि धन व्यापार में और एक हिरण्यकोटि धन घर खर्च के लिये था। तथा दस हजार गौका एक व्रज ऐसा एक व्रज भी था। एवं उसको अग्निमित्रा नामकी भार्या थी। उस सद्दालपुत्र आजीविकोपासक की पोलासपुर नगर के बाहर पांच सौ कुम्हार की दुकान थी, उनमें अनेक पुरुषों को द्रव्य और भोजन आदि मासिक वेतन देकर कार्य के लिये रखे थे, वे लोग वहां प्रतिदिन असंख्य करवे, वारकों (बडे लोटे), पीहडो (स्थाली), घड़े, आधे घड़े, कलशों, अलिंजरों (पानी के बड़े बरतन), जंबूलों (कुंजे) और तैल आदिके भाजन आदि मट्टी के बरतन बनाते थे और दूसरे वेतनवाले अनेक लोग प्रतिदिन उन बरतनों को राजमार्ग में जाकर बेचते थे और अपनी आजीविका करते हुए रहते थे ॥३९

टीका—'दिण्णभइभत्तवेयण' त्ति दत्तं भृतिभक्तरूपं-द्रव्यभोजनलक्षणं वेतनं-मूल्यं येषां ते तथा, 'कल्लाकल्लिं' ति प्रतिप्रभातं बहून् करकान्-वाघटिकाः वारकांश्च-गडुकान् पिठरकान्-स्थालीः घटकान् प्रतीतान् अर्द्धघटकांश्च-घटार्द्धमानान् कलशकान्-आकारविशेषवतो बृहद्घटकान् अलिञ्जराणि च-महदुदकभाजनविशेषान् जम्बूलकांश्च-लोकरूढ्यावसेयान् उष्ट्रिकाश्च-सुरातैलादि भाजनविशेषान् ॥ सू० ४९ ॥

टीकार्थः—इसके 'दिण्णभइभत्तवेयण' भोजन और वेतन आदि देकर रखे हुए बहुतसे नौकर प्रतिदिन अनेक जातिके मट्टीके करवे, गड़वे, थाली, घड़े, कलशे, बड़े घड़े, पाणी भरनेके बड़े माटे, सुरई, कूंजे आदि अनेक प्रकारके बरतनोंको बनाते थे ॥ ३९ ॥

देवका आगमन

सूत्रम्—तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए अन्नया कयाइ पुव्वावरण्हकालसमयंसि जेणेव असोगवणिया तेणेव उवागच्छइ २ त्ता गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ। तए णं तस्स सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स एगे देवे अंतियं पाउब्भवित्था। तए णं से देवे अंतलिक्खपडिवन्ने सखिंखिणियाइं जाव परिहिए सद्दालपुत्तं आजीविओवासयं एवं वयासी।

अर्थ—एक दिन वह आजीविकोपासक सद्दालपुत्र मध्याह्न के समय अपनी अशोक वनिका नामकी बगीची में जाकर, मंखलिपुत्र गोशालेके पास ग्रहण किया धर्म को स्वीकार करके रहने लगा। तब वहां सद्दालपुत्र आजीविकोपासक के पास एक देव आया और आकाश में रहकर घुघुरु बजाता हुआ, अनेक आभूषणों से सुशोभित

वह देव सद्दालपुत्र आजीविकोपासकको कहने लगा।

सूत्रम्—एहिइ णं देवाणुप्पिया कल्लं इहं महामाहणे उप्पन्नणाणदंसणधरे तीयपडुपन्नमणागयजाणए अरहा जिणे केवली सव्वणू सव्वदरिसी तेलोक्कवहियमहियपूइए सदेवमणुयासुरस्स लोगस्स अच्चणिज्जे वंदणिज्जे सक्कारणिज्जे संमाणणिज्जे कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं जाव पज्जुवासणिज्जे तच्चकम्मसंपयां पउत्ते। तं णं तुमं वंदेज्जाहि जाव पज्जुवासेज्जाहि। पाडिहारिएणं पीढफलगसिज्जासंथारएणं उवनिमंतेज्जाहि, दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयइ २ त्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

अर्थ—हे देवानुप्रिय! कल यहां महामाहण, केवलज्ञान और केवलदर्शनवाले, भूत भविष्य और वर्त्तमान कालको जाननेवाले, अरिहंत, जिनेश्वर, केवलज्ञानी, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, तीन लोकके जीवोंके वंदनीय और पूजनीय, देव मनुष्य और असुरों को वंदनीय और पूजनीय, सत्कार करने योग्य, सन्मान करने योग्य, कल्याण दायक, मंगल करनेवाले, देवाधिदेव, सेवाकरने योग्य, जिनको विशुद्ध तपके प्रभाव से घनघातिक कर्मों का नाश होकर अनंत चतुष्टय अतिशयादि ऋद्धि प्राप्त हुई है, ऐसे एक महापुरुष आनेवाले हैं, उनकी तुम वंदना नमस्कार पूर्वक सेवा भक्ति करना। तथा ग्रहण करने योग्य निर्दोष ऐसे अशन, पान, खादिम, स्वादिम, पीढ, फलक, शय्या और

संथारे से उनको आमंत्रण करना। इस प्रकार वह देव दो तीन वार कहकर जिस दिशासे आया था उसी दिशा में वापीस अपने स्थान चला गया।

टीका:—'एहिइ' त्ति एष्यति, 'इहं' ति अस्मिन्नगरे, 'महामाहणे' त्ति मा हन्मि न हन्मीत्यर्थः, आत्मना वा हनननिवृत्तः परं प्रति 'मा हन' इत्येवमाचष्टे यः स माहनः, स एव मनःप्रभृतिकरणादिभिराजन्म सूक्ष्मादिभेदभिन्नजीवहनननिवृत्तत्वात् महान्माहनो महामाहनः उत्पन्ने—आवरणक्षयेणाविर्भूते ज्ञानदर्शने धारयति यः स तथा, अत एवातीतप्रत्युत्पन्नानागतज्ञायकः, 'अरह'-त्ति अर्हन्, महाप्रातिहार्यरूपपूजार्हत्वात्, अविद्यमानं वा रहः—एकान्तः सर्वज्ञत्वाद्यस्य सोऽरहः, जिनो रागादिजेतृत्वात्, केवलानि—परिपूर्णानि शुद्धान्यनन्तानि वा ज्ञानादीनि यस्य सन्ति स केवली, अतीतादिज्ञानेऽपि सर्वज्ञानं प्रति शङ्का स्यादित्याह-सर्वज्ञः, साकारोपयोगसामर्थ्यात्, सर्वदर्शी अनाकारोपयोगसामर्थ्यादिति, तथा 'तेलोक्कवहियमहियपूइए' त्ति त्रैलोक्येन—त्रिलोकवासिना जनेन 'वहिय' त्ति समग्रैश्वर्याद्यतिशयसन्दोहदर्शनसमाकुलचेतसा हर्षभरनिर्भरेण नवलकुतूहलबलादनिमिषलोचनेनावलोकितः 'महिय' त्ति सेव्यतया वांछितः 'पूजितश्च' पुष्पादिभिर्यः स तथा, एतदेव व्यनक्ति—सदेवा मनुजासुरा यस्मिन् स सदेवमनुजासुरस्तस्य लोकस्य—प्रजायाः, अर्चनीयः पुष्पादिभिः वन्दनीयः स्तुतिभिः सत्करणीयः—आदरणीयः सन्माननीयोऽभ्युत्थानादिप्रतिपत्तिभिः, कल्याणं मङ्गलं दैवतं चैत्यमित्येवंबुद्ध्या पर्युपासनीय इति, 'तच्चकम्म' त्ति तथ्यानि-सत्फलानि अव्यभिचारितया यानि कर्माणि—क्रियास्तत्सम्पदा—तत्समृद्ध्या यः सम्प्रयुक्तो—युक्तः स तथा ॥ 'कल्लं' मित्यत्र यावत्करणात्, 'पाउप्पभायाए रयणीए इत्यादि-जलन्ते सूरिए' इत्येतदन्तः प्रभातवर्णको दृश्यः, स चोत्क्षिप्तज्ञातवद्व्याख्येयः (सू० ४०)

देवकथित महावीर गुण वर्णन

टीकार्थ—'एहिइ' इस नगर में आवेंगे, जो 'महामाहण' दूसरों को नहीं मारने का उपदेश देनेवाले हैं, इसलिये वे 'माहन' हैं और स्वयं मन वचन और काया से भी सूक्ष्म और वादर जीवों को मारने वाले नहीं हैं, इसलिये वे महामाहन हैं। 'उप्पन्ने' ज्ञानावरणीय कर्मों का नाश करके ज्ञान दर्शन को धारण करनेवाले हैं, इसलिये वे भूत भविष्य और वर्तमान समय को जानने वाले हैं। 'अरह' आठ महा प्रातिहारी युक्त होने से वे 'अर्हन्' हैं। जिनसे कोई भी वस्तु गुप्त नहीं है, इसलिये वे 'अरहा' हैं अर्थात् वे समस्त पदार्थों को जानने वाले हैं। वे रागद्वेष को जीतने वाले होने से 'जिन' कहलाते हैं, वे परिपूर्ण शुद्ध अनन्त ज्ञानवाले होने से 'केवली' हैं। अतित आदि समस्त वस्तुओं को विशेष रूपसे जानने वाले होने से वे 'सर्वज्ञ' हैं तथा सामान्य रूपसे जानने वाले होने से 'सर्वदर्शी' हैं। 'तेलोक्कवहियमहियपूइए' तीन लोक के मनुष्य आदि से समस्त ऐश्वर्यादि अतिशय वाले होने से हर्षयुक्त प्रबल कुतुहल पूर्वक दर्शनीय सेवनीय और पूजनीय हैं, अर्थात् देव मनुष्य और असुरों से दर्शनीय, पुष्पादि से पूजनीय, वंदनीय, स्तुति से सत्कार करने योग्य और उत्थानादि से सन्मान करने योग्य हैं। एवं कल्याणरूप और मंगलरूप देव की तरह स्तुत्य और चैत्य (मूर्त्ति) की तरह पूजनीय हैं। नियम से यथार्थ फल को देने वाले क्रिया संपत्ति से युक्त हैं। ऐसे गुणवाले कल प्रभात के समय इस नगर में पधारेंगे ॥ ४० ॥

सद्दालपुत्र का अभिप्राय

सूत्रम्—तए णं तस्स सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स तेणं देवेणं एवं वुत्तस्स समाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए ४ समुप्पन्ने–एवं खलु ममं धम्मायरिए धम्मोवएसए गोसाले मंखलिपुत्ते से णं महामाहणे उप्पन्नणाणदंसणधरे जाव तच्चकम्मसंपयासंपउत्ते से णं कल्लं इहं हव्वमागच्छिस्सइ। तए णं तं अहं वंदिस्सामि जाव पज्जुवासिस्सामि पाडिहारिएणं जाव उवनिमंतिस्सामि ॥ सू० ४० ॥

अर्थः—पीछे सद्दालपुत्र आजीविकोपासक देवके बचनों को सुनकर विचारने लगा कि—' कल प्रातः काल मेरा धर्माचार्य धर्मोपदेशक मंखलिपुत्र गोशाल जो महामाहण, जिनेश्वर और सर्वज्ञ हैं, वे आनेवाले हैं।' इसलिये उनको मैं वंदना नमस्कार करके उनकी सेवा करूंगा और उनको आमंत्रण करूंगा ॥ ४० ॥

सूत्रम्—तए णं कल्लं जाव जलंते समणे भगवं महावीरे जाव समोसरिए, परिसा निग्गया जाव पज्जुवासइ । तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे—एवं खलु समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ । तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि जाव पज्जुवासामि । एवं संपेहेइ २ त्ता ण्हाए जाव पायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं जाव अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे मणुस्सवग्गुरापरिगए साओ गिहाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता पोलासपुरं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ २ त्ता जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ २ त्ता वंदइ नमंसइ २ त्ता जाव पज्जुवासइ ।

महावीर भगवान समवसरे

अर्थः—अब प्रातः काल होते ही वहां सहस्राम्र नामके उद्यानमें श्रमण भगवान महावीर पधारे। पोलासपुरके लोग उनका धर्मोपदेश सुननेके लिये आये और वंदना नमस्कार करके अपने स्थान बैठे। सद्दालपुत्र आजी-

विकोपासक श्रमण भगवान पधारनेका समाचार सुनकर विचारने लगा कि—'श्रमण भगवान् महावीर पधारे हैं इसलिये वहां जाकर उनको वंदना नमस्कर करके उनकी सेवा करूं'। ऐसा विचार करके स्नान किया और शुद्ध वस्त्र पहनकर तथा मूल्यवान अलंकार धारण करके अपना स्वजनवर्गके साथ घरसे निकला और पोलासपुर नगरके मध्य बाजार होकर जहां सहस्राम्र उद्यान में श्रमण भगवान महावीर पधारे हैं वहां आया। श्रमण भगवानको तीन वार हाथ जोड़कर प्रदक्षिणा पूर्वक वंदना नमस्कार किया और सेवा करने लगा।

महावीर भगवान का कथन

सूत्रम्—तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स तीसे य महइ जाव धम्मकहा समत्ता। सद्दालपुत्ता इ समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तं आजीविओवासयं एवं वयासी–से नूणं सद्दालपुत्ता! कल्लं तुमं पुव्वावरण्हकालसमयंसि जेणेव असोगवणिया जाव विहरासि, तए णं तुब्भं एगे देवे अंतियं पाउब्भवित्था तए णं से देवे अंतलिक्खपडिवन्ने एवं वयासी–हं भो सद्दालपुत्ता! तं चेव सव्वं जाव पज्जुवासिस्सामि, से नूणं सद्दालपुत्ता! अट्ठे समट्ठे ?, हंता अत्थि, नो खलु सद्दालपुत्ता! तेणं देवेणं गोसालं मंखलिपुत्तं पणिहाय एवं वुत्ते।

अर्थः—तब श्रमण भगवान महावीरने सद्दालपुत्र आजीविकोपासक के तथा अन्य लोगोंके सामने धर्मोपदेश

दिया। धर्मोपदेश समाप्त होने बाद सद्दालपुत्र आजीविकोपासक को संबोधन करके श्रमण भगवान महावीरने कहा—हे सद्दालपुत्र! कल तुम मध्याह्नके समय अपनी अशोक वनिका में आत्मा को भावित करता था, उस समय एक देवने आकरके, अगले दिन महामाहण जिनेश्वर केवली पधानेवाले हैं, ऐसी जो बात हुई थी, वह सुना दी। पीछे पूछा कि हे सद्दालपुत्र! क्या यह बात सची है? तब सद्दालपुत्रने कहा हे भगवन्! आपने जो कहा वह सब सत्य है। तब श्रमण भगवानने कहा कि हे सद्दालपुत्र! देवने जो कहा, वह मंखलीपुत्र गोशालके संबंधमें नहीं था।

भगवान का प्रतिबोध

सूत्रम्—तए णं तस्स सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्तस्स समाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए ४–एस णं समणे भगवं महावीरे महामाहणे उप्पन्नणाणदंसणधरे जाव तच्चकम्मसम्पयासम्पउत्ते, तं सेयं खलु ममं समणं भगवं वंदित्ता नमंसित्ता पाडिहारिएणं पीढफलग जाव उवनिमंतित्तए। एवं संपेहेइ २ त्ता उट्ठाए उट्ठेइ २ त्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ २ त्ता एवं वयासी–एवं खलु भंते! ममं पोलासपुरस्स नगरस्स बहिया पंच कुंभकारावणसया। तत्थ णं तुब्भे पाडिहारियं पीढ जाव संथारयं ओगिण्हित्ता णं विहरइ।तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ २ त्तासद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स पंचकुंभकारावणसएसु फासुएस-

विकोपोसक श्रमण भगवान पधारनेका समाचार सुनकर विचारने लगा कि—'श्रमण भगवान् महावीर पधारे हैं इसलिये वहां जाकर उनको वंदना नमस्कर करके उनकी सेवा करूं'। ऐसा विचार करके स्नान किया और शुद्ध वस्त्र पहनकर तथा मूल्यवान अलंकार धारण करके अपना स्वजनवर्गके साथ घरसे निकला और पोलासपुर नगरके मध्य बाजार होकर जहां सहस्राम्र उद्यान में श्रमण भगवान महावीर पधारे हैं वहां आया। श्रमण भगवानको तीन वार हाथ जोड़कर प्रदक्षिणा पूर्वक वंदना नमस्कार किया और सेवा करने लगा।

महावीर भगवान का कथन

सूत्रम्—तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स तीसे य महइ जाव धम्मकहा समत्ता। सद्दालपुत्ता इ समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तं आजीविओवासयं एवं वयासी–से नूणं सद्दालपुत्ता! कल्लं तुमं पुव्वावरण्हकालसमयंसि जेणेव असोगवणिया जाव विहरासि, तए णं तुब्भं एगे देवे अंतियं पाउब्भवित्था तए णं से देवे अंतलिक्खपडिवन्ने एवं वयासी–हं भो सद्दालपुत्ता! तं चेव सव्वं जाव पज्जुवासिस्सामि, से नूणं सद्दालपुत्ता! अट्ठे समट्ठे?, हंता अत्थि, नो खलु सद्दालपुत्ता! तेणं देवेणं गोसालं मंखलिपुत्तं पणिहाय एवं वुत्ते।

अर्थः—तब श्रमण भगवान महावीरने सद्दालपुत्र आजीविकोपासक के तथा अन्य लोगोंके सामने धर्मोपदेश

दिया। धर्मोपदेश समाप्त होने बाद सद्दालपुत्र आजीविकोपासक को संबोधन करके श्रमण भगवान महावीरने कहा—हे सद्दालपुत्र! कल तुम मध्याह्नके समय अपनी अशोक वनिका में आत्मा को भावित करता था, उस समय एक देवने आकरके, अगले दिन महामाहण जिनेश्वर केवली पधानेवाले हैं, ऐसी जो बात हुई थी, वह सुना दी। पीछे पूछा कि हे सद्दालपुत्र! क्या यह बात सच्ची है? तब सद्दालपुत्रने कहा हे भगवन! आपने जो कहा वह सब सत्य है। तब श्रमण भगवानने कहा कि हे सद्दालपुत्र! देवने जो कहा, वह मंखलीपुत्र गोशालके संबंधमें नहीं था।

भगवान का प्रतिबोध

सूत्रम्—तए णं तस्स सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्तस्स समाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए ४—एस णं समणे भगवं महावीरे महामाहणे उप्पन्नणाणदंसणधरे जाव तच्चकम्मसम्पयासम्पउत्ते, तं सेयं खलु ममं समणं भगवं वंदित्ता नमंसित्ता पाडिहारिएणं पीढफलग जाव उवनिमंतित्तए। एवं संपेहेइ २ त्ता उट्ठाए उट्ठेइ २ त्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ २ त्ता एवं वयासी—एवं खलु भंते! ममं पोलासपुरस्स नगरस्स बहिया पंच कुंभकारावणसया। तत्थ णं तुब्भे पाडिहारियं पीढ जाव संथारयं ओगिण्हित्ता णं विहरइ। तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ २ त्तासद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स पंचकुंभकारावणसएसु फासुएस-

णिज्जं पाडिहारियं पीठफलग जाव संथारयं ओगिण्हित्ता णं विहरइ ॥ सू० ४१ ॥

अर्थः—श्रमण भगवान महावीर के इस प्रकार के वचनों को सुनकर सद्दालपुत्र आजीविकोपासक विचारने लगा— 'यह श्रमण भगवान महावीर ही महामाहण हैं, एवं जिनेश्वर केवली हैं, देवने जैसा कहा वैसा यथार्थ है, इसलिये मुझे यही श्रमण भगवान महावीर को सच्चे भावसे वंदना नमस्कार करना चाहिये। तथा इसी को ही पीढ फलक शय्या आदि से आमंत्रणा करने में मेरा श्रेयः है।' ऐसा विचार करके खड़ा हुआ और श्रमण भगवान महावीर को वंदना नमस्कार करके कहने लगा—'हे भगवन! पोलासपुर नगर के बाहर मेरी पांच सौ दुकाने हैं, उनमें से आपको पाट पाटले आसन आदि जो चाहिये, वे ग्रहण करके सुखसे विचर सकते हैं।' श्रमण भगवान महावीरने सद्दालपुत्र आजीविकोपासक का कहना स्वीकार किया और उसकी पांच सौ दुकानों से जो अपने चाहिये जितना निर्दोष पीठ फलक शय्या आदि ग्रहण करके सुखसे विचरने लगे ॥ ४१ ॥

भगवान का अनुयायी होना

सूत्रम्—तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए अन्नया कयाइ वायाहययं कोलालभंडं अंतो सालाहिंतो वहिया नीणेइ २ त्ता आयवंसि दलयइ। तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तं आजीविओवासयं एवं वयासी—सद्दालपुत्ता! एस णं कोलालभंडे कओ? तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए समणं भगवं महावीरं एवं वयासी—एस णं भंते! पुव्विं मट्टिया आसी, तओ पच्छा उदएणं निगिज्जइ २ त्ता छारेण य

करिसेण य एगयओ मीसिज्जइ २ त्ता चक्के आरोहिज्जइ । तओ बहवे करगा य जाव उट्टियाओ य कज्जति ।

अर्थः—एक दिन सद्दालपुत्र आजीविकोपासक वायुसे कुछ सूखे हुए मट्टी के कच्चे बरतनों को घर से बाहर निकाल कर धूप में सूखा रहा था, उस समय वहां पधारे हुए श्रमण भगवान महावीर सद्दालपुत्र आजीविकोपासकको कहने लगे—'हे सद्दालपुत्र! ये मट्टी के बरतन किस प्रकार बनते है ?' तब सद्दालपुत्र आजीविकोपासकने जवाब दिया—हे भगवन्! प्रथम ये सब मट्टीरूप थे, उस मट्टी को पानी से भीगाकर, उसमें राख और लीद मिलाते हैं, पीछे बहुत खूंद करके उसको चाक परचढाते हैं, तब बहुत करवे कूंजे आदि बरतन तैयार होते हैं।

सूत्रम्—तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तं आजीविओवासगं एवं वयासी—सद्दालपुत्ता एस णं कोलालभंडे किं उट्ठाणेणं जाव पुरिसक्कारपरक्कमेणं कज्जति उदाहु अणुट्ठाणेणं जाव अपुरिसक्कारपरक्कमेणं कज्जति ?, तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए समणं भगवं महावीरं एवं वयासी—भंते ! अणुट्ठाणेणं जाव अपुरिसक्कारपरक्कमेणं, नत्थि उट्ठाणे इ वा जाव परक्कमे इ वा, नियया सव्वभावा ।

अर्थः—ऐसा सुनकर श्रमण भगवान् महावीर सद्दालपुत्र आजीविकोपासकको कहने लगे—हे सद्दालपुत्र ! जो ये मट्टीके बरतन बने हैं, वे सब उत्थान (उत्साह), बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रमसे बने हैं या विना

भगवानका प्रतिबोध

उत्थान, बल, वीर्य और पुरुषकार (पुरुषार्थ) पराक्रमसे बने हैं ? । तब सद्दालपुत्र आजीविकोपासकने श्रमण भगवान महावीरको कहा कि—हे भगवन ! विना उत्थान, बल, वीर्य और पराक्रमसे बनते हैं । इनको बनानेमें उत्थान, बल, और पराक्रम की कुछ भी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि सब भाव नियत हैं अर्थात् बनने का योग होनेसे बनते हैं ।

सूत्रम्—तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तं आजीविओवासगं एवं वयासी–सद्दालपुत्ता ! जइ णं तुब्भं केइ पुरिसे वायाहयं वा पक्कल्लयं वा कोलालभंडं अवहरेज्जा वा विक्खिरेज्जा वा भिंदेज्जा वा अच्छिंदेज्जा वा परिट्ठवेज्जा वा अग्गिमित्ताए वा भारियाए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरेज्जा, तस्स णं तुमं पुरिसस्स किं दंडं वत्तेज्जासि ? । भंते ! अहं णं तं पुरिसं आओसेज्जा वा हणेज्जा वा बंधेज्जा वा महेज्जा वा तज्जेज्जा वा तालेज्जा वा निच्छोडेज्जा वा निब्भच्छेज्जा वा अकाले चेव जीविआओ ववरोवेज्जा ।

अर्थः—तब श्रमण भगवान महावीर ने फिर सद्दालपुत्र आजीविकोपासक को कहा कि—हे सद्दालपुत्र ! यदि कोई पुरुष कच्चे में से पके हुए तेरे बरतनों को चोरी कर ले जाय, बिखेर देवें, फेक दें, छेद कर दें, फोड़ डाले या बाहर ले जाकर छोड दे, अथवा तेरी अग्निमित्रा भार्या के साथ अनेक प्रकार से भोग भोगवे तो तूँ उस पुरुष को शिक्षा करे या नहीं ? । तब सद्दालपुत्रने कहा—हे भगवन ! मैं उस पुरुष पर आक्रोश करूं, दंडादिक से मार

मारू, रस्सीसे बांध लूँ, तर्जना करूं, तमाचा लगाऊं, दाम वसूल करके तिरस्कार करूं और जीवसे मार डालूं।

सूत्रम—सद्दालपुत्ता ! नो खलु तुब्भ केइ पुरिसे वायाहयं वा पक्केल्लयं वा कोलालभण्डं अवहरइ वा जाव परिट्ठवेइ वा अग्गिमित्ताए वा भारियाए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुञ्जमाणे विहरइ, नो वा तुमं तं पुरिसं आओसेज्जासि वा हणिज्जासि वा जाव अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेज्जासि, जइ नत्थि उट्ठाणे इ वा जाव परक्कमे इ वा नियया सव्वभावा अह ण तुब्भ केइ पुरिसे वायाहयं जाव परिट्ठवेइ वा अग्गिमित्ताए वा जाव विहरइ, तुमं ता तं पुरिसं आओसेसि वा जाव ववरोवेसि तो जं वदासि नत्थि उट्ठाणे इ वा जाव सव्वभावा तं ते मिच्छा नियया।

भगवान का प्रतिबोध

अर्थः—तब श्रवण भगवान महावीरने कहा—हे सद्दालपुत्र ! तेरे मनसे तो उत्थान, बल, वीर्य और पराक्रम नहीं है, तथा सब भावनियत ही है, अर्थात् होनहार हो वह होता है, तो तेरे पक्के हुए मट्टीके बरतनों को चोरनेवाले या फोडनेवाले, तथा तेरी अग्निमित्रा भार्या से भोग भोगनेवाले को तूँ क्यों मारे ? क्यों कि तेरे मतसे तो ये सब होनहार होनेसे होता है ऐसा नियत ही है। इसलिये उत्थान, बल, वीर्य, पराक्रम नहीं हैं, ऐसा तेरा मानना मिथ्या है।

उत्थान, बल, वीर्य और पुरुषकार (पुरुषार्थ) पराक्रमसे बने हैं ? । तब सद्दालपुत्र आजीविकोपासकने श्रमण भगवान महावीरको कहा कि—हे भगवन् ! विना उत्थान, बल, वीर्य और पराक्रमसे बनते हैं । इनको बनानेमें उत्थान, बल, और पराक्रम की कुछ भी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि सब भाव नियत हैं अर्थात् बनने का योग होनेसे बनते हैं ।

सूत्रम्—तए णं समणे भगवं महावीरं सद्दालपुत्तं आजीविओवासगं एवं वयासी–सद्दालपुत्ता ! जइ णं तुब्भं केइ पुरिसे वायाहयं वा पक्केल्लयं वा कोलालभंडं अवहरेज्जा वा विक्खिरेज्जा वा भिंदेज्जा वा अच्छिंदेज्जा वा परिट्ठवेज्जा वा अग्गिमित्ताए वा भारियाए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरेज्जा, तस्स णं तुमं पुरिसस्स किं दंडं वत्तेज्जासि ? । भंते ! अहं णं तं पुरिसं आओसेज्जा वा हणेज्जा वा बंधेज्जा वा महेज्जा वा तज्जेज्जा वा तालेज्जा वा निच्छोडेज्जा वा निब्भच्छेज्जा वा अकाले चेव जीविआओ ववरोवेज्जा ।

भगवान का प्रतिबोध

अर्थः—तब श्रमण भगवान महावीर ने फिर सद्दालपुत्र आजीविकोपासक को कहा कि—हे सद्दालपुत्र ! यदि कोई पुरुष कचे में से पके हुए तेरे बरतनों को चोरी कर ले जाय, विखेर देवें, फेक दें, छेद कर दें, फोड़ डाले या बाहर ले जाकर छोड दे, अथवा तेरी अग्निमित्रा भार्या के साथ अनेक प्रकार से भोग भोगवे तो तूँ उस पुरुष को शिक्षा करे या नहीं ? । तब सद्दालपुत्रने कहा—हे भगवन् ! मैं उस पुरुष पर आक्रोश करूं, दंडादिक से मार

मारूं, रस्सीसे बांध लूँ, तर्जना करूं, तमाचा लगाऊं, दाम वसूल करके तीरस्कार करूं और जीवसे मार डालूं।

सूत्रम्—सद्दालपुत्ता ! नो खलु तुब्भ केइ पुरिसे वायाहयं वा पक्केल्लयं वा कोलालभण्डं अवहरइ वा जाव परिट्ठवेइ वा अग्गिमित्ताए वा भारियाए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुञ्जमाणे विहरइ, नो वा तुमं तं पुरिसं आओसेज्जसि वा हणिज्जसि वा जाव अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेज्जसि, जइ नत्थि उट्ठाणे इ वा जाव परक्कमे इ वा नियया सव्वभावा अह ण तुब्भ केइ पुरिसे वायाहयं जाव परिट्ठवेइ वा अग्गिमित्ताए वा जाव विहरइ, तुमं ता तं पुरिसं आओसेसि वा जाव ववरोवेसि तो जं वदसि नत्थि उट्ठाणे इ वा जाव सव्वभावा तं ते मिच्छा नियया।

भगवान का प्रतिबोध

अर्थः—तब श्रवण भगवान महावीरने कहा—हे सद्दालपुत्र ! तेरे मतसे तो उत्थान, बल, वीर्य और पराक्रम नहीं है, तथा सब भावनियत ही है, अर्थात् होनहार हो वह होता है, तो तेरे पक्के हुए मट्टीके बरतनों को चोरनेवाले या फोडनेवाले, तथा तेरी अग्निमित्रा भार्या से भोग भोगनेवाले को तूँ क्यों मारे ? क्यों कि तेरे मतसे तो ये सब होनहार होनेसे होता है ऐसा नियत ही है। इसलिये उत्थान, बल, वीर्य, पराक्रम नहीं हैं, ऐसा तेरा मानना मिथ्या है।

टीका:—'वायाहयगं' ति वाताहतं वायुनेषच्छोषमानीतमित्यर्थः, 'कोलालभण्डं' ति कुलालाः-कुम्भकाराः तेषामिदं कौलालं तच्च तद्भाण्डं च-पण्यं भाजनं वा कौलालभाण्डम्, 'एतत्किं पुरुषकारेणेतरथा वा क्रियते' इति भगवता पृष्टे स गोशालकमतेन नियतिवादलक्षणेन भावितत्वात्पुरुषकारेणेत्युत्तरदाने च स्वमतक्षतिपरमताभ्यनुज्ञानलक्षणं दोषमाकलयन् अपुरुषकारेण इत्यवोचत्, ततस्तदभ्युपगतनियतिमतनिरासाय पुनः प्रश्नयन्नाह—'सद्दालपुत्त' इत्यादि, यदि तव कश्चित्पुरुषो वाताहतं वा आममित्यर्थः 'पक्केल्लयं व' त्ति पक्वं वा अग्निना कृतपाकं 'अपहरेद्वा चोरयेत् विकिरेद्वा'—इतस्ततो विक्षिपेत् 'भिन्द्याद्वा' काणताकरणेन 'आच्छिन्द्याद्वा' हस्तादुद्दालनेन पाठान्तरेण विच्छिन्द्याद्वा—विविधप्रकारैश्छेदं कुर्यादित्यर्थः 'परिष्ठापयेद्वा' बहिर्नीत्वा त्यजेदिति। वत्तेज्जासि त्ति निर्वर्त्तयसि 'आओसेज्जा व' त्ति आक्रोशयामि वा मृतोऽसि त्वमित्यादिभिः शापैरभिशपामि 'हन्मि वा' दण्डादिना 'बध्नामि वा' रज्ज्वादिना, तर्जयामि वा 'ज्ञास्यसि रे दुष्टाचार' इत्यादिभिर्वचनविशेषैः 'ताडयामि वा' चपेटादिना निच्छोटयामि वा' धनादित्याजनेन 'निर्भर्त्सयामि वा' परुषवचनैः अकाल एव च जीविताद्वा व्यपरोपयामि मारयामीत्यर्थः॥ इत्येवं भगवांस्तं सद्दालपुत्रं स्ववचनेन पुरुषकाराभ्युपगमं ग्राहयित्वा तन्मतविघटनायाह—'सद्दालपुत्त' इत्यादि न खलु तव भाण्डं कश्चिदपहरति न च त्वं तमाक्रोशयसि यदि सत्यमेव नास्त्युत्थानादि, अथ कश्चित्तदपहरति त्वं च तमाक्रोशयसि तत एवमभ्युपगमे सति यद्वदसि—नास्त्युत्थानादि इति तत्ते मिथ्या—असत्यमित्यर्थः॥ (सू० ४२)

'वायाहयगं'—वायुसे कुछ सूखे हुए, 'कोलालभंडं' कुंभकारों से बनाये हुए मूल्यवान् बरतन पुरुषाकार से बनते हैं या विना पुरुषकारसे बनते हैं?, ऐसा श्रमण भगवान महावीरस्वामीने सद्दालपुत्रको पूछा। सद्दालपुत्र गोशाले के नियतिमतका अनुयायी होनेसे

वान का
प्रतिबोध

'पुरुषकारसे बनते हैं' ऐसा उत्तर दे, तो अपने मत की क्षति और परमतकी पुष्टता होती है। इसलिये अपने मत का समर्थन करने के लिये 'विना पुरुषकारसे बनते है' ऐसा उत्तर दिया। तब नियतिमतका निराकरण करने के लिये फिर श्रमण भगवान महावीरस्वामीने पूछा—हे सद्दालपुत्र! कोई पुरुष तेरे वायुसे सूखे हुए कच्चे या अग्निसे पकाये हुए बरतनों को चोरी करले जाय, इधर उधर फेंक दें, छेद कर दें, हाथसे उठाकर पटक दें, या बाहर फेंक दें, तो तुम उस पुरुष के साथ कैसा व्यवहार करे!, सद्दालपुत्रने कहा—उस पुरुषको मना करूं, उसके ऊपर क्रोध करुं, तुम मरजा इस प्रकार श्रापदेउं, लकडीसे मार मारुं, रस्सीसे बांध देउं, रे दुष्ट! जानता नहीं है? ऐसा क्रोध युक्त वचन सुनाउं, थपड़ आदि लगाउं, उसके पास जो द्रव्य हो वह छीन करके कठोर वचनोंसे तिरस्कार करूं या अकालमें ही उसको जान से मार डालूं। इस प्रकारके वचनोंसे सद्दालपुत्र की पुरुषकार की स्वीकृति जानकर इसकी पुष्टि करने के लिये फिर श्रमण भगवान श्रीमहावीरस्वामीने कहा—हे सद्दालपुत्र! यदि तुम्हारे मतसे उत्थानादि नहीं हैं, तो तुम्हारे बरतनों को कोई चोरता या फोड़ता नहीं है, क्योंकि जो होनहार है वह होता है, तो तूँ उस पुरुषके ऊपर क्रोध क्यों करे?, यदि बरतनों को चोरा हुआ मान करके तूँ उस पुरुषके ऊपर क्रोध करे तो तेरा नियतिवाद मिथ्या होता है और पुरुषार्थवाद सिद्ध होता है ॥ ४२॥

सूत्रम्—एत्थ णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए संबुद्धे। तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ २ त्ता एवं वयासी—इच्छामि णं भंते! तुब्भं अंतिए धम्मं निसामेत्तए। तए णं समणं भगवं महावीरे सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स तीसे य जाव धम्मं परिकहेइ ॥ सू० ४२।

अर्थः—इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर का युक्त पूर्वक वचन सुनकर सद्दालपुत्र आजीविकोपासक प्रतिबोध पाया अर्थात् समझा। जिसे सद्दालपुत्र आजीविकोपासक श्रमण भगवान महावीरको वंदना नमस्कार

करके कहने लगा—'हे भगवन्! मैं आपके पास धर्म सुनना चाहता हूँ।' तब श्रमण भगवान महावीरने सद्दालपुत्र आजीविकोपासक को अपना धर्म (सिद्धान्त) समझाया ॥ ४२ ॥

सूत्रम्—तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जावं हियए जहा आणंदो तहा गिहिधम्मं पडिवज्जइ। नवरं एगा हिरण्णकोडी निहाणपउत्ता एगा हिरण्णकोडी वुड्ढिपउत्ता एगा हिरण्णकोडी पवित्थर पउत्ता एगे वए दसगोसाहस्सिएणं वएणं।

अर्थः—तब सद्दालपुत्र आजीविकोपासक श्रमण भगवान महावीर के पास धर्म सुनकर हृष्ठ तुष्ट और आनंदित हुआ। पीछे आनंद श्रावक की तरह पांच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत वाले बारह प्रकार के गृहस्थ धर्म का स्वीकार किया। भोगोपभोग वस्तुओं की मर्यादा की, परिमाण व्रत में विशेषता यही कि—एक हिरण्यकोटिधन भंडार में, एक हिरण्यकोटिधन व्यापार में और एक हिरण्यकोटिधन घर खर्च के लिये रखें, तथा दश हजार गौका एक व्रज ऐसा एक गायोंका व्रज रखा और बाकी त्याग किया।

सद्दालपुत्र का व्रत ग्रहण

सूत्रम्—जाव समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ २ त्ता जेणेव पोलासपुरे नयरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता, पोलासपुरं नयरं मज्झमज्झेणं जेणव सए गिहे जेणेव अग्गिमित्ता भारिया तेणव उवागच्छइ २ त्ता

अग्गिमित्तं भारियं एवं वयासी–एवं खलु देवाणुप्पिए! समणे भगवं महावीरे जाव समोसढे, तं गच्छाहि णं तुमं समणं भगवं महावीरं वंदाहि जाव पज्जुवासाहि, समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जाहि। तए णं सा अग्गिमित्ता भारिया सद्दालपुत्तस्स समणोवासगस्स तहत्ति एयमट्ठं विणएण पडिसुणेइ।

अर्थः—पीछे श्रमण भगवान महावीर को वंदना नमस्कार करके पोलासपुर नगरसे जैसे आया था, वैसे वापिस पोलासपुर गया। अपने घर जाकर अपनी अग्निमित्रा भार्यासे कहने लगा—हे देवानुप्रिय! यहां पधारे हुए श्रमण भगवान महावीर के पास मैंने बारह प्रकार के गृहस्थ धर्म का स्वीकार किया है, जिसे तूँ भी वहां जाकर श्रमण भगवान महावीर को वंदना नमस्कार पूर्वक सेवा भक्ति करके पांच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत वाले बारह प्रकार के गृहस्थ के धर्म का स्वीकार कर। इस प्रकार के सद्दालपुत्र श्रमणोपासक के वचनों को अग्निमित्रा भार्याने विनय पूर्वक स्वीकार किया।

सद्दालपुत्र का कथन

सूत्रम्—तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए कोडंबियपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! लहुकरणजुत्तजोइयं समखुरवालिहाणसमलिहियसिंगएहिं जंबूणयामयकलावजोत्तपइ-

विसिट्ठएहिं रययामयघंटसुत्तरज्जुगवरकंचणखइयनत्थापग्गहोग्गहियएहिं नीलुप्पलकयामेलएहिं पवरगोणजुवाणएहिं नाणामणिकणगघंटियाजालपरिगयं सुजायजुगजुत्तउज्जुगपसत्थसुविरइयानिम्मियं पवरलक्खणोववेयं जुत्तामेव धम्मियं जाणप्पवरं उवट्ठवेह २ त्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पच्चप्पिणंति।

सद्दालपुत्र का कथन

अर्थः—तब सद्दालपुत्र श्रमणोपासकने कौटुंबिक पुरुषों को बुलवाकर कहा—हे देवानुप्रिय! जलदीसे शीघ्रगतिवाले रथको तैयार करो, उसमें पैर के बराबर खुरवाले, वालके गुच्छेदार बराबर पूछवाले, बराबर गोल शृंग वाले, गलेमें सुवर्ण के आभूषण और चांदीके घूंघुरु बंधे हुए, गोटेदार रस्सीसे बंधे हुए, नीलोत्पल जैसी मस्तक पर कलंगी लगे हुए, अच्छी योवनावस्था वाले, अनेक प्रकार के मणियोंसे जड़ी हुई सुवर्णकी घूँघरु की जालीसे आच्छादित, इस प्रकार के बैलों के अच्छे कारिगरसे बने हुए धुरमें जोत कर श्रेष्ठ लक्षणवाले धर्मरथ को शीघ्र ही ले आओ और मेरी आज्ञा मेरे को वापीस करदो। तब कोटुंबिक पुरुषने उसी प्रकार धर्मरथ तैयार कर ले आया।

टीकाः—'तए णं सा अग्गिमित्ता'-इत्यादि, ततः सा अग्निमित्रा भार्या सद्दालपुत्रस्य श्रमणोपासकस्य तथेति एतमर्थं विनयेन प्रतिशृणोति, प्रतिश्रुत्वा (त्य) च स्नाता 'कृतबलिकर्मा' बलिकर्म-लोकरूढं, 'कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्ता' कौतुकं-मषी-

पुण्ड्रादि मङ्गलं-दध्यक्षतचन्दनादि एते एव प्रायश्चित्तमिव प्रायश्चित्तं दुःस्वप्नादिप्रतिघातकत्वेनावश्यंकार्यत्वादिति, शुद्धात्मा वैषिकाणि-वैषार्हाणि मङ्गल्यानि प्रवरवस्त्राणि परिहिता, अल्पमहार्घाभरणालङ्कृतशरीरा चेटिकाचक्रवालपरिकीर्णा, पुस्तकान्तरे यानवर्णको दृश्यते, स चैवं सव्याख्यानोऽवसेयः-'लहुकरणजुत्तजोइयं' लघुकरणेन-दक्षत्वेन ये युक्ताः पुरुषास्तैर्योजितं-यन्त्रयूपादिभिः सम्बन्धितं यत्तत्तथा, तथा 'समखुरवालिहाणसमालिहियसिङ्गएहिं' समखुरवालिधानौ-तुल्यशफपुच्छौ समे लिखिते इव लिखिते शृङ्गे ययोस्तौ तथा ताभ्यां गोयुवभ्यामिति सम्बन्धः, 'जम्बूणयामयकलावजोत्तपइविसिट्ठएहिं' जाम्बूनदमयौ कलापौ-ग्रीवाभरणविशेषौ योक्त्रे च-कण्ठबन्धनरज्जू प्रतिविशिष्टे-शोभने ययोस्तौ तथा ताभ्यां, 'रययामयघण्टसुत्तरज्जुगवरकञ्चणखइयनत्थापग्गहोग्गहियएहिं' रजतमय्यौ-रूप्यविकारौ घण्टे ययोस्तौ तथा सूत्ररज्जुके कार्पासिकसूत्रमय्यौ ये वरकाञ्चनखचिते नस्ते-नासारज्जू तयोः प्रग्रहेण-रश्मिना अवगृहीतकौ च-बद्धौ यौ तौ तथा ताभ्यां. 'नीलुप्पलकयामेलएहिं' नीलोत्पलकृतशेखराभ्यां 'पवरगोणजुवाणएहिं नाणामाणिकणगघण्टियाजालपरिगयं सुजायजुगजुत्तउज्जुगपसत्थसुविरइयनिम्मियं' सुजातं-सुजातदारुमयं युगं-यूपः युक्तं-सङ्गतं ऋजुकं-सरलं (प्रशस्तं) सुविरचितं-सुघटितं निर्मितं-निवेशितं यत्र तत्तथा 'जुत्तामेव धम्मियं जाणप्पवरं उवट्ठवेह' युक्तमेव-सम्बद्धमेव गोयुवभ्यामिति सम्बन्ध इति ।

टीकार्थ—'तए णं सा अग्गिमित्ता' तअग्निमित्रा भार्याने सद्दालपुत्र श्रमणोपासक का कहना विनय पूर्वक स्वीकार किया। पीछे स्नान करके और देवोंका पूजन करके तथा दुष्ट स्वप्न आदि अमंगलको विनाश करनेवाले दहीं अक्षत चंदन आदि मांगलिक वस्तुओं का कपालमें तिलक करके शुद्ध हुई। पीछे मांगलिक ऐसे श्रेष्ठ वस्त्रों को और बहुत मूल्यवाले थोड़े आभूषणों को शरीर पर धारण करके

अपनी सहेलियो के साथ श्रमण भगवान श्रीमहावीर स्वामी के दर्शन करने के लिये जाने को तैयार हुई। पीछे बड़े चतुर पुरुष जो रथको चलाने वाले है उस को आज्ञा दी कि—खुर तक लंबे समान पुछवाले, बराबर सरखे शींगवाले, गलेमें सुनहरी आभूषण पहरे हुए, सुनहरी नकशीदार सुंदर जोत (जिसमे बैलों को गाडी में जोते जाते हैं) लगे हुए, गलेमें लटकती हुई चांदी की घूंघरुवाले, सुनहरी सूतकी नाथ से बंधे हुए, मस्तक पर नील कमल के जैसी कलंगी लगाए हुए, ऐसे युवावस्था वाले दो बैल जिस रथ में जोंते हुए हैं। तथा जिसमें अनेक प्रकार की घूघरु लगा हुआ, अच्छी लकड़ी से बना हुआ, सरल और सुंदर बना हुआ युगवाला, ऐसे धर्मरथ को सजा करके शीघ्र ही यहां लाओ।

अग्निमित्रा का भगवान के पास जाना

सूत्रम्—तए णं सा अग्गिमित्ता भारिया ण्हाया जाव पायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं जाव अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा चेडियाचक्कवालपरिकिण्णा धम्मियं जाणप्पवरं दुरुहइ २ त्ता पोलासपुरं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ २ त्ता जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे जेणेव समणे० तेणेव उवागच्छइ २ त्ता धम्मियाओ जाणाओ पच्चोरुहइ २ त्ता चेडियाचक्कवालपरिवुडा जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता तिक्खुत्तो जाव वंदइ नमंसइ २ त्ता नच्चासन्ने नाइदूरे जाव पंजलिउडा ठिइया चेव पज्जुवासइ। तए णं समणे भगवं महावीरे अग्गिमित्ताए तीसे य जाव धम्मं कहेइ।

अर्थः—पीछे अग्निमित्रा भार्या स्नान करके शुद्ध हुई और शुद्ध वस्त्र तथा अल्प आभूषण बहुत मूल्यवाले शरीर पर धारण करके, दासियों के समूह के साथ धर्मरथ पर आरूढ होकर, पोलासपुर नगरके मध्य रास्ते होकर, जहाँ सहस्राम्र वनमें श्रमण भगवान महावीर हैं, वहां आयी। पीछे रथसे नीचे उतर कर दासियों के समूह के साथ श्रमण भगवान महावीर के पास आयी और तीन वार वंदना नमस्कार करके बहुत नजदीक नहीं और बहुत दूर नहीं, इसप्रकार समीप में हाथ जोड़कर बैठी। तब श्रमण भगवान महावीरने अग्निमित्रा को धर्मोपदेश दिया।

अग्निमित्रा का व्रत ग्रहण

सूत्रम्—तए णं सा अग्गिमित्ता भारिया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा समणं भगवं महावीर वंदइ नमंसइ २ त्ता एवं वयासी—सद्दहामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं जाव से जहेयं तुब्भे वयह। जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतिए बहवे उग्गा भोगा जाव पव्वइया नो खलु अहं तहा संचाएमि देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडा भवित्ता जाव अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जिस्सामि। अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह।

अर्थ—अग्निमित्रा भार्या श्रमण भगवान महावीर का धर्मोपदेश सुनकर हृष्ट तुष्ट और आनंदित हुई। पीछे श्रमण भगवान महावीर को वंदना नमस्कार करके बोली—'हे भगवन्! निर्ग्रंथ प्रवचनमें मेरी श्रद्धा और रूची

हुई है, आपने जो कहा वह सब यथार्थ है। आप देवानुप्रिय के पास बहुत राजा महाराजा आदि भाग्यवान् जीव दीक्षा लेते हैं, वैसे मैं दीक्षा लेने में असमर्थ हूँ, परन्तु आप देवानुप्रिय के पास पांच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकारके गृहस्थ के धर्म को स्वीकार करना चाहती हूँ।' तब श्रमण भगवानने विना प्रतिबंध कहा—हे देवानुप्रिय! जैसे सुख हो वैसा करो।

सूत्रम्—तए णं सा अग्गिमित्ता भारिया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्त-सिक्खावइयं दुवालसविहं सावगधम्मं पडिवज्जइ २ त्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ २ त्ता तमेव धम्मियं जाणप्पवरं दुरुहइ २ त्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया। तए णं समणे भगवं महावीरे अन्नया कयाइ पोलासपुराओ नयराओ सहस्संबवणाओ पडिनिग्गच्छइ २ त्ता बाहिया जणवयविहारं विहरइ ॥ सू० ४३ ॥

अन्यत्र
विहार

अर्थः—तब अग्निमित्रा भार्याने श्रमण भगवान महवीर के पास पांच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रतरूप बारह प्रकार के श्रावक धर्म का स्वीकार किया पीछे श्रमण भगवान महावीर को वंदना नमस्कार करके, धर्मरथ पर चढ़

कर जैसे आयी थी वैसे वापीस अपने घर गई। श्रमण भगवान महावार भी पोलासपुर के सहस्राम्रवनसे निकल कर अन्यत्र जनपद विहर में विचरने लगे ॥ ४३ ॥

सूत्रम्—तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए जाए अभिगयजीवाजीवे जाव विहरइ। तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे–एवं खलु सद्दालपुत्ते आजीवियसमयं वमित्ता समणाणं निग्गंथाणं दिट्ठिं पडिवन्ने। तं गच्छामि णं सद्दालपुत्तं आजीविओवासयं समणाणं निग्गंथाणं दिट्ठिं वामेत्ता पुणरवि आजीवियदिट्ठिं गेण्हावित्तए त्तिकट्टु एवं संपेहेइ २ त्ता आजीवियसंघसंपरिवुडे जेणेव पोलासपुरे नयरे जेणेव आजीवियसभा तेणेव उवागच्छइ २ त्ता आजीवियसभाए भंडगनिक्खेवं करेइ २ त्ता कइवएहिं आजीविएहिं सद्धिं जेणेव सद्दालपुत्ते समणोवासए तेणेव उवागच्छइ।

अर्थः—आजीविकोपासक सद्दालपुत्र श्रमणोपासक होकर तथा जीवाजीव का ज्ञान प्राप्त करके श्रावक धर्म का पालन करता हुआ सुखसे रहने लगा। अब मंखलिपुत्र गोशाल को मालूम हुआ कि सद्दालपुत्रने आजीविक धर्म को छोड़कर श्रमणनिर्ग्रंथ का धर्म स्वीकारा है। इसलिये मैं वहां जाकर सद्दालपुत्र आजीविकोपासक को श्रमण निर्ग्रन्थ के धर्म से छुडवा कर फिर आजीविकधर्म का स्वीकार कराउं। ऐसा विचार करके आजीविक संघ के साथ

पोलासपुर नगरमें जहां आजीविकधर्म की सभा थी, वहां आया और अपना भंडोपकरण रखकर कितनेक आजीविक पंथियों के साथ सद्दालपुत्र श्रमणोपासक के पास आया।

सूत्रम्—तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए गोसालं मंखलिपुत्तं एज्जमाणं पासइ २ त्ता नो आढाइ नो परिजाणाइ अणाढायमाणे अपरिजाणमाणे तुसिणीए संचिट्ठइ। तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सद्दालपुत्तेणं समणोवासएणं अणाढाइज्जमाणे अपरिजाणिज्जमाणे पीढफलगासिज्जासंथारट्ठयाए समणस्स भगवओ महावीरस्स गुणकित्तणं करेमाणे सद्दालपुत्तं समणोवासयं एवं वयासी।

अर्थः—मंखलिपुत्र गोशाल को आता हुआ देखकर सद्दालपुत्र श्रमणोपासकने उसका आदर सन्मान नहीं किया और उसका आना अच्छा नहीं समझकर मौन रहा। सद्दालपुत्र श्रमणोपासक से अनादर पाया हुआ मंखलिपुत्र गोशाल पीठ फलक शय्या और संथारा प्राप्त करने के लिये श्रमण भगवान महावीर का गुण कीर्त्तन करता हुआ सद्दालपुत्र श्रमणोपासक को कहने लगा।

सूत्रम्—आगए णं देवाणुप्पिया! इहं महामाहणे?। तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए गोसलं मंखलिपुत्ते एवं वयासी—के णं देवाणुप्पिया! महामाहणे?। तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सद्दालपुत्तं

समणोवासयं एवं वयासी–समणे भगवं महावीरे महामाहणे । से केणट्ठेणं देवाणुप्पिया ! एवं वुच्चइ–समणे भगवं महावीरे महामाहणे ? एवं खलु सद्दालपुत्ता ! समणे भगवं महावीरे महामाहणे उप्पन्नणाणदंसणधरे जाव महियपूइए जाव तच्चकम्मसंपयासंपउत्ते । से तेणट्ठेणं देवाणुप्पिया एवं वुच्चइ–समणे भगवं महावीरे महामाहणे ।

अर्थः—हे देवानुप्रिय ! यहाँ महामाहण आये थे ?। तब मंखलिपुत्र गोशाले को सद्दालपुत्र श्रमणोपासकने पूछा—हे देवानुप्रिय ! यहाँ महामाहण कौन ?। तब मंखलिपुत्र गोशालेने सद्दालपुत्र श्रमणोपासक को कहा—श्रमण भगवान महावीर महामाहण है । सद्दालपुत्रने कहा—हे देवानुप्रिय ! श्रमण भगवान महावीर महामाहण कैसे ? मंखलिपुत्र गोशालेने कहा—हे सद्दालपुत्र ! श्रमण भगवान महावीर महामाहण अर्हन्, जिन और केवल ज्ञान दर्शन के धारक है, एवं तीन लोक में वंदनीय और पूजनीय हैं । तथा तथ्य कर्मों से युक्त है, इसलिये हे देवानुप्रिय ! मैंने ऐसा कहा कि श्रमण भगवान महावीर महामाहण (परमदयालु) हैं ।

भगवान के गुण वर्णन

सूत्रम्—आगए णं देवाणुप्पिया ! इहं महागोवे ? के णं देवाणुप्पिया ! महागोवे ? समणे भगवं महावीरे महागोवे । से केणट्ठेणं देवाणुप्पिया ! जाव महागोवे ?। एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगवं

महावीरे संसाराडवीए बहवे जीवे नस्समाणे विणस्समाणे खज्जमाणे छिज्जमाणे भिज्जमाणे लुप्पमाणे विलुप्पमाणे धम्ममएणं दंडेणं सारक्खमाणे संगोवेमाणे निव्वाणमहावाडं साहत्थिं संपावेइ। से तेणट्ठेणं सद्दालपुत्ता! एवं वुच्चइ–समणे भगवं महावीरे महागोवे।

भगवान के गुण वर्णन

अर्थः—फिर मंखलिपुत्र गोशालेने कहा—हे देवानुप्रिय! यहां महागोप (बड़े गोवाल) आये थे? तब सद्दालपुत्रने पूछा—हे देवानुप्रिय? महागोप कौन?। गोशालेने कहा—श्रमण भगवान महावीर महागोप हैं। सद्दालपुत्रने पूछा—श्रमण भगवान महावीर महागोप कैसे?। मंखलिपुत्र गोशाल बोला—हे देवानुप्रिय! श्रमण भगवान महावीर जो इस संसाररूप अटवी में बहुत जीव नाश होते हैं, विनाश होते हैं, क्षय होते हैं, छेदित होते हैं, भेदित होते हैं, लुप्त होते हैं, विलुप्त होते हैं, उन जीवों को धर्मरूप दंड से अच्छी तरह रक्षा करते हैं। एवं निर्वाण (मोक्ष) के महामार्ग के सार्थवाह होकर मोक्ष पहुँचाते हैं, इसलिये हे सद्दालपुत्र! मैंने श्रमण भगवान महावीर को महागोप कहा।

टीकाः—'महागोवे' त्यादि गोपो–गोरक्षकः स चेतरगोरक्षकेभ्योऽतिविशिष्टत्वान्महानिति महागोपः॥ 'नश्यत' इति सन्मार्गाच्यवमानान् 'विनश्यत' इत्यनेकशो म्रियमाणान् 'खाद्यमानान्' मृगादिभावे व्याघ्रादिभिः 'छिद्यमानान्' मनुष्या-

दिमावे खङ्गादिना भिद्यमानान् कुन्तादिना लुप्यमानान् कर्णनासादिच्छेदनेन विलुप्यमानान् बाह्योपध्यपहारतः गा इवेति गम्यते, 'निव्वाणमहावाडं' ति सिद्धिमहागोस्थानविशेषं 'साहत्थे' त्ति स्वहस्तेनेव स्वहस्तेन, साक्षादित्यर्थः ।

'महागोवे' दूसरे गौरक्षकों से अधिक विशिष्ट होने से श्रमण भगवान श्रीमहावीर स्वामी महागोप हैं। क्योंकि जैसे गोवाल उन्मार्ग में जानेवाली, अनेक प्रकारके कारणों से मरनेवाली, व्याघ्र आदि हिंसक प्राणीयों से हीरण की तरह मारे जानेवाली, तलवार आदि से छेदित होनेवाली, भाला आदि से भेदित होनेवाली, ऐसी गौओंको सब तरह से रक्षण करके अपने बाड़े में ले जाता है, उसी प्रकार विनाश होनेवाले मनुष्यों को रक्षण करके मोक्षरूप बड़े बाड़े में अपने स्वयं ले जाते हैं, इसलिये श्रमण भगवान महावीर स्वामी महागोप हैं।

सूत्रम्—आगए णं देवाणुप्पिया! इहं महासत्थवाहे?, के णं देवाणुप्पिया! महासत्थवाहे?, सद्दालपुत्ता! समणे भगवं महावीरे महासत्थवाहे। से केणट्ठेणं० ?, एवं खलु देवाणुप्पिया! समणे भगवं महावीरे संसाराडवीए बहवे जीवे नस्समाणे विणस्समाणे जाव विलुप्पमाणे धम्ममएणं पंथेणं सारक्खमाणे० निव्वाणमहापट्टणाभिमुहे साहत्थिं संपावेइ, से तेणट्ठेणं सद्दालपुत्ता! एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे महासत्थवाहे।

अर्थः—फिर मंखलिपुत्र गोशालेने कहा—हे देवानुप्रिय ! यहाँ महासार्थवाह आये थे ? तब सद्दालपुत्रने पूछा हे देवानुप्रिय ! महासार्थवाह कौन ? । गोशालेने कहा—श्रमण भगवान महावीर महासार्थवाह हैं । सद्दालपुत्रने पूछा—श्रमण भगवान महावीर महासार्थवाह क्यों? गोशालेने कहा—हे देवानुप्रिय ! श्रमण भगवान महावीर इस संसाररूप अटवी में जो बहुत से जीव नाश होते हैं, विनाश होते हैं, क्षय होते हैं, छेदित, भेदित, लुप्त और विलुप्त होते हैं, उन जीवों को धर्मरूप पंथ से अच्छी तरह रक्षण करते हैं और निर्वाणरूप महानगर में पहुंचाते हैं, इसलिये हे सद्दापुत्र मैंने श्रमण भगवान महावीर को महासार्थवाह कहा ।

भगवान के गुण वर्णन

सूत्रम्—आगए णं देवाणुप्पिया ! इहं महाधम्मकही ?, के णं देवाणुप्पिया महाधम्मकही ? समणे भगवं महावीरे महाधम्मकही ? से केणट्ठेणं समणे भगवं महावीरे महाधम्मकही ? । एवं खलु देवाणुप्पिया समणे भगवं महावीरे महइमहालयांसि संसारांसि बहवे जीवे नस्समाणे विणस्समाणे ख० छि० भि० लु० वि० उम्मग्गपडिवन्ने सप्पहविप्पणट्ठे मिच्छत्तबलाभिभूए अट्ठविहकम्मतमपडलपडोच्छन्ने बहूहिं अट्ठेहि य जाव वागरणेहि य चाउरंताओ संसारकंताराओ साहत्थिं नित्थारेइ, से तेणट्ठेणं देवाणुप्पिया ! एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे महाधम्मकही ।

अर्थः—फिर मंखलिपुत्र गोशालेने पूछा—हे देवानुप्रिय ! यहां महाधर्मकथक (धर्मोपदेशक) आये थे ?। सद्दालपुत्रने कहा—महाधर्मकथक कौन ? गोशालेने कहा—श्रमण भगवान महावीर धर्मकथक हैं। सद्दालपुत्रने पूछा श्रमण भगवान महावीर महाधर्मकथक क्यों ? गोशालने कहा—हे देवानुप्रिय ! श्रमण भगवान महावीर महान् अगाध संसार में बहुत जीव नाश, विनाश, क्षय, लुप्त, विलुप्त, छेदित और भेदित होते हैं, उन्मार्ग में प्रवृत्त होते हैं, सन्मार्ग से नष्ठ होते हैं, मिथ्यात्वरूप प्रबल बलसे पराभव पाते हैं, आठ प्रकार के कर्मरूप महाअंधकार में फँस जाते हैं, उन जीवों को अच्छी तरह समझ पूर्वक बोध देकर संसाररूप अटवी से पार पहुंचाते हैं। इसलिये हे देवानुप्रिय ! मैंने श्रमण भगवान महावीर महाधर्मकथक हैं ऐसा कहा।

भगवान के गुण वर्णन

टीका—महासार्थवाहालापकानन्तरं पुस्तकान्तरे इदमपरमधीयते-"आगए णं देवाणुप्पिया ! इहं महाधम्मकही ?, के णं देवाणुप्पिया ! महाधम्मकही ?, समणे भगवं महावीरे महाधम्मकही, से केणट्ठेणं समणे भगवं महावीरे महाधम्मकही ?, एवं खलु सद्दालपुत्ता ! समणे भगवं महावीरे महइमहालयंसि संसारंसि बहवे जीवे नस्समाणे जाव विलुप्पमाणे उम्मग्गपडिवन्ने सप्पहविप्पणट्ठे मिच्छत्तबलाभिभूए अट्ठविहकम्मतमपडलपडोच्छन्ने बहूहिं अट्ठेहि य हेऊहि य पसिणेहि य कारणेहि य वागरणेहि य चाउरन्ताओ संसार कन्ताराओ साहत्थिं नित्थारेइ, से तेणट्ठेणं सद्दालपुत्ता ! समणे भगवं महावीरे महाधम्मकही" त्ति, कण्ठ्योऽयं, नवरं जीवानां नश्यदादिविशेषणहेतुदर्शनायाह-उम्मग्गेत्यादि, तत्रोन्मार्गप्रतिपन्नान्-आश्रितकुदृष्टिशासनान् सत्पथविप्रनष्टान्-त्यक्तजिनशासनान्, एतदेव

कथमित्याह-मिथ्यात्वबलाभिभूतान्, तथा अष्टविधकर्मैव तमःपटलम्-अन्धकारसमूहः तेन प्रत्यवच्छन्नानिति ।

महासार्थवाह पाठ के पीछे 'महाधम्मकही' पाठ का वर्णन अन्य ग्रंथ में इस प्रकार बतलाया है कि—"हे देवानुप्रिय ! यहां महाधर्मकथक आये थे ? सद्दालपुत्रके पूछा—महाधर्मकथक कौन ? गोशालेने कहा—श्रमण भगवान महावीरस्वामी महाधर्मकथक है। सद्दालपुत्रके पूछा—श्रमण भगवान महावीरस्वामी महाधर्मकथक कैसे ?, गोशालेने कहा—हे सद्दालपुत्र : श्रमण भगवान महावीर महा अगाध संसार में बहुत से जीव नाश होते हैं, विलय होते हैं, खादित होते हैं, छेदित होते हैं, भेदित होते हैं, लोप होते हैं, विलुप्त होते हैं, उन्मार्ग में प्रवृत होते हैं, सन्मार्ग से भ्रष्ट होते हैं, मिथ्यात्व से पराभूत होते हैं, आठ महाकर्मरूप अंधकार के समूह से आच्छादित होते हैं, उनको धर्मोपदेशरूप अर्थ, हेतु, प्रश्न, कारण और उत्तरों के द्वारा चतुर्गति रूप संसार अटवी में से अपने स्वयं पार पहुंचाते हैं, इसलिये श्रमण भगवान महावीर स्वामी महाधर्मकथक हैं" नश्यमान आदि विशेषणों का हेतु बतलाते हैं कि—मिथ्यादृष्टियों का शासन ग्रहण करने से और जिनशासन का त्याग करने से जीव विनाश होते हैं, उस का कारण मिथ्यात्व के बल से पराभव होकर आठ प्रकारके कर्मरूप महा अंधकार में फँस जाते हैं।

भगवान के गुण वर्णन

सूत्रम्—आगए णं देवाणुप्पिया! इहं महानिज्जामए ?। के णं देवाणुप्पिया ! महानिज्जामए ?। समणे भगवं महावीरे महानिज्जामए । से केणट्ठेणं०?। एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगवं महावीरे संसारमहासमुद्दे बहवे जीवे नस्समाणे विणस्समाणे जाव विलु० बुड्डमाणे निबुड्डमाणे उप्पियमाणे धम्ममईए नावाए निव्वाणतीराभिमुहे साहत्थिं संपावेइ। से तेणट्ठेणं देवाणुप्पिया ! एवं वुच्चइ-समणे भगवं महावीरे महानिज्जामए ।

अर्थ—फिर मंखलिपुत्र गोशालेने पूछा—हे देवानुप्रिय! यहां महानिर्यामक पधारे थे?। सद्दालपुत्रने कहा हे देवानुप्रिय! महानिर्यामक कौन?। गोशालेने कहा-श्रमण भगवान महावीर महानिर्यामक हैं। सद्दालपुत्रने पूछा—श्रमण भगवान महावीर महानिर्यामक क्यों?। गोशालेने कहा—हे देवानुप्रिय? श्रमण भगवान महावीर इस महान् संसाररूप समुद्र में बहुत जीव नाश होते हैं, विनाश होते हैं, डूबते हैं, जन्म मृत्युरूप पानी में डुबकी (गोते) लगाते हैं, ऐसे जीवों को धर्मरूप जहाज द्वारा निर्वाण के तीर अर्थात् मोक्ष पहुँचाते हैं। इसलिये हे देवानुप्रिय! श्रमण भगवान महावीर महानिर्यामक (धर्मरूप बडे जहाज को चलाने वाला) हैं, ऐसा मैंने कहा।

टीका—तथा निर्यामकालापके 'बुड्डमाणे' त्ति निमज्जतः 'निबुड्डमाणे' त्ति नितरां निमज्जतः जन्ममरणादिजले इति गम्यते, 'उप्पियमाणे' त्ति उत्प्लाव्यमानान् 'पभु' त्ति प्रभवः समर्थाः इतिच्छेकाः-इति एवमुपलभ्यमानादद्भुतप्रकारेण, एवमन्यत्रापि, छेकाः-प्रस्तावज्ञाः,कलापण्डिता इति वृद्धा व्याचक्षते तथा इतिदक्षाः-कार्याणामविलम्बितकारिणः तथा इतिप्रष्ठाः-दक्षाणां प्रधाना वाग्मिन इतिवृद्धैरुक्तं, क्वचित्पत्तट्ठा इत्यधीयते, तत्र प्राप्तार्थाः-कृतप्रयोजनाः, तथा इतिनिपुणाः सूक्ष्मदर्शिनः कुशला इति च वृद्धोक्तं, इतिनयवादिनो-नीतिवक्तारः, तथा इत्युपदेशलब्धा लब्धाप्तोपदेशाः, वाचनान्तरे 'इतिमेधाविनः' अपूर्वश्रुतग्रहणशक्तिमन्तः 'इतिविज्ञानप्राप्ताः' अवाप्तसद्बोधाः।

निर्यामक के आलावे में विशेष बतलाते हैं—'बुडुमणे' जन्ममरणरूप अगाध जल में डूबते हुए, निरंतर डूबते हुए और बहजाने वाले, ऐसे जीवों को अद्भुत शक्ति से उद्धार करने में समर्थ हैं। ऐसा प्रस्ताव को जाननेवाले, कलापंडित, शीघ्र कार्यकर्ता, वक्ता,

कृतार्थी सूक्ष्मदर्शी, कुशल, नीतिके उपदेशक, वक्ताके उपदेशको यथार्थ ग्रहण करनेवाले, अपूर्वश्रुत ग्रहण की शक्तिवाले और श्रुतबोधवाले लोग कहते हैं।

सूत्रम्—तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी–तुब्भे णं देवाणुप्पिया! इयच्छेया जाव इयनिउणा इयनयवादी इयउवएसलद्धा इयविण्णाणपत्ता। पभू णं तुब्भे मम धम्मायरिएणं धम्मोवएसएणं भगवया महावीरेणं सद्धिं विवादं करेत्तए ?। नो तिणट्ठे समट्ठे।

अर्थः—अब सद्दालपुत्र श्रमणोपासकने मंखलिपुत्र गोशालेको कहा–हे देवानुप्रिय! आप इस प्रकार के अत्यंत चतुर हो, दक्ष हो, नयवादी हो, प्रसिद्ध वक्ता हो, सूक्ष्मदर्शी और विज्ञानी हो, इसलिये आप मेरे धर्मोपदेशक धर्माचार्य श्रमण भगवान श्रीमहावीर स्वामी के साथ विवाद कर सकते हैं ?। गोशालेने कहा—हे देवानुप्रिय! मैं उनके साथ शास्त्रार्थ करने में असमर्थ हूँ।

भगवान के गुण वर्णन

सूत्रम्—से केणट्ठेणं देवाणुप्पिया! एवं वुच्चइ–नो खलु पभू तुब्भे मम धम्मायरिएणं जाव महावीरेणं सद्धिं विवादं करेत्तए?। सद्दालपुत्ता! से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे जुगवं जाव निउणसिप्पोवगए एगं महं अयं वा एलयं वा सूयरं वा कुक्कुडं वा तित्तिरं वा वट्टयं वा लावयं वा कवोयं वा कविंजलं वा वायसं

वा सेणयं वा हत्थंसि वा पायंसि वा खुरंसि वा पुच्छंसि वा पिच्छंसि वा सिंगंसि वा विसाणंसि वा रोमंसि वा जहिं जहिं गिण्हइ तहिं तहिं निच्चलं निप्फंदं धरेइ। एवामेव समणे भगवं महावीरे ममं बहूहिं अट्ठेहि य हेऊहि य जाव वागरणेहि य जहिं जहिं गिण्हइ तहिं तहिं निप्पट्ठपसिणवागरणं करेइ। से तेणट्ठेणं सद्दालपुत्ता! एवं वुच्चइ-नो खलु पभू अहं तव धम्मायरिएणं जाव महावीरेणं सद्धिं विवादं करेत्तए।

अर्थः—तब सद्दालपुत्रने पूछा—हे देवानुप्रिय! किसलिये आप मेरे धर्माचार्य श्रमण भगवान श्रीमहावीर स्वामी के साथ शास्त्रार्थ करने में असमर्थ हैं!। तब गोशालेने कहा—हे सद्दालपुत्र! जैसे कोई एक चतुर युवान, कुशल शिल्प कलावाला पुरुष जब एक बड़े बकरे को, मेंढे को, सूअर को, मूर्गे को, तितर को, बटेर को, लवबे को, कबूतर को, कपिंजल को, कौए को या बाज को हाथ, पैर, खुर, पूंछ, पंख, शिंग या रोम इन में से कोई अंग को पकड़ते हैं, तो वह लेश मात्र भी हल चल नहीं हो सकता। उसी प्रकार श्रमण भगवान् महावीर भी मुझे बहुत अर्थ, हेतु और व्याकरण द्वारा जहां २ पकडे, वहां मैं निरुत्तर हो जाऊं। इसलिये मैं तेरे धर्माचार्य श्रमण भगवान महावीर के साथ शास्त्रार्थ करने में असमर्थ हूँ।

भगवान् के गुण वर्णन

टीका—'से जहे' त्यादि, अथ यथा नाम कश्चित्पुरुषः 'तरुणे' त्ति वर्धमानवयाः, वर्णादिगुणोपचित इत्यन्ये यावत्करणादिदं

भगवान् के गुण वर्णन

दृश्यं 'बलवं' सामर्थ्यवान् 'जुगवं' युगं कालविशेषः तत्प्रशस्तमस्यास्तीति युगवान्, दुष्टकालस्य बलहानिकरत्वात्तद्व्यवच्छेदार्थमिदं विशेषणं, 'जुवाणे' त्ति युवा–वयःप्राप्तः, 'अप्पायङ्के' त्ति नीरोगः 'थिरग्गहत्थे' त्ति सुलेखकवद्, अस्थिराग्रहस्तो हि न गाढग्रहो भवतीति विशेषणमिदं 'दढपाणिपाए' त्ति प्रतीतं 'पासपिट्ठन्तरोरुपरिणए' त्ति पार्श्वौ च पृष्ठान्तरे च–तद्विभागौ ऊरू च परिणतौ–निष्पत्तिप्रकर्षावस्थां गतौ यस्य स तथा, उत्तमसंहनन इत्यर्थः, 'तलजमलजुयलपरिघनिभबाहु' त्ति तलयोः–तालाभिधानवृक्षविशेषयोः यमलयोः–समश्रेणीकयोर्यद्युगलं परिघश्च–अर्गला तन्निभौ–तत्सदृशौ बाहू यस्य स तथा, आयतबाहुरित्यर्थः, 'घणनिचियवट्टपालिखन्धे' त्ति घननिचितः–अत्यर्थं निबिडो वृत्तश्च–वर्तुलः पालिवत्–तडागादिपालीव स्कन्धौ–अंशदेशौ यस्य स तथा 'चम्मेट्ठगदुहणमोट्ठियसमाहयनिचियगायकाए' त्ति चर्मेष्टका–इष्टकाशकलादिभृतचर्मकुतपरूपा यदाकर्षणेन धनुर्धरा व्यायामं कुर्वन्ति, द्रुघणो–मुद्गरो, मौष्टिको–मुष्टिप्रमाणः प्रोतचर्मरज्जुकः पाषाणगोलकस्तैः समाहतानि–व्यायामकरणप्रवृत्तौ सत्यां ताडितानि निचितानि गात्राणि–अङ्गानि यत्र स तथा स एवंविधः कायो यस्य स तथा, अनेनाभ्यासजनितं सामर्थ्यमुक्तं, 'लङ्घणपवणजइणवायामसमत्थे' त्ति लङ्घणं च–अतिक्रमण प्लवनं च–उत्प्लवनं जविनव्यायामश्च–तदन्यः शीघ्रव्यापार तेषु समर्थो यः स तथा, 'उरस्सबलसमागए' त्ति अन्तरोत्साहवीर्ययुक्त इत्यर्थः 'छेए' त्ति प्रयोगज्ञः 'दक्खे' त्ति शीघ्रकारी 'पत्तट्ठे' त्ति अधिकृतकर्मणि निष्ठाङ्गतः प्राप्तार्थः, प्रज्ञ इत्यन्ये, 'कुसले' त्ति आलोचितकारी 'मेहावि' त्ति सकृद्दृष्टश्रुतकर्मज्ञः 'निउणे' त्ति उपायारम्भकः 'निउणसिप्पोवगए' त्ति सूक्ष्मशिल्पसमन्वित इति, अजं वा–छगलं एलकं वा–उरभ्रं शूकरं

वा-वराहं कुर्कुटतितिरवर्तकलावककपोतकपिञ्जलवायसश्येनकाः पक्षिविशेषा लोकप्रसिद्धाः, 'हत्थंसि वा' त्ति यद्यप्यजादीनां हस्तो न विद्यते तथाप्यग्रेतनपादो हस्त इव हस्त इतिकृत्वा हस्ते वेत्युक्तं, यथासम्भवं चैषां हस्तपादखुरपुच्छपिच्छशृङ्गविषाणरोमाणि योजनीयानि, पिच्छ-पक्षावयवविशेषः, शृङ्गमिहाजैडकयोः प्रतिपत्तव्यं, विषाणशब्दो यद्यपि गजदन्ते रूढस्तथापीह शूकरदन्ते प्रतिपत्तव्यः, साधर्म्यविशेषादिति, निश्चलम्-अचलं सामान्यतो निष्पन्दं-किञ्चिच्चलनेनापि रहितम् ।

टीकार्थ - 'से जहे' कोई पुरुष बढती हुई अवस्था वाला और सुंदर रूप आदि गुणोवाला । यावत् कहने से इतना पाठ विशेष है—'बलवं' सामर्थ्यवाला, प्रशस्त कालमें जन्मा हुआ, यह विशेषण बल आदिकी हानि करनेवाला दुष्टकाल का परिहार करने के लिये है । 'जुवाणे' युवावस्था को प्राप्त, 'अप्पायंके' रोग रहित, 'थिरग्गहत्थे' अच्छे लेखक की तरह हाथ का अग्रभाग जिसका स्थिर है ऐसा, अर्थात् मजबूत हाथ और पैर वाला, 'पासपिट्ठंतरोरुपरिणए' दोनों बगल और पृष्ठ भाग तथा जंघा आदि पुष्ट अवयववाला, अर्थात् सम्पूर्ण प्रशस्त अवस्थावाला उत्तमसंघयणवाला, 'तलजमलजुयलपरिघनिभबाहु' दो खडे हुए तालवृक्षके जैसी अथवा बडी अर्गला (आगल) के जैसी लंबी भुजा वाला, 'घणनिचियवट्टपालिखंधे' अत्यंत सघन और गोल तलाव आदि की पाल के जैसे कंधे वाला. 'चम्मेट्ठगदुहणमोट्ठियसमाहयनिचियगायकाए' ईंटों के टूकडों से भरा हुआ चमडे का कुतुप जिससे धनुर्धर लोग व्यायाम करते हैं, मुद्गर, चमड़ की डोरी में रखा हुआ मुष्टिक प्रमाण का पाषाण का टूकडा, इत्यादि से व्यायाम करने के समय अवयवों को ठोक २ करके मजबूत किये हुए अंगोंवाला अर्थात् कसरत आदिसे प्राप्त किये हुए बलवाला, 'लंघणपवणजइणवायामसमत्थे' लांघने में, कुदने में, दोडने में और शीघ्र काय करने में अधिक बलवाला, 'उरस्सबलसमागए' उत्साह युक्त बलवाला, 'छेए' प्रयोग को जाननेवाला, 'दक्खे' शीघ्र कार्य करने में चतुर, 'पत्तट्ठे' अपने आधीन कार्यों में स्थिर चेष्टा वाला अर्थात् चतुर, 'कुसले' विचार पूर्वक कार्य करने वाला' 'मेहावि' एक वार देखकर या सुनकर कार्य को जानने वाला, 'निउणे' उपायका आरंभ करनेवाला 'निउणसिप्पोवगए' सूक्ष्म कार्य

भगवान् के गुण वर्णन

करनेवाला, इस प्रकार का बलवान् पुरुष बकरा, मेंढा, सूअर इत्यादि पशु विशेष के तथा कुकडा, तीतर, बटेर, लावक, कपोत, कपिंजल, कौआ और श्येन इत्यादि पक्षिविशेष के हाथ, (बकरे आदि पशुओं के हाथ न होने से आगे के पैरों को हाथ की मुआफिक मान लिया है) पैर, खूर, पूछ, शींग, दांत या रोम (पंख) आदि को पकडे तो उन पशु पक्षियों को निश्चल कर देता है। अर्थात् कुछ भी हलने चलने नहीं देता। (विषाण शब्द हाथी दांत के अर्थ में रूढ है तो भी यहां सूअर का दांत समझना)।

सूत्रम्—तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी—जम्हा णं देवाणुप्पिया! तुब्भं मम धम्मायरियस्स जाव महावीरस्स संतेहिं तच्चेहिं तहिएहिं सब्भूएहिं भावेहिं गुणकित्तणं करेह तम्हा णं अहं तुब्भे पाडिहारिएणं पीढ जाव संथारएणं उवनिमंतेमि। नो चेव णं धम्मोत्ति वा तवोत्ति वा। तं गच्छह णं तुब्भं मम कुंभारावणेसु पाडिहारियं पीढफलग जाव ओगिणिहत्ताणं विहरइ।

अर्थः—तब सद्दालपुत्र श्रमणोपासकने मंखलिपुत्र गोशाले को कहा—हे देवानुप्रिय! आप मेरे धर्माचार्य धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर को अच्छे तथ्य भावसे यथार्थ गुण कीर्त्तन करते हैं। इसलिये मैं आप को पीढ फलक शय्या संथारा आदि के लिये आमंत्रण करता हूँ। किन्तु उसमें मैं धर्म या तप मानता नहीं हूँ अर्थात् आपको आमंत्रण करने में धर्म नहीं समझता। आप जाओ और मेरी कुंभार की दुकानों में से पीढ फलक शय्या आदि जो चाहिये, वह लेकर सुख से रहो।

सूत्रम्—तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सद्दालपुत्तस्स समणोवासयस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ २ त्ता कुंभारावणेसु पाडिहारियं पीढ जाव ओगिण्हित्ता णं विरहइ । तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सद्दालपुत्तं समणोवासयं जाहे नो संचाएइ बहूहिं आघवणाहि य पण्णवणाहि य सण्णवणाहि य विण्णवणाहि य निग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा ताहे संते तंते परितंते पोलासपुराओ नगराओ पडिणिक्खमइ २ त्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ॥ सू० ४४ ॥

अर्थः—सद्दालपुत्र श्रमणोपासक का ऐसा कहना मंखलिपुत्र गोशालेने स्वीकार किया और उस की दुकानों से पाट पाटले शय्या आदि ग्रहण करके सुख से रहने लगा। इस प्रकार रहते हुए मंखलिपुत्र गोशाल सम्यग् ज्ञान को प्राप्त कराने वाले ऐसे अनुकूल वचनों वाली अनेक युक्ति प्रयुक्ति से भी सद्दालपुत्र श्रमणोपासक को निर्ग्रन्थ प्रवचन से चलायमान कर सका नहीं। तब थक कर, निराश होकर, पोलासपुर नगर से बाहर निकल कर अन्यत्र जनपदविहार में विचरने लगा ॥ ४४ ॥

भगवान् के गुण वर्णन

टीका—'आघवणाहि य' त्ति आख्यानैः प्रज्ञापनाभिः-भेदतो वस्तुप्ररूपणाभिः 'सञ्ज्ञापनाभिः' सञ्ज्ञानजननैः 'विज्ञापनाभिः' अनुकूलभणितैः (सू० ४४)।

टीकार्थः—अनेक प्रकार के भेदों से वस्तु की प्ररूपणा करने वाले, सम्यग् ज्ञान को प्राप्त कराने वाले, ऐसे अनुकूल वचनों से समझाने लगा ॥ ४४ ॥

देवका उपसर्ग

सूत्रम्—तए णं तस्स सद्दालपुत्तस्स समणोवासयस्स बहुहिं सील० जाव भावेमाणस्स चोद्दस संवच्छरा वइक्कंता । पण्णरसमस्स संवच्छरस्स अंतरा वट्टमाणस्स पुव्वरत्तावरत्तकाले जाव पोसहसालाए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ । तए णं तस्स सद्दालपुत्तस्स समणोवासयस्स पुव्वरत्तावरत्तकाले एगे देवे अंतिअं पाउब्भवित्था । तए णं से देवे एगं महं नीलुप्पल जाव असिं गहाय सद्दालपुत्तं समणोवासयं एवं वयासी–जहा चुलणीपियस्स तहेव देवो उवसग्गं करेइ । नवरं एक्केक्के पुत्ते नव मंससोल्लए करेइ जाव कणीयसं घाएइ २ त्ता जाव आयंचइ । तए णं सद्दालपुत्ते समणोवासए अभीए जाव विहरइ ।

अर्थः—अब सद्दालपुत्र श्रमणोपासक के अपने लिये हुए शीलव्रत और गुणव्रतों को अच्छी तरह पालन करते हुए चौदह वर्ष व्यतीत हो गये। पंद्रहवें वर्ष के अधबीच में एक दिन मध्यरात्रि के समय श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामी के पास ली हुई धर्मप्रज्ञप्ति को स्वीकार करके, अपनी पौषधशाला में रहा। वहां मध्यरात्रि के समय सद्दालपुत्र श्रमणोपासक के पास एक देव आया। वह देव कामदेव अध्ययन में कहे अनुसार रूप बनाकर, हाथ में नीलोत्पल जैसी तीक्ष्ण तलवार लेकर सद्दालपुत्र श्रमणोपासक को कहने लगा—'जो तू तेरे शीलव्रत और

गुणव्रतों को नहीं छोडेगा तो तेरे तीनों पुत्रों को तेरे सामने मारकर, उन के नव २ टूकडे करके तेल की गरम कडाही में पकाउंगा और यही तेल तेरे शरीर पर छींटकुंगा' इत्यादि चूलणीपिता को जो उपसर्ग हुआ था, उसी प्रकार सब उपसर्ग किया। परन्तु सद्दालपुत्र श्रमणोपासक लेशमात्र भी चलाय मान नहीं हुआ।

सूत्रम्—तए णं से देवे सद्दालपुत्तं समणोवासयं अभीयं जाव पासित्ता चउत्थंपि सद्दालपुत्तं समणोवासयं एवं वयासी–हं भो सद्दालपुत्ता! समणोवासया अपत्थियपत्थिया जाव न भंजासि तओ ते जा इमा अग्गिमित्ता भारिया धम्मसहाइया धम्मबिइज्जिया धम्माणुरागरत्ता समसुहदुक्खसहाइया तं ते साओ गिहाओ नीणेमि २ त्ता तव अग्गओ घाएमि २ त्ता नव मंससोल्लए करेमि २ त्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेमि २ त्ता तव गायं मंसेण य सोणिएण य आयंचामि। जहा णं तुमं अट्टदुहट्ट जाव ववरोविज्जासि। तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव विहरइ।

अर्थः—वह देव सद्दालपुत्र श्रमणोपासक को निर्भय देखकर चौथी बार कहने लगा—हे सद्दालपुत्र श्रमणोपासक! अप्रार्थित के प्रार्थी अर्थात् अकाल में मृत्यु चाहनेवाला! जो तू तेरे शीलव्रत और गुणव्रतों को न छोडेगा तो तेरी धर्म की सहायक, धर्मानुरागिणी, सुख दुःख में भाग लेनेवाली अग्निमित्रा भार्या को तेरे घरसे लाकर

तेरे सामने मार डालूंगा और उस के शरीर के नव २ टूकडे करके, तेलकी गरम कडाही में पकाकर, वही गरम २ लोहूं मांस तेरे शरीर पर छीटकुंगा। जिसे तूँ आर्त्तध्यान करता हुआ मर जायगा। ऐसा कहने पर भी सद्दालपुत्र श्रमणोपासक निर्भय रहा।

सूत्रम्—तए णं से देवे सद्दालपुत्तं समणोवासयं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी—हं भो सद्दालपुत्ता! समणोवासया तं चेव भणइ। तए णं तस्स सद्दालपुत्तस्स समणोवासयस्स तेणं देवेणं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्तस्स समाणस्स अय अज्झत्थिए ४ समुप्पन्ने। एवं जहा चुलणीपिया तहेव चिंतेइ जेणं ममं जेट्ठं पुत्तं जेणं ममं मज्झिमयं पुत्तं जेणं ममं कणीयसं पुत्तं जाव आयंचइ, जाऽवि य णं ममं इमा अग्गिमित्ता भारिया समसुहदुक्खसहाइया तंपि य इच्छइ साओ गिहाओ नीणेत्ता ममं अग्गओ घाएत्तए। तं सेयं खलु ममं एवं पुरिसं गिण्हित्तएत्तिकट्टु उद्धाइए। जहा चुलणीपिया तहेव सव्वं भाणियव्वं। नवरं अग्गिमित्ता भारिया कोलाहलं सुणित्ता भणइ। सेसं जहा चुलणीपियावत्तव्वया। नवरं अरुणभूए विमाणे उववन्ने जाव महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ। निक्खेवओ॥ सू० ४५॥

सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं सत्तमं अज्झयणं सम्मत्तं॥ ७॥

अर्थः—तब देव सद्दालपुत्र श्रमणोपासक को निर्भय देखकर उक्त वचन दो तीन वार कहे। देव का दो तीन वार वचन सुनकर सद्दालपुत्र श्रमणोपासक को चूलणीपिता की तरह विचार हुआ कि—यह कोई अनार्य पुरुष हैं, इसने मेरे तीनों पुत्रों को मार डाले। अब मेरे सुख दुःख की सहायक मेरी अग्निमित्रा भार्या को भी मारने के लिये तैयार हुआ है। इसलिये इसको पकड लेना उचित है। ऐसा विचार करके देवको पकडने उठा, उतने में वह देव आकाशमें उडगया। जिस से बडा कोलाहल किया। कोलाहल सुनकर अग्निमित्रा वहां आयी और सब वृत्तांत सुनकर कहने लगी—'यहां कोई नहीं आया है, आपके सब पुत्र सकुशल हैं, आपको भ्रम हुआ होगा, जिससें आप व्रतसे चलायमान हुए हैं। अब इसका आप प्रायश्चित लेकर और फिरसे व्रत ग्रहण करके स्थिर रहो।' ऐसा अग्निमित्रा भार्या का वचन सुनकर सद्दालपुत्र श्रमणोपासकने चूलणीपिता की तरह प्रायश्चित लेकर फिरसे धर्मप्रज्ञप्ति का स्वीकार करके रहने लगा। इस प्रकार धर्माराधन करके श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं की आराधना की और अंतमें अपश्चिममारणांतिक संलेषना करके, समाधि पूर्वक काल धर्म प्राप्त करके सोधर्मदेवलोक में अरुण-भूत नामके विमान में देव हुआ। वहां चार पल्योपम का आयुष्य पूर्ण करके महाविदेह क्षेत्रमें जन्म लेवेंगे और वहां ही सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होवेंगे ॥ ४५ ॥

॥ इति श्री उपासकदशा सूत्र का सातवाँ अध्ययन समाप्त ॥ ७ ॥

देवका उपसर्ग

* अष्टममध्ययनम् *

सूत्रम्—अट्ठमस्स उक्खेवओ । एवं खलु जम्बू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे गुणसिले चेइए सेणिए राया तत्थ णं रायगिहे महासयए नामं गाहावई परिवसइ । अड्ढे जहा आणंदो । नवरं अट्ठ हिरण्णकोडिओ सकंसाओ निहाणपउत्ताओ, अट्ठ हिरण्णकोडिओ सकंसाओ वुड्ढिपउत्ताओ, अट्ठ हिरण्णकोडिओ सकंसाओ पवित्थरपउत्ताओ, अट्ठ वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं। तस्स णं महासयगस्स रेवईपामोक्खाओ तेरस भारियाओ होत्था। अहीण जाव सुरूवाओ। तस्स णं महासयगस्स रेवईए भारियाए कोलघरियाओ अट्ठ हिरण्णकोडिओ अट्ठ वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं होत्था, अवसेसाणं दुवालसण्हं भारियाणं कोलघरिया एगमेगा हिरण्णकोडी एगमेगे य वए दसगोसाहस्सिएणं वए णं होत्था ॥ सू० ४६॥

महाशतक की ऋद्धि

अर्थः—अब आठवें अध्ययन का उपोद्घात कहते हैं—हे जम्बू! उस काल उस समय में राजगृह नाम का नगर था। वहां गुणशिल नाम का चैत्य था और श्रेणिक राजा राज्य कर रहा था। उसी राजगृह नगर में महा ऋद्धिवाला महाशतक नामका गाथापति रहता था, उसके पास एक २ कांस्य पात्र सहित आठ हिरण्यकोटिधन भंडार में, आठ हिरण्यकोटिधन व्यापार में और आठ हिरण्यकोटिधन घर खर्च के लिये था। इन से अतिरेक दस हजार गौओं का एक व्रज ऐसे आठ व्रज भी थे। तथा उस महाशतक को रेवती आदि अधिक रूपवती तेरह भार्याएँ थी। उनमें रेवती भार्या को अपने पिताके घर से आठ हिरण्यकोटिधन और दश हजार गौओं का एक व्रज ऐसे आठ व्रज कन्यादान में मिले थे। तथा दूसरी बारह भार्याओं को अपने पिताके घर से एक २ हिरण्यकोटिधन और दश हजार गौओं का एक व्रज ऐसे एक २ व्रज कन्या दान में मिले थे ॥ ४६ ॥

महाशतक की ऋद्धि

टीका—अष्टममपि सुगमं, तथापि किमपि तत्र लिख्यते-'सकंसाओ' त्ति कांस्येन—द्रव्यमानविशेषेण यास्ताः सकांस्याः 'कोलघरियाओ' त्ति कुलगृहात्–पितृगृहादागताः कौलगृहिकाः ॥ सू० ४६ ॥

१०

टीकार्थ—यह आठवाँ अध्ययन की व्याख्या सुगम है, तो भी कुछ संक्षेपसे लिखते हैं—'सकंसाओ' कांस्य नामका द्रव्य नापने का पात्र विशेष, जिसमें ३२ शेर वजन समा सकता है। 'कोलघरियाओ' स्त्रियों के पीयरसे आया हुआ धन कौलगृहिका कहा जाता है ॥ ४६ ॥

सूत्रम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे, परिसा निग्गया, जहा आणंदो तहा निग्गच्छइ, तहेव सावयधम्मं पडिवज्जइ। नवरं अट्ठ हिरण्णकोडिओ सकंसाओ उच्चारेइ। अट्ठ वया, रेवईपामोक्खाहिं तेरसहिं भारियाहिं अवसेसं मेहुणविहिं पच्चक्खाइ। सेसं सव्वं तहेव। इमं च णं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ कल्लाकल्लिं च णं कप्पइ मे बे दोणियाए कंसपाईए हिरण्णभरियाए संववहरित्तए। तए णं से महासयए समणोवासए जाए अभिगयजीवाजीवे जाव विहरइ। तए णं समणे भगवं महावीरे बहिया जणवयविहारं विहरइ ॥ सू० ४७ ॥

महाशतक का व्रतग्रहण

अर्थः—उस काल उस समय में श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामी विहार करते हुए वहाँ गुणाशिल चैत्यमें पधारे, उनको वंदना करने के लिये पर्षदा आई, आनंद श्रावक की तरह महाशतक भी वंदन करने को गया। वहाँ श्रमण भगवान श्री महावीरस्वामी का धर्मोपदेश सुनकर महाशतकने श्रावक धर्म का स्वीकार किया और भोगोपभोग वस्तुओं की मर्यादा की एक २ कांस्य पात्र सहित आठ हिरण्यकोटिधन भंडार में, आठ हिरण्यकोटिधन व्यापार में और आठ हिरण्यकोटिधन घर खर्ज के लिये रखें। उसके उपरांत गोओं के आठ व्रज और अपनी रेवती आदि तेरह स्त्रिएँ, इतना रखकर दूसरे अधिक का त्याग किया। विशेष में एक ऐसा नियम लिया कि—'आज

से मैं प्रतिदिन हिरण्य से भरे हुए दो द्रोण * कांश्यपात्री से व्यवहार करना।' इस प्रकार महाशतक श्रमणोपासक श्रावक धर्म स्वीकार करके जीवाजीव पदार्थ के स्वरूप को जानता हुआ सुखसे रहने लगा। श्रमण भगवान महावीर अन्यत्र जनपद विहार में विचरने लगे ॥ ४७ ॥

रेवती की ईर्ष्या

सूत्रम्—तए णं तीसे रेवईए गाहावइणीए अन्नया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुंब जाव इमेयारूवे अज्झत्थिए ४। एवं खलु अहं इमासिं दुवालसण्हं सवत्तीणं विघाएणं नो संचाएमि महासयएणं समणोवासएणं सद्धिं उरालाइं माणुस्सयाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरित्तए। तं सेयं खलु ममं एयाओ दुवालसवि सवत्तियाओ अग्गिप्पओगेणं वा सत्थप्पओगेणं वा विसप्पओगेणं वा जीवियाओ ववरोवित्ता

---

* द्रोणका प्रमाण मगधदेश के मान के अनुसार प्राचीन महावीर गणितसार में लिखा है कि—

"आद्या षोडशिका तत्र कुडवः प्रस्थ आढकः।
द्रोणो मानी ततः खारी क्रमेण चतुराहतः॥"

अर्थात् षोडशिका (छटांक), कुडव, प्रस्थ, आढक, द्रोण, मानी और खारी ये अनुक्रम से चार २ गुने अधिक माप के है, जिसे चार शेर का एक आढक और चार आढक का एक द्रोण एव कुल सोलह शेर का एक द्रोण माना गया है।

एयासिं एगमेगं हिरण्णकोडिं एगमेगं वयं सयमेव उवसंपज्जित्ता णं महासयएणं समणोवासएणं सद्धिं उरालाइं जाव विहरित्तए । एवं संपेहेइ २ त्ता तासिं दुवालसण्हं सवत्तीणं अंतराणि य छिद्दाणि य विवराणि य पडिजागरमाणी विहरइ ।

रेवती की ईर्ष्या

अर्थः—महाशतक की भार्या रेवती गाथापतिनी एक दिन मध्यरात्रि के समय जागती हुई विचारने लगी—'मेरे को बारह सपत्नी (सौते) होने से महाशतक के साथ अच्छी तरह काम भोग नहीं भोग सकती। इसलिये अच्छा तो यह है कि उन बारह सौते को अग्नि, शस्त्र या विष के प्रयोग से मार डालूँ और उनके एक २ हिरण्य-कोटिधन और एक २ व्रज मेरे आधीन करके महाशतक श्रमणोपासक के साथ सुख पूर्वक भोग भोगती हुई रहूं।' एसा विचार करके वह रेवती अपनी बारह सौते का छिद्र देखती हुई रहने लगी ।

सूत्रम्—तए णं सा रेवई गाहावइणी अन्नया कयाइ तासिं दुवालसण्हं सवत्तीणं अंतरं जाणित्ता छ सवत्तीओ सत्थप्पओगेणं उद्दवेइ २ त्ता छ सवत्तीओ विसप्पओगेणं उद्दवेइ २ त्ता तासिं दुवालसण्हं सवत्तीणं कोलघरियं एगमेगं हिरण्णकोडिं एगमेगं वयं सयमेव पडिवज्जइ २ त्ता महासएणं समणोवासएणं

साद्धिं उरालाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ। तए णं सा रेवई गाहावइणी मंसलोलुया मंसेसु मुच्छिया जाव अज्झोववन्ना बहुविहेहि मंसेहिं य सोल्लेहि य तलिएहि य भज्जिएहि य सुरं च महुं च मेरगं च मज्जं च सीधुं च पसन्नं च आसाएमाणी ४ विहरइ ॥ सू० ४८ ॥

अर्थः—अन्यदा किसी समय सौते को मारने का मौका मिल जाने से छह को शस्त्र प्रयोगसे और छह को विष के प्रयोगसे मारडाली। तथा उन्हों के पियर से लाए हुए एक २ हिरण्यकोटिधन और एक २ व्रज को अपने आधीन करके महाशतक श्रमणोपासक के साथ सुख पूर्वक भोग भोगती हुई रहने लगी। वह रेवती गाथापतिनी मांस की अधिक लोलुपा थी, जिसे अनेक प्रकारक के सोले (शूली से पकाये हुए), तेलमें तले हुए और अग्नि में भूंने हुए मांसों को खाती हुई, तथा सुरा, मधु, मेरक, मद्य, ताडी और प्रसन्ना खजुरी का रस आदि मदिरा को पीती हुई रहने लगी ॥ ४८ ॥

रेवती के अवगुण

टीका—'अन्तराणि य' त्ति अवसरान् 'छिद्राणि' विरलपरिवारत्वानि 'विरहान्' एकान्तानिति, 'मंसलोले' त्यादि मांसलोला—मांसलम्पटा, एतदेव विशिष्यते—मांसमूर्च्छिता, तद्दोषानभिज्ञत्वेन मूढेत्यर्थः, मांसग्रथिता—मांसानुरागतन्तुभिः सन्दर्भिता, मांसगृद्धा—तद्भोगेऽप्यजातकांक्षाविच्छेदा, मांसाध्युपपन्ना—मांसैकाग्रचित्ता, ततश्च बहुविधैर्मांसैश्च सामान्यैः तद्विशेषैश्च, तथा चाह—'सोल्लिएहि य' त्ति शूल्यकैश्च—शूलसंस्कृतकैः तलितैश्च—घृतादिनाऽग्नौ संस्कृतैः भर्जितैश्च—अग्निमात्रपक्वैः सहेति गम्यते, सुरां च

काष्ठपिष्टनिष्पन्नां मधु च-क्षौद्रं मेरकं च-मद्यविशेषं मद्यं च-गुडधातकीभवं सीधु च-तद्विशेषं प्रसन्नां च-सुराविशेषं आस्वादयन्ती-ईषत्स्वादयन्ती कदाचिद् विस्वादयन्ती-विविधप्रकारैर्विशेषेण वा स्वादयन्तीति कदाचिदेव परिभाजयन्ती स्वपरिवारस्य परिभुञ्जाना सामस्त्येन विवक्षिततद्विशेषान् ॥ सू० ४८ ॥

टीकार्थ—'अंतराणि' अवसर अर्थात् मौका देखती हुई, 'छिद्राणि' थोडे परिवारवाले 'विरहान्' एकान्तवास को देखती रहती थी। वह रेवती 'मंसलोले' मांसमें लंपट थी, और मांसमें ही मोहित थी, तथा मांसके दोषों को नहीं जाननेसे मूर्ख थी, मांसके अनुराग रूप तंतुओंसे रची हुई थी, मांस खा लेने पर भी उस की इच्छा पूर्ण नहीं होती थी और मांसमें ही हमेशा एकाग्र चित्तवाली होकर रहती थी. इसलीये अनेक प्रकारके सामान्य और विशेष करके 'सोलिएहि' शूलीसे पकाये हुए, घी आदिसे तले हुए और अग्निसे भूँने हुए मांसको खाती थी। तथा सुरा-दारु और पिष्टसे बना हुआ, मधु-हलका दारु, मेरक--मद्य विसेष, मद्य--गुड़ और धातकी से बना हुआ, सीधु--मद्य विशेष, तथा प्रसन्ना-सुरा विशेष इत्यादि जातिके मदिराका थोड़ा २ स्वाद लेती थी और विशेष प्रकार से भी स्वाद लेती थी, कभी २ अपने परिवार को भी खीलाती थी और कभी सब मांसको अपने आप खा जाती थी ॥ ४८ ॥

रेवती के अवगुण

सूत्रम्—तए णं रायगिहे नयरे अन्नया कयाइ अमाघाए घुट्ठे यावि होत्था। तए णं सा रेवई गाहावइणी मंसलोलुया मंसेसु मुच्छिया ४ कोलघरिए पुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—तुब्भे देवाणुप्पिया! मम कोलघरिएहिंतो वएहिंतो कल्लाकल्लिं दुवे दुवे गोणपोयए उद्दवेह २ त्ता ममं उवणेह। तए णं ते कोल-

घरिया पुरिसा रेवईए गाहावइणीए तहत्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणंति २ त्ता रेवईए गाहावइणीए कोलघरिएहिंतो वएहिंतो कल्लाकल्लिं दुवे दुवे गोणपोयए वहेंति २ त्ता रेवईए गाहावइणीए उवणेंति। तए णं सा रेवई गाहावइणी तेहिं गोणमंसेहिं सोल्लेहि य ४ सुरं च ६ आसाएमाणी ४ विहरइ ॥ सू० ४९ ॥

रेवती के अवगुण

अर्थः—एक दिन राजगृह नगरमें अमारी पटह हुआ अर्थात् 'मेरे राज्य में कोई भी जीवको मारना नहीं' ऐसा ढिंढोरा हुआ। तब मांस लोलुपा रेवती अपने पियर के मनुष्यों को बुलवाकर कहने लगी कि—हे देवानुप्रिय! तुम मेरे लिये हमेशा दो २ गौके बछड़े को मारकर लाया करो। अपने पियर के मनुष्यों ने रेवती का कहना स्वीकार करके अपने पियर से लाये हुए गौओं के व्रज में से प्रतिदिने दो २ गौके बछड़े को मार कर लाने लगे। रेवती गाथापतिनी उन बछड़ों के मांस को खाती और यथेष्ट मदिरा पान करती हुई रहने लगी ॥ ४९ ॥

टीका—'अमाघातो' रूढिशब्दत्वात् अमारिरित्यर्थः 'कोलघरिए' त्ति कुलगृहसम्बन्धिन 'गोणपोतकौ' गोपुत्रकौ 'उद्दवेह' त्ति विनाशयत ॥ सू० ४९ ॥

टीकार्थ—'अमाघातो' अमारि की घोषणा अर्थात् किसी जीवको नहीं मारने का फरमान। 'कोलघरिए' अपने पिता के घरसे लाये हुए। 'गोणपोतकौ' गौ के दो २ बछड़ों को प्रतिदिन 'उद्दवेह' नाश करती थी ॥ ४९ ॥

सूत्रम्—तए णं तस्स महासयगस्स समणोवासगस्स बहूहिं सील जाव भावेमाणस्स चोद्दस संवच्छरा वइक्कंता। एवं तहेव जेट्ठं पुत्तं ठवेइ जाव पोसहसालाए धम्मपण्णत्तिं उवसंपाज्जित्ता णं विहरइ। तए णं सा रेवई गाहावइणी मत्ता लुलिया विइण्णकेसी उत्तरिज्जयं विकड्ढमाणी २ जेणेव पोसहसाला जेणेव महासयए समणोवासए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता मोहुम्मायजणणाइं सिंगारियाइं इत्थिभावाइं उवदंसेमाणी २ महासययं समणोवासयं एवं वयासी–हं भो महासयया समणोवासया! धम्मकामया पुण्णकामया सग्गकामया मोक्खकामया धम्मकंखिया ४ धम्मापिवासिया ४ किण्णं तुब्भं देवाणुप्पिया! धम्मेण वा पुण्णेण वा सग्गेण वा मोक्खेण वा? जण्णं तुमं मए सद्धिं उरालाइं जाव भुंजमाणे नो विहरसि।

रेवती की कामयाचना

अर्थः—लिये हुए शिक्षाव्रत और गुणव्रतों का पालन करते हुए महाशतक श्रमणोपासक के चौदह वर्ष व्यतीत हुए। पीछे अपने बड़े पुत्रको अपना सब व्यावहारिक कारभार देकर और धर्मप्रज्ञप्तिका स्वीकार करके ब्रह्मचर्य पूर्वक वह अपनी पौषधशालामें रहने लगा। वहां एक दिन मदोन्मत्ता, बिखरे हुए बालवाली उसकी रेवती भार्या खुले मस्तक उसके पास आयी और मोह तथा कामोद्दीपन उत्पन्न करनेवाले शृंगारिक स्त्री के हावभावों को बतलाती हुई महाशतक श्रमणोपासक को कहने लगी—हे महाशतक श्रमणोपासक! तूँ धर्म, पुण्य, स्वर्ग और मोक्ष के

चाहने वाले है, धर्म पुण्य स्वर्ग और मोक्ष की आकांक्षावाले है, धर्म पुण्य स्वर्ग और मोक्ष के पिपासु है। परन्तु हे देवानुप्रिय! तूँ मेरी साथ उदार मानुषिक काम भोगों को भोगता हुआ रहे तो पीछे तेरे को धर्म पुण्य स्वर्ग और मोक्ष की क्या जरूरत है?।

रेवती की कामयाचना

टीका:—'मत्त' त्ति सुरादिमदवती 'लुलिता' मदवशेन घूर्णिता, स्खलत्पदेत्यर्थः, विकीर्णा—विक्षिप्ताः केशा यस्याः सा तथा, उत्तरीयकं—उपरितनवसनं विकर्षयन्ती मोहोन्मादजनकान् कामोद्दीपकान् शृङ्गारिकान्—शृङ्गाररसवतः स्त्रीभावान्—कटाक्षसन्दर्शनादीन् उपसन्दर्शयन्ती 'हं भो' त्ति आमन्त्रणं महासयया! इत्यादेर्विहरसीतिपर्यवसानस्य रेवतीवाक्यस्यायमभिप्रायः—अयमेवास्य स्वर्गो मोक्षो वा यत् मया सह विषयसुखानुभवनं, धर्मानुष्ठानं हि विधीयते स्वर्गाद्यर्थं, स्वर्गादिश्चेष्यते सुखार्थं, सुखं चैतावदेव तावद्दृष्टं यत्कामासेवनमिति, भणन्ति च—"जइ नत्थि तत्थ सीमंतिणीओ मणहरपियंगुवण्णाओ । ता रे सिद्धंतिय बन्धणं खु मोक्खो न सो मोक्खो ॥ १ ॥' तथा "सत्यं वच्मि हितं वच्मि, सारं वच्मि पुनः पुनः। अस्मिन्नसारे संसारे, सारं सारङ्गलोचनाः ॥ १ ॥" तथा "द्विरष्टवर्षा योषित्पञ्चविंशतिकः पुमान्। अनयोर्निरन्तरा प्रीतिः, स्वर्ग इत्यभिधीयते ॥ १ ॥"

टीकार्थ—'मत्त' मदिरा आदि को पी करके मदवती बनी हुई, 'लुलिता' मदोन्मत्तसे भ्रमित हुई अर्थात् स्खलना पाती हुई, केशों को बिखेरती हुई, उपरके वस्त्र ओढनी को फेंकती हुई, खुले शिर होकर, मोह और उन्माद को करनेवाले ऐसे काम को उत्पन्न करनेवाले वचनों को बोलती हुई, शृंगार रसवाले कटाक्षों को देखती हुई, 'हं भो महासयया' हे महाशतक! इत्यादि वचनों से आमंत्रण करके श्रमणोपासक महाशतक को कहने लगी--मेरे साथ काम भोग भोगता हुआ रहे। इस प्रकार रेवती के वचनों का यह अभिप्राय है

कि--मेरे साथ विषयसुख का अनुभव करना यही स्वर्ग और मोक्ष है। स्वर्ग आदिके लिये धर्म का अनुष्ठान करता है और सुख के लिये स्वर्ग की इच्छा करता है, वही स्वर्ग और सुख तो कामसेवन में देखा जाता है। कहा है कि--जहां मनोहर प्रियंगुवर्णवाली सुंदर स्त्रियां नहीं है, वहां हैं सिद्धान्तको जाननेवाले ! तेरा मोक्ष बंधनरूप है परंतु वास्तविक मोक्ष नहीं है। फिर भी मैं सत्य कहती हूँ हितवचन करती हूँ और बारंबार सार वचनों को कहती हूँ, कि यह असार संसार में मृगलोचनावाली सुंदर स्त्रियां ही सार हैं। फिर भी कहती हूँ कि--सोलह वर्षवाली युवती स्त्री और पचीस वर्षका युवान पुरुष इन दोनों की निरंतर जो प्रीति है, यही स्वर्ग कहा जाता है।

सूत्रम्—तए णं से महासयए समणोवासए रेवईए गाहावइणीए एयमट्ठं नो आढाइ नो परियाणाइ अणाढाइज्जमाणे अपरियाणमाणे तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए विहरइ। तए णं सा रेवई गाहावइणी महासययं समणोवासयं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी–हं भो! तं चेव भणइ। सोऽवि तहेव जाव अणाढाइज्जमाणे अपरियाणमाणे विहरइ। तए णं सा रेवई गाहावइणी महासयएणं समणोवासएणं अणाढाइज्जमाणी अपरियाणिज्जमाणी जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया ॥ सू० ५० ॥

अर्थः—इस प्रकार रेवती गाथापतिनी के कहे हुए वचनों का महाशतक श्रमणोपासकने कुछ भी आदर किया नहीं, उतना ही नहीं बल्की उसका स्वीकार भी न किया, परंतु मौन रहकर अपने धर्मध्यानमें स्थिर रहा। तब रेवती गाथापतिनी ने उक्त वचन दो तीन वार कहे, परंतु उसका आदर या स्वीकार भी कुछ न किया और

रेवती की कामयाचना

मौन होकर धर्माराधन में अधिक दृढ रहा। तब रेवती गाथापतिनी महाशतक श्रमणोपासक द्वारा अनादर पायी हुई, जिस दिशासे आयी थी, उसी दिशामें अपने ठिकाने वापीस चली गई ॥ ५० ॥

सूत्रम्—तए णं से महासयए समणोवासए पढमं उवासगपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ। पढमं अहासुत्तं जाव एक्कारसऽवि। तए णं से महासयए समणोवासए तेणं उरालेणं जाव किसे धमणिसंतए जाए। तए णं तस्स महासययस्स समणोवासयस्स अन्नया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकाले धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयं अज्झत्थिए ४ एवं खलु अहं इमेणं उरालेणं जहा आणंदो तहेव अपच्छिममारणंतियसंलेहणाझूसिय-सरीरे भत्तपाणपडियाइक्खिए कालं अणवकंखमाणे विहरइ।

अर्थः—अब महाशतक श्रमणोपासक श्रावक की प्रथम उपासक प्रतिमा का स्वीकार करके रहने लगा। अनुक्रम से आनंद श्रावक की तरह अग्यारह प्रतिमाओं का अच्छी तरह आचरण करता हुआ, उग्र तपस्या से अत्यंत कृश और दुर्बल हो गया। तब महाशतक श्रमणोपासक को एक दिन मध्यरात्रि के समय धर्म जागरणा करते हुए विचार हुआ कि—अब मेरा शरीर दुर्बल हो गया है, जिसे अब अंतिम अपाश्चिममारणांतिकसंलेखना का स्वीकार करना चाहिये। ऐसा विचार करके आनंद श्रावक की तरह अपाश्चिममारणांतिकसंलेखना स्वीकार करके,

तथा आहार पानी का त्याग करके, जीवित और मृत्यु में समभाव रखता हुआ रहने लगा।

सूत्रम्—तए णं तस्स महासयगस्स समणोवासगस्स सुभेणं अज्झवसाणेणं जाव खओवसमेणं ओहिणाणे समुप्पन्ने पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दे जोयणसाहस्सियं खेत्तं जाणइ पासइ। एवं दक्खिणेणं पच्चत्थिमेणं। उत्तरेणं जाव चुल्लहिमवंतं वासहरपव्वयं जाणइ पासइ। अहे इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए लोलुयच्चुयं नरयं चउरासीइवाससहस्सट्ठिइयं जाणइ पासइ ॥ सू० ५१ ॥

महाशतक को ज्ञानप्राप्ति

अर्थः—इस प्रकार रहते हुए महाशतक श्रमणोपासक के मनके परिणाम अधिक शुभ विशाल और शुद्ध हुए। तथा ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम हो गया। जिसे उसको अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ। इसलिये वह आनंद श्रमणोपासक की तरह पूर्व पश्चिम और दक्षिण दिशामें एक २ हजार योजन तक लवणसमुद्रके क्षेत्रको जानने और देखने लगा। उत्तरमें चुल्लहिमवंत वर्षधर पर्वत तक, तथा नीचे रत्नप्रभा पृथ्वी के चोरासी हजार की स्थितिवाले लोलुयच्चुय नामके नरक तक क्षेत्रको जानने और देखने लगा ॥ ५१ ॥

सूत्रम्—तए णं सा रेवई गाहावइणी अन्नया कयाइ मत्ता जाव उत्तरिज्जयं विकड्ढेमाणी २ जेणेव महासयए समणोवासए जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ २ त्ता महासययं तहेव भणइ जाव दोच्चंपि

तच्चंपि एवं वयासी–हं भो तहेव । तए णं से महासयए समणोवसए रेवईए गाहावइणीए दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते ४ ओहिं पउंजइ २ त्ता ओहिणा आभोएइ २ त्ता रेवइं गाहावइणिं एवं वयासी–हं भो रेवई ! अपत्थियपत्थिए ४ एवं खलु तुमं अंतो सत्तरत्तस्स अलसएणं वाहिणा अभिभूया समाणी अट्टदुहट्टवसट्टा असमाहिपत्ता कालमासे कालं किच्चा अहे इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए लोलुयच्चुए नरए चउरासीइवाससहस्सट्ठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववज्जिहिसि ।

रेवती की कामयाचना

अर्थः—फिर एक दिन रेवती गाथापतिनी मदोन्मत्ता होकर खुले शिर जहां पौषधशाला में महाशतक श्रमणोपासक है, वहां आर्या और कामोद्दीपन वचनों से काम याचना करने लगी। दो तीन वार काम याचना करने पर महाशतक श्रमणोपासक क्रोधातुर हुआ और अपना अवधिज्ञान से देखकर रेवती गाथापतिनी को कहने लगा— हे रेवती ! अकाल मृत्यु को चाहनेवाली ! आज से तूँ सात रात्रि में अलस रोगसे दुःखी होकर, आर्त्तध्यान करती हुई, असमाधि पूर्वक मर करके नीचे रत्नप्रभापृथ्वी के लोलुयच्चुय नामके नरक में जायगी। वहां चोरासी हजार वर्ष तक नरक के दुःखों को भोगेगी।

सूत्रम्—तए णं सा रेवई गाहावइणी महासयएणं समणोवासएणं एवं वुत्ता समाणी एवं वयासी—रुट्ठे णं ममं महासयए समणोवासए हीणे णं ममं महासयए समणोवासए अवज्झाया णं अहं महासयएणं समणोवासएणं न नज्जइ णं अहं केणवि कुमारेणं मारिज्जिस्सामित्तिकट्टु भीया तत्था तासिया उव्विग्गा संजायभया सणियं २ पच्चोसक्कइ २ त्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता ओहय जावज्झियाइ। तए णं सा रेवई गाहावइणी अंता सत्तरत्तस्स अलसएणं वाहिणा अभिभूया अट्टदुहट्टवसट्टा कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए लोलुयच्चुए नरए चउरासीइवाससहस्सट्ठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववन्ना ॥ सू० ५२ ॥

रेवती की चिन्ता

अर्थः—इस प्रकार महाशतक श्रमणोपासक का कहना सुनकर रेवती गाथापतिनी मन में कहने लगी—'महाशतक श्रमणोपासक मेरे पर गुस्से हुआ है, अब मैं उसको अच्छी नहीं लगती, जिससे न मालूम वह मेरा किस कुमार से घात करेगा।' ऐसा मनमें बोलती हुई भय और त्राससे उद्वेग करती हुई एवं खेद करती हुई वह धीरे २ पौषधशाला से निकल कर अपने घर आयी और आर्त्तध्यान करती हुई रहने लगी। पीछे महाशतक श्रम-

णोपासकके कहे अनुसार सातवीं रात्रि को रेवती गाथापतिनी अलस रोगसे दुःखी होकर आर्त्तध्यान पूर्वक मर गई और रत्नप्रभापृथ्वी के चोरासी हजार वर्ष की स्थिनिवाले लोलुयच्चुग नामके नरक में उत्पन्न हुई ॥ ५२ ॥

टीकाः—'अलसएणं' ति विषूचिकाविशेषलक्षणेन, तल्लक्षणं चेदम्-" नोर्ध्वं व्रजति नाधस्तादाहारो न च पच्यते । आमाशयेऽलसीभूतस्तेन सोऽलसकः स्मृतः ॥ १ ॥' इति ॥ 'हीणे' त्ति प्रीत्या हीनः-त्यक्तः 'अवज्झाय' त्ति अपध्याता दुर्ध्यानविषयीकृता 'कुमारेणं' ति दुःखमृत्युना ॥ सू० ५२ ॥

टीकार्थः—'अलसएणं' यह विषूचिका नामका रोग विशेष है। उसका लक्षण इस प्रकार है—खाया हुआ आहार न तो ऊंचा जाता है, न नीचा जाता है और नहीं पचता है, किन्तु आमाशयों में आलसी होकर पडा रहता है, उसको अलसक रोग कहते हैं। 'हीणे' प्रीति से हीन, 'अवज्झाय' अपध्यान अर्थात् दुर्ध्यान से 'कुमारेणं' दुःखी होकर मर गई ॥ ५२ ॥

रेवती का अवसान

सूत्रम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसरणं जाव परिसा पडिगया। गोयमाइ समणे भगवं महावीरे एवं वयासी—एवं खलु गोयमा ! इहेव रायगिहे नयरे ममं अंतेवासी महासयए नामं समणोवासए पोसहसालाए अपच्छिममारणांतियसंलेहणाए झूसियसरीरे भत्तपाणपडियाइक्खिए कालं अणवकंखमाणे विहरइ। तए णं तस्स महासयगस्स रेवई गाहावइणी मत्ता जाव विकड्ढेमाणी २ जेणेव पोसहसाला जेणेव महासयए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता मोहुम्माय जाव एवं वयासी—तहेव जाव दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी।

अर्थः—उस काल और उस समयमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामी राजगृह नगर के गुणशिल चैत्य में पधारे। पर्षदा वंदन करने को आयी और धर्मोपदेश सुनकर वापीस गई। पीछे श्रमण भगवान महावीरने गौतम को बुलवाकर कहा—' हे गौतम ! इस राजगिरि नगरी में मेरा अंतेवासी महाशनक नामका श्रावक अपनी पौषध-शाला में अपश्चिममारणांतिक संलेखना का आराधन करके, एवं आहार पानी का त्याग करके जीवन और मरण को सम भावमें रखता हुआ रहा है। उसके पास उस की भार्या रेवती गाथापतिनीने आकरके दो तीन वार काम याचना की।

भगवान् का संदेश

सूत्रम—तए णं से महासयए समणोवासए रेवईए गाहावइणीए दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते ४ ओहिं पउंजइ २ त्ता ओहिणा आभोएइ २ त्ता रेवइं गाहावइणिं एवं वयासी—जाव उववज्जिहिसि। नो खलु कप्पइ गोयमा ! समणोवासगस्स अपच्छिम जाव झूसियसरीरस्स भत्तपाणपडियाइक्खियस्स परो संतेहिं तच्चेहिं तहिएहिं सब्भूएहिं अणिट्ठेहिं अकंतेहिं अप्पिएहिं अमणुण्णेहिं अमणामेहिं वागरणेहिं वागरित्तए। तं गच्छ णं देवाणुप्पिया ! तुमं महासययं समणोवासयं एवं वयाहि—नो खलु देवाणुप्पिया ! कप्पइ समणोवासगस्स अपच्छिम जाव भत्तपाणपडियाइक्खियस्स परो संतेहिं जाव वागरित्तए। तुमे य णं देवा-

णुप्पिया ! रेवई गाहावइणी संतेहिं ४ अणिट्ठेहिं ६ वागरणेहिं वागरिया। तं णं तुमं एयस्स ठाणस्स आलोएहि जाव जहारिहं च पायच्छित्तं पडिवज्जाहि ।

अर्थः—जिससे महाशतक श्रमणोपासक गुस्से होकर अपने अवधिज्ञानसे सातवीं रात्रि को मरजाने का कटुक वचन कहा। इत्यादि-महाशतक और रेवती का विवाद कह सुनाया और कहा कि—हे गौतम ! अपश्चिममारणांतिकसंलेखना स्वीकार करके रहनेवाले श्रमणोपासक किसी को भी सत्य हो तो भी अनिष्ट, अरोचक, अप्रिय और अमनोज्ञ ऐसे वचन कुछ भी कहे नहीं, कहना कल्पे भी नहीं, तथा क्रोध भी करना कल्पे नहीं। इसलिये हे देवानुप्रिय ! तुम वहां जाकर महाशतक श्रमणोपासक को मेरा यह कहना कहे—'हे देवानुप्रिय ! अपश्चिममारणांतिकसंलेखना करके रहे हुए श्रमणोपासक को सत्य वचन होनेपर भी दूसरे को अप्रिय लगे ऐसा कहना कल्पे नहीं। तुमने अपनी भार्या रेवती गाथापतिनी को अनिष्ट और अप्रिय वचन कहे। इसलिये तुम उस की आलोचना करो और प्रायश्चित लेकर शुद्ध हो।'

टीका:—'नो खलु कप्पइ गोयमे' त्यादि, 'संतेहिं' ति सद्भिर्विद्यमानार्थैः 'तच्चेहिं' ति तथ्यैस्तत्त्वरूपैर्वाऽनुपचारिकैः 'तहिएहिं' ति तमेवोक्तं प्रकारमापन्नैर्न मात्रयाऽपि न्यूनाधिकैः, किमुक्तं भवति ?-सद्भूतैरिति, अनिष्टैः-अवाञ्छितैः अकान्तैः-स्वरूपेणाकमनीयैः अप्रियैः-अप्रीतिकारकैः अमनोज्ञैः-मनसा न ज्ञायन्ते-नाभिलष्यन्ते वक्तुमपि यानि तैः, अमनआपैः-न मनस

आप्यन्ते- प्राप्यन्ते चिन्तयाऽपि यानि तैः, वचने चिन्तने च येषां मनो नोत्सहत इत्यर्थः, व्याकरणैः-वचनविशेषैः ॥

टीकार्थः—'संतेहिं' विद्यमान अर्थवाले, 'तच्चेहिं' तत्वरूप अर्थवाले, अनुपचारिक अर्थवाले और लेशमात्र भी न्यूनाधिक नहीं ऐसे यथार्थ सत्य वचन होने पर भी अनिष्ट, अरोचक, अप्रिय, अमनोज्ञ और 'अमन आप' विचारसे मनमें प्राप्त न होसके अर्थात् बोलने में और विचारने में मन उत्साह न करे ऐसे वचन कहने नहीं चाहिये।

गौतम-स्वामी का आगमन

सूत्रम्—तए णं से भगवं गोयमे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहत्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ २ त्ता तओ पडिणिक्खमइ २ त्ता रायगिहं नयरं मज्झंमज्झेणं अणुप्पविसइ २ त्ता जेणेव महासयगस्स समणोवासयस्स गिहे जेणेव महासयए समणोवासए तेणेव उवागच्छइ।

अर्थः—इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर का वचन को विनय पूर्वक श्रवण किया। पीछे वहां से निकल कर राजगिरि नगरके मध्य होकर महाशतक श्रमणोपासक के घर जहां पौषधशाला में श्रमणोपासक महाशतक है वहां आये।

सूत्रम्—तए णं से महासयए भगवं गोयमं एज्जमाणं पासइ २ त्ता हट्ठ जाव हियए भगवं गोयमं वंदइ नमंसइ। तए णं से भगवं गोयमे महासययं समणोवासयं एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया! समणे

॥२४४॥

भगवं महावीरे एवमाइक्खइ भासइ पण्णवेइ परूवेइ–नो खलु कप्पइ देवाणुप्पिया ! समणोवासगस्स अपच्छिम जाव वागरित्तए। तुमे णं देवाणुप्पिया ! रेवई गाहावइणी संतेहिं जाव वागरिआ। तं णं तुमं देवाणुप्पिया ! एयस्स ठाणस्स आलोएहि जाव पडिवज्जाहि।

अर्थः—भगवान् गौतम को आते हुए देखकर महाशतक हृष्ट तुष्ट और आनंदित हुआ और भगवान् गौतम को भक्ति पूर्वक वंदना नमस्कार किया। पीछे भगवान् गौतमने महाशतक श्रमणोपासक को कहा—'हे देवानुप्रिय! श्रमण भगवान् महावीरने तुमारे लिये कहलाया है कि—हे देवानुप्रिय! अपश्चिममारणांतिक संलेखना स्वीकार करके रहने वाले श्रमणोपासक को सत्य होने पर भी किसी को अप्रिय वचनों को कहना कल्पे नहीं। तुमने रेवती गाथापतिनी को सत्य और अप्रिय वचन कहे, इसलिये उसकी तुम आलोचना करो और प्रायश्चित लेकर शुद्ध हो।'

भगवान् का संदेश

सूत्रम्—तए णं से महासयए समणोवासए भगवओ गोयमस्स तहत्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ २ त्ता तस्स ठाणस्स आलोएइ जाव अहारिहं च पायच्छित्तं पडिवज्जइ। तए णं से भगवं गोयमे महासयगस्स समणोवासयस्स अंतियाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता रायगिहं नगरं मज्झंमज्झेणं निगच्छइ २ त्ता जेणेव

समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ २ त्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तए णं समणे भगवं महावीरे अन्नया कयाइ रायगिहाओ नयराओ पडिणिक्खमइ २ त्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ॥ सू० ५३ ॥

अर्थः—भगवान् गौतम का ऐसा वचन सुनकर महाशतक श्रमणोपासकने विनय पूर्वक स्वीकार किया और उस पाप की आलोचना की, एवं प्रायश्चित लेकर शुद्ध हुआ। पीछे भगवान् गौतमस्वामी महाशतक श्रमणोपासक के पास से निकल कर, राजगृही नगरी के मध्य होकर जहां श्रमण भगवान महावीर थे वहां गुणशिल चैत्य में आये और श्रमण भगवान् महावीर को वंदना नमस्कार करके संयम और तपसे आत्माको भावित करते हुए रहने लगे। पीछे कभी श्रमण भगवान् महावीर राजगृही नगरी के बाहर अन्यत्र जनपद विहार में विचरने लगे ॥ सू० ५३ ॥

महाशतक को ज्ञानप्राप्ति

सूत्रम्—तए णं से महासयए समणोवासए बहूहिं सील जाव भावेत्ता वीसं वासाइं समणोवासय-परियायं पाउणित्ता एक्कारस उवासगपडिमाओ सम्मं काएण फासित्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे अरुण-वडिंसए विमाणे देवत्ताए उववन्ने। चत्तारि पलिओवमाइं ठिई। महाविदेह वासे सिज्झिहिइ निक्खेवो ॥ सू० ५४ ॥

॥२४६॥

सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं अट्ठमं अज्झयणं समत्तं ।

अर्थः—महाशतक श्रमणोपासकने अपने लिये हुए शीलव्रत और गुणव्रतों का वीस वर्ष तक अच्छी तरह पालन किया। तथा श्रमणोपासक की ग्यारह प्रतिमाओं की भी अच्छी तरह आराधना की। पीछे अंतमें एक मास की अपश्चिममारणांतिक संलेखना लेकर, साठ भक्त अनसन करके, समाधि पूर्वक आयुष्य पूर्ण हुए काल धर्म प्राप्त करके सौधर्म देवलोक में चार पल्योपम की स्थिति वाले अरुणावतंस नाम के विमानमें देवभवमें उत्पन्न हुआ। वहां से च्यव कर महाविदेह क्षेत्रमें जन्मेगा, वहां सिद्ध बुद्ध और मुक्त होवेगा ॥ सू० ५४ ॥

॥ इति सातवाँ अंग श्रीउपासक दशासूत्र का आठवाँ अध्ययन संपूर्ण ॥ ८ ॥



* अथ नवममध्ययनम् *



सूत्रम्—नवमस्स उक्खेवो। एवं खलु जंबू ! तेणं काले णं तेणं समए णं सावत्थी नयरी कोट्ठए चेइए जियसत्तूराया तत्थ णं सावत्थीए नयरीए नंदिणीपिया नामं गाहावई परिवसइ अड्ढे चत्तारि हिरण्णकोडीओ निहाणपउत्ताओ चतारि हिरण्णकोडीओ वुड्ढिपउत्ताओ चत्तारि हिरण्णकोडीओ पवित्थरपउत्ताओ चत्तारि वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं अस्सिणी भारिया सामी समोसढे जहा आणंदो तहेव गिहि धम्मं पडिवज्जइ सामी बाहिया विहरइ।

५

नंदिनीपित की समृ

अर्थः—अब नववाँ अध्ययन का उपोद्घात कहते हैं—हे जंबू! उस काल और उस समयमें सावत्थी नामकी नगरी थी, वहां कोष्टक नामका चैत्य था और जितशत्रु राजा राज्य कर रहा था। उसी सावत्थी नगरी में नंदिनीपिता नामका समृद्धिवाला गृहपति रहता था, उसके पास चार हिरण्यकोटिधन भंडारमें, चार हिरण्यकोटिधन व्यापारमें और चार हिरण्यकोटिधन घर खर्च के लिये था। तथा दश हजार गौओं का एक व्रज ऐसे चार व्रज भी

थे। उस गृहपति को अश्विनी नामकी भार्या थी। एक समय वहां कोष्टक चैत्य में श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी पधारे, उनको वंदना नमस्कार करने के लिये नंदिनीपिता गृहपति गया और श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामी को वंदना नमस्कार करके आनंद श्रमणोपासक की तरह पांच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार के गृहस्थ के धर्म का स्वीकार किया। वापीस अपने घर आकर श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामी से लिये हुए श्रावक धर्म की अच्छी तरह आराधना करता हुआ रहने लगा। श्रमण भगवान महावीर स्वामी अन्यत्र जनपद विहारमें विचरने लगे।

नंदिनीपिता का व्रत ग्रहण

सूत्रम्—तए णं से नंदिणीपिया समणोवासए जाए जाव विहरइ। तए णं तस्स नंदिणीपिअस्स समणोवासयस्स बहूहिं सीलव्वयगुण जाव भावेमाणस्स चोद्दस संवच्छराइं वइक्कंताइं तहेव जेट्ठं पुत्तं ठवेइ, धम्मपण्णात्तिं वीसं वासाइं परियागं नाणत्त अरुणगवे विमाणे उववाओ। महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ। निक्खेवो ॥ सू० ५५ ॥

॥ उवासगदसाणं नवमं अज्झयणं समत्तं ॥ ९ ॥

अर्थः—अब नंदिनीपिता श्रमणोपासक जीवाजीवके स्वरूप को जानता हुआ और श्रावक धर्म का अच्छी तरह पालन करता हुआ रहने लगा। इस प्रकार श्रावक धर्म का पालन करता हुआ नंदिनीपिता श्रमणोपासक को चौदह वर्ष व्यतीत होगये। पीछे अपने बड़े पुत्रको घर का सब कारबार सोंप कर और धर्मप्रज्ञप्तिका स्वीकार करके ब्रह्मचर्य पूर्वक अपनी पौषधशाला में रहने लगा। वीस वर्ष तक श्रावक धर्म का अच्छी तरह पालन किया, एवं श्रमणोपासक की ग्यारह प्रतिमाओं की आराधना भी शुभ भावसे पूर्ण की। अंतमें अपश्चिममारणांतिक संलेखना स्वीकार करके, एक मास का अनसन करके, समाधि पूर्वक काल धर्म प्राप्त करके सौधर्म देवलोक में अरुणाव नामके विमान में देव हुआ। वहां चार पल्योपम का आयुष्य भोग कर महाविदेह क्षेत्रमें उत्पन्न होगा, वहां सिद्ध बुद्ध और मुक्त होवेगा ॥ ५५ ॥

नंदिनीपिता का स्वर्ग गमन

॥ इति श्री उपासकदशा सूत्र का नववाँ अध्ययन समाप्त ॥ ९ ॥



* अथ दशममध्ययनम् *

सूत्रम्—दसमस्स उक्खेवो, एवं खलु जम्बू ! ते णं काले णं ते णं समए णं सावत्थी नयरी कोट्ठए चेइए जियसत्तू तत्थ णं सावत्थीए नयरीए सालिहीपिया नामं गाहावई परिवसइ अड्ढे दित्ते चत्तारि हिरण्णकोडिओ निहाणपउत्ताओ चत्तारि हिरण्णकोडीओ वुड्ढिपउत्ताओ चत्तारि हिरण्णकोडीओ पवित्थरपउत्ताओ चत्तारि वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं फग्गुणी भारिया सामी समोसढे जहा आणंदो तहेव गिहिधम्मं पडिवज्जइ ।

सालिही-पिता की समृद्धि

अर्थः—अब दशवाँ अध्ययन का उपोद्घात कहते है—हे जंबू ! उस काल उस समयमें सावत्थी नामकी नगरी थी, वहां कोष्टक चैत्य था और जितशत्रु राजा राज्य करता था । उसी सावत्थी नगरी में सालिहीपिता नामका बड़ी समृद्धिवाला गृहपति रहता था । उसके पास चार हिरण्यकोटिधन भंडारमें, चार हिरण्यकोटिधन व्यापारमें और चार हिरण्यकोटिधन घर खर्च के लिये था । तथा दस हजार गौओं का एक व्रज, ऐसे चार व्रज भी थे । उस गृहपतिको फाल्गुनी नामकी भार्या थी । एक समय श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामी विहार करते

हुए सावत्थी नगरी के बाहर कोष्ठक नामके चैत्य में पधारें, उनको वंदन करने के लिये अपना स्वजन वर्ग के साथ सालिहीपिता कोष्ठक चैत्य में आया और श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी को वंदना नमस्कार किया। पीछे श्रमण भगवान श्रीमहावीर स्वामी का धर्मोपदेश सुनकर आनंद श्रावक की तरह पांच अणुव्रत और सात शिक्षा व्रतरूप बारह प्रकार के श्रावक धर्म का स्वीकार किया।

सालिही-पिता को धर्मप्राप्ति

सूत्रम्—जहा कामदेवो तहा जेट्ठं पुत्तं ठवेत्ता पोसहसालाए समणस्स भगवओ महावीरस्स धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। नवरं निरुवसग्गाओ एक्कारसवि उवासगपडिमाओ तहेव भाणियव्वाओ। एवं कामदेवगमेणं नेयव्वं जाव सोहम्मे कप्पे अरुणकीले विमाणे देवत्ताए उववन्ने। चत्तारि पलिओवमाइं ठिई। महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ ॥ सू० ५६ ॥

॥ उवासगदसाणं दसमं अज्झयणं समत्तं ॥

अर्थः—सालिहीपिता श्रमणोपासक श्रावक धर्म का अच्छी तरहसे पालन करता हुआ चौदह वर्ष व्यतीत हुए। पीछे कामदेव श्रावक की तरह अपने बड़े पुत्र को घर का सब कारबार सोंप कर श्रवण भगवान श्री महावीर

स्वामी से ग्रहण की हुई धर्मप्रज्ञप्ति को स्वीकार करके अपनी पौषध शालामें रहने लगा। किसीभी प्रकार के उपसर्गों से रहित श्रावक धर्म का वीस वर्ष तक पालन किया। तथा श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं की भी अच्छी तरह आराधना की। अंतमें एक मास की अपश्चिममारणांतिक संलेखना स्वीकार करके, जीवन और मरण में समभाव रखता हुआ, समाधि पूर्वक काल धर्म प्राप्त करके सौधर्म देवलोक में अरुणकिल नामके विमान में देव हुआ। वहां चार पल्योपमका आयुष्य पूर्ण करके महाविदेह क्षेत्रमें उत्पन्न होगा, वहां सिद्ध बुद्ध और मुक्त होवेगा ॥ सू० ५६ ॥

सालिही-पिता का स्वर्ग गमन

टीकाः—नवमदशमे च कंठ्ये एवेति प्रत्यध्ययनमुपक्षेपनिक्षेपावभ्यूह्य वाच्यौ ॥ सू० ५६ ॥

टीकार्थ—नववाँ और दशवाँ ये दोनों अध्ययन के अर्थ सुगम हैं। प्रत्येक अध्ययन पूर्वपक्ष का और उत्तरपक्ष का विचार करके कहना चाहिये ॥ ५६ ॥

॥ इति श्री सातवाँ अंग श्री उपासकदशा सूत्र का दशवाँ अध्ययन संपूर्ण ॥ १० ॥



उपसंहारः।

सूत्रम्—दसण्हवि पणरसमे संवच्छरे वट्टमाणाणं चिंता। दसण्हवि वीसं वासाइं समणोवासयपरियाओ। एवं खलु जंबू! समणेणं जाव संपत्तेणं सत्तमस्स, अंगस्स उवासगदसाणं दसमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते॥ सू० ५७॥

अर्थः—दश ही श्रावकों ने पंद्रहवें वर्ष में विशेष प्रकार से धर्म करने की चिंता की। दशोंने ही वीस वर्ष श्रावक धर्म का अच्छी तरह आराधन किया। हे जबूं! श्रमण भगवान श्री महावीरस्वामीने सातवें अंग उपासक दशा सूत्र का दश अध्ययन का अर्थ इस प्रकार कहा है॥ ५७॥

टीकाः—तथा एवं खलु जम्बू! इत्यादि उपासकदशानिगमनवाक्यमध्येयमिति॥ सू० ५७॥

टीकार्थ—'एवं खलु जंबू!' यह उपासकदशासूत्र का उपसंहार वाक्य है। अर्थात् गणधर सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीको उद्देश करके कहते हैं॥ ५७॥

दश श्रावकों के नगर के नाम—

वाणियगामे चंपा दुवे य वाणारसीए नयरीए ।
आलभिया य पुरवरी कंपिल्लपुरं च बोद्धव्वं ॥ १ ॥
पोलासं रायगिहं सावत्थीए पुरीए दोन्नि भवे ।
एए उवासगाणं नयरा खलु होंति बोद्धव्वा ॥ २ ॥

दश श्रावकों के नगर और स्त्रियों के नाम

वाणिज्य गांव १, चंपा नगरी २, वाराणसी ३, वाराणसी ४, आलभिका नगरी ५, कंपिलपुर ६, पोलासपुर ७, राजगृह नगरी ८, सावत्थी नगरी ९, और सावत्थी नगरी १०, ये दश अनुक्रमसे आनंद आदि श्रावकों के नगर हैं ॥ १–२ ॥

दश श्रावकों की स्त्रियों के नाम—

सिवनंद भद्द सामा धन्न बहुल पूस अग्गिमित्ता य ।
रेवइ अस्सिणि तह फग्गुणी य भज्जाण नामाइं ॥ ३ ॥

उपसंहार

शिवानदा १, भद्रा २, श्यामा ३, धन्ना ४, बहुला ५, पूषा ६, अग्निमित्रा ७, रेवती ८, अश्विनी ९, और फल्गुनी १०, ये दश क्रमशः आनंद आदि दश श्रावकों की स्त्रियों के नाम हैं ॥ ३ ॥

दश श्रावकों को जो उपसर्ग हुए उनके नाम—

ओहिण्णाण पिसाए माया वाहिधणउत्तरिज्जे य ।
भज्जा य सुव्वया दुव्वया निरुवसग्गया दोन्नि ॥ ४ ॥

उपसर्ग और विमानों के नाम

अवधिज्ञान का १, पिशाच का २, माता का ३, व्याधि का ४, धनका ५, वस्त्र और मुद्रिका का ६, भार्या का ७, और रेवती स्त्री का ८, उपसर्ग हुआ। नववाँ और दशवाँ श्रावक उपसर्ग रहित हैं ॥ ४ ॥

दशों ही श्रावक किस २ विमान में देव हुए, उन विमानों के नाम—

अरुणे अरुणाभे खलु अरुणप्पह अरुणकंतसिट्ठे य ।
अरुणज्झए य छट्ठे भूय वडिंसे गवे कीले ॥ ५ ॥

अरुण १, अरुणाभ २, अरुणप्रभ ३, अरुणकान्त ४, अरुणशिष्ट ५, अरुणध्वज ६, अरुणभूत ७, अरुणावतंस ८, अरुणगव ९, और अरुणकिल १०, ये दश अनुक्रमसे दश श्रावकों के विमानों के नाम हैं ॥ ५ ॥

धर्म का पालन करके, एक मासका अनसन करके सौधर्म देवलोक में देव हुए। वहां चार पल्योपम का आयुष्य पूर्ण करके महाविदेहक्षेत्र में उत्पन्न होंगे वहां सिद्ध बुद्ध और मुक्त होवेंगे ॥ ५८॥

टीकाः—तथा पुस्तकान्तरे सङ्ग्रहगाथा उपलभ्यन्ते, ताश्चेमाः—

वाणियगामे १ चम्पा दुवे य २-३ वाणारसीए नयरीए ४। आलभिया य पुरवरी ५ कम्पिल्लपुरं च बोद्धव्वं ६ ॥ १ ॥
पोलासं ७ रायगिहं ८ सावत्थीए पुरीए दोन्नि भवे ९-१०। एए उवासगाणं नयरा खलु होन्ति बोद्धव्वा ॥ २ ॥

अंतिम मंगल सूचनम्

सिवनन्द १ भद्द २ सामा ३ धण ४ बहुल ५ पूस ६ अग्गिमित्ता ७ य। रेवइ ८ अस्सिणि ९ तह फग्गुणी १० य भज्जाण नामाइं ॥३॥
ओहिण्णाण १ पिसाए २ माया ३ वाहि ४ धण ५ उत्तरिज्जे ६ य। भज्जा य सुव्वया ७ दुव्वया ८ निरुवसग्गया दोन्नि ९-१० ॥४॥
अरुणे १ अरुणाभे २ खलु अरुणप्पह ३ अरुणकन्त ४ सीट्ठे ५ य। अरुणज्झए ६ य छट्ठे भूय ७ वडिंसे ८ गवे ९ कीले १० ॥ ५ ॥

सूत्रम्—उवासगदसाओ समत्ताओ॥ उवासगदसाणं सत्तमस्स अंगस्स एगो सुयखंधो दस अज्झयणा एक्कसरगा दससु चेव दिवसेसु उद्दिस्सिज्जंति तओ सुयखंधो समुद्दिस्सिज्जइ अणुण्णविज्जइ दोसु दिवसेसु अंगं तहेव ॥ सू० ५९ ॥

शिवानदा १, भद्रा २, श्यामा ३, धन्ना ४, बहुला ५, पूषा ६, अग्निमित्रा ७, रेवती ८, अश्विनी ९, और फल्गुनी १०, ये दश क्रमशः आनंद आदि दश श्रावकों की स्त्रियों के नाम हैं ॥ ३ ॥

दश श्रावकों को जो उपसर्ग हुए उनके नाम—

ओहिण्णाण पिसाए माया वाहिधणउत्तरिज्जे य ।
भज्जा य सुव्वया दुव्वया निरुवसग्गया दोन्नि ॥ ४ ॥

उपसर्ग और विमानों के नाम

अवधिज्ञान का १, पिशाच का २, माता का ३, व्याधि का ४, धनका ५, वस्त्र और मुद्रिका का ६, भार्या का ७, और रेवती स्त्री का ८, उपसर्ग हुआ। नववाँ और दशवाँ श्रावक उपसर्ग रहित हैं ॥ ४ ॥

दशों ही श्रावक किस २ विमान में देव हुए, उन विमानों के नाम—

अरुणे अरुणाभे खलु अरुणप्पह अरुणकंतसिट्ठे य ।
अरुणज्झए य छट्ठे भूय वडिंसे गवे कीले ॥ ५ ॥

अरुण १, अरुणाभ २, अरुणप्रभ ३, अरुणकान्त ४, अरुणाशिष्ट ५, अरुणध्वज ६, अरुणभूत ७, अरुणावतंस ८, अरुणगव ९, और अरुणकिल १०, ये दश अनुक्रमसे दश श्रावकों के विमानों के नाम हैं ॥ ५ ॥

धर्म का पालन करके, एक मासका अनसन करके सौधर्म देवलोक में देव हुए। वहां चार पल्योपम का आयुष्य पूर्ण करके महाविदेहक्षेत्र में उत्पन्न होंगे वहां सिद्ध बुद्ध और मुक्त होवेंगे ॥ ५८ ॥

टीकाः—तथा पुस्तकान्तरे सङ्ग्रहगाथा उपलभ्यन्ते, ताश्चेमाः—

वाणियगामे १ चम्पा दुवे य २-३ वाणारसीए नयरीए ४। आलभिया य पुरवरी ५ कम्पिल्लपुरं च बोद्धव्वं ६ ॥ १ ॥

पोलासं ७ रायगिहं ८ सावत्थीए पुरीए दोन्नि भवे ९-१०। एए उवासगाणं नयरा खलु होन्ति बोद्धव्वा ॥ २ ॥

सिवनन्द १ भद्द २ सामा ३ धण ४ बहुल ५ पूस ६ अग्गिमित्ता ७ य। रेवइ ८ अस्सिणि ९ तह फग्गुणी १० य भज्जाण नामाइं ॥३॥

ओहिण्णाण १ पिसाए २ माया ३ वाहि ४ धण ५ उत्तरिज्जे ६ य। भज्जा य सुव्वया ७ दुव्वया ८ निरुवसग्गया दोन्नि ९-१० ॥४॥

अरुणे १ अरुणाभे २ खलु अरुणप्पह ३ अरुणकन्त ४ सीट्ठे ५ य। अरुणज्झए ६ य छट्ठे भूय ७ वडिंसे ८ गवे ९ कीले १० ॥ ५ ॥

अंतिम मंगल सूचनम्

सूत्रम्—उवासगदसाओ समत्ताओ ॥ उवासगदसाणं सत्तमस्स अंगस्स एगो सुयखंधो दस अज्झयणा एक्कसरगा दससु चेव दिवसेसु उद्दिस्सिज्जंति तओ सुयखंधो समुद्दिस्सिज्जइ अणुण्णविज्जइ दोसु दिवसेसु अंगं तहेव ॥ सू० ५९ ॥

ऊर्ध्व लोक में सौधर्म देवलाक तक, नीचे रत्नप्रभापृथ्वी के लोलूयच्चुय नामके नरक के पाथडे तक, उत्तरमें चुल्लहिमवंत वर्षधर पर्वत तक, पूर्व पश्चिम और दक्षिण दिशामें पांच सौ २ योजन लवण समुद्र के क्षेत्र तक अवधिज्ञान से देखते थे।

ग्यारह प्रतिमा

अग्यारह प्रतिमाओं के नाम—

दंसण-वय-सामाइय-पोसह-पडिमा-अबंभ-सच्चित्ते।
आरंभ-पेस-उद्दिट्ठ-वज्जए समणभूए य ॥ ११ ॥
इक्कारस पडिमाओ वीसं परियाओ अणसणं मासे।
सोहम्मे चउपलिया महाविदेहम्मि सिज्झिहिइ ॥ सू० ५८ ॥

दर्शन प्रतिमा १, व्रतप्रतिमा २, सामायिक प्रतिमा ३, पौषध प्रतिमा ४, कायोत्सर्ग प्रतिमा ५, ब्रह्मचर्य प्रतिमा ६, सचित्त आहार वर्जन प्रतिमा ७, स्वयं आरंभ वर्जन प्रतिमा ८, भृतकप्रेष्यारंभ वर्जन प्रतिमा ९, उद्दिष्टभक्त वर्जन प्रतिमा १०, और श्रमणभूत प्रतिमा ११, ये ग्यारह प्रतिमाओं के साथ वीस वर्ष तक श्रावक

दशों ही श्रावकों के इक्कीस प्रकारके अभिग्रह—

उल्लणदंतवणफले अभिंगणुव्वट्टणे सणाणे य ।
वत्थ विलेवण पुप्फे आभरणं धूवपेज्जाइ ॥ ८ ॥
भक्खोयण सूय घए सागे माहुरजेमणऽन्नपाणे य ।
तंबोले इगवीसं आणंदाईण अभिग्गहा ॥ ९ ॥

अभिग्रह और अवधिज्ञान का मान

शरीर पोंछने का गमच्छा १, दांतून २, फल ३, तेलके विलेपन ४, उपटन ५, स्नान ६, वस्त्र ७, चंदनादि विलेपन ८, पुष्प ९, आभरण १०, धूप ११, पीनेकी वस्तु १२, मीठाई १३, चावल १४, दाल १५, घी १६, शाक १७, रस १८ जिमने की वस्तु १९, अन्नपाणी २०, और तंबोल (पान) २१, ये इक्कीस अभिग्रह दशों ही श्रावकों ने किये थे ॥९॥

दशों ही श्रावकों के अवधिज्ञान का प्रमाण—

उड्ढं सोहम्मपुरे लोलूए अहे उत्तरे हिमवंते ।
पंचसए तह तिदिसिं ओहिण्णाणं दसगणस्स ॥ १० ॥

दश श्रावकों के गौओं की संख्या—

चाली सट्ठि असीई सट्ठी सट्ठी य सट्ठि दस सहस्सा ।
असिई चत्ता चत्ता एए वइयाण य सहस्सा ॥ ६ ॥

चालीस हजार १, साठ हजार २, असी हजार ३, साठ हजार ४, साठ हजार ५, साठ हजार ६, दश हजार ७, असी हजार ८, चालीस हजार ९, और चालीश हजार ये क्रमसे दश श्रावकों के गौओं की संख्या है ॥६॥

दश श्रावकों के धन का परिमाण—

बारस अट्ठारस चउवीसं तिविहं अट्ठरसाइ नेयं ।
धन्नेण ति चोव्वीसं बारस बारस य कोडीओ ॥ ७ ॥

बारह हिरण्य कोटि १, अठारह हिरण्य कोटि २, चौवीस हिरण्य कोटि ३, अठारह हिरण्य कोटि ४, अठारह हिरण्य कोटि ५ अठारह हिरण्य कोटि ६, एक हिरण्य कोटि ७, चौवीस हिरण्य कोटि ८, बारह हिरण्य कोटि ९, और बारह हिरण्य कोटि १० ये क्रमसे दशों ही श्रावकों के धनका परिमाण है ॥ ७ ॥

इति उपासक दशा सूत्र समाप्तः । सातवाँ अंग श्री उपासक दशा सूत्र का प्रथम श्रुतस्कंध के एक सदृश दश अध्ययन कहे, उन को साधु दश दिनमें अध्ययन करें ॥ ५९॥

टीकाः—शिष्टादिनामान्यरुणपदपूर्वाणि दृश्यानि, अरुणशिष्टमित्यादि ॥ एताश्च पूर्वोक्तानुसारेणावसेयाः ॥ यदिह न व्याख्यातं तत्सर्वं ज्ञाताधर्मकथाव्याख्यानमुपयुक्तेन निरूप्यावसेयमिति ॥ सर्वस्यापि स्वकीयं वचनमभिमतं प्रायशः स्याज्जनस्य, यत्तु स्वस्यापि सम्यग् न हि विहितरुचि स्यात् कथं तत्परेषाम् ? । चित्तोल्लासात्कुतश्चित्तदपि निगदितं किञ्चिदेवं मयैतद्युक्तं यच्चात्र तस्य ग्रहममलधियः कुर्वतां प्रीतये मे ॥ १ ॥ इति श्रीचन्द्रकुलाम्बरनभोमणिश्रीजिनेश्वराचार्यान्तिषच्छ्रीमन्नवाङ्गीवृत्तिकारकखरतरगच्छनायकश्रीअभयदेवाचार्यकृतं समासमुपासकदशाविवरणम् ॥

अंतिम मंगल सूचनम्

श्रीचान्द्रकुलीनश्रीजिनेश्वराचार्यशिष्यश्रीमन्नवाङ्गीवृत्तिकारकखरतरगच्छनायकश्रीमदभयदेवाचार्यनिर्मितमुपाकदशाङ्गविवरणं समाप्तम् ॥

टीकार्थ—जहां विमानों के नाम आये हैं उस गाथा में 'सिट्ठे' आदि पद दिये गये हैं उन पदों के पहले 'अरुण' पद लगाकर बोलना चाहिये । जैसे 'अरुणशिष्ट' इत्यादि विमान के नाम पहले कहे हैं, उनके अनुसार समझना । इस सूत्रमें मैने जिसकी व्याख्या न की हो, उन सब की व्याख्या ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र की व्याख्या से जानना । सब मनुष्यों को प्रायः अपना वचन सम्मत लगता है,

तो अपना अच्छी तरह कहा हुआ वचन दूसरें को रुचिदायक क्यों नहीं होगा ? अर्थात् जरूर होगा । मैंने चित्तके उल्लास से जो कुछ युक्त वचन कहे हैं, वे निर्मल बुद्धिवाले मेरी प्रीतिके लिये ग्रहण करें। इति श्री चंद्रकुलमें श्री जिनेश्वराचार्य हुए उनके शिष्य नवाङ्गीवृत्तिकारक खरतरगच्छनायक श्रीअभयदेवसूरिजीने किये हुए उपासकदशासूत्रके विवरण का भाषान्तर समाप्त हुआ ।

अंतिम मंगल सूचनम्

॥ इति श्रीखरतगच्छनायक नवांगीवृत्तिकारक श्रीमद् अभयदेवसूरिकृत टीका सहित श्रीउपासक दशासूत्र का हिंदी अनुवाद समाप्त ॥

